हमारे महत्वपूर्ण प्रकाशन—

१ रासमाला (गुजरात का इतिहास) प्रथम भाग (दो खण्डों में) — १४–००
    अनुवादक-सम्पादक — श्री गोपालनारायण बहुरा एम० ए०
    उपसंचालक प्राच्यविद्या प्रतिष्ठान, (जोधपुर)
    प्राक्कथन :— पुरातत्वाचार्य मुनि जिनविजय
    भूमिका :— डॉ० वासुदेवशरण अग्रवाल

२ विचार के प्रवाह — डॉ० देवराज उपाध्याय — ५–०
    भूमिका :— डॉ० विश्वनाथ प्रसाद

३ बचपन के दो दिन — डॉ० देवराज उपाध्याय — ४–८०
    भूमिका :— जयप्रकाश नारायण

४ साहित्य तथा साहित्यकार — डॉ० देवराज उपाध्याय — ५–०

५. मालवी—एक भाषा-शास्त्रीय अध्ययन — डॉ० चिन्तामणि उपाध्याय — १–
    भूमिका :— पद्मभूषण पं० सूर्य नारायण व्यास

६ लोकायन — डॉ० चिन्तामणि उपाध्याय — ४–
    भूमिका :— डॉ० देवराज उपाध्याय

७ आदिकाल के अज्ञात हिन्दी रासकाव्य — डॉ० 'हरीश' — १–

८ साहित्य की परिधि — रामचन्द्र बोड़ा एम० ए० — १–५

९ हिन्दी के आंचलिक उपन्यास — राधेश्याम कौशिक 'अधीर' एम० ए० — १–०
    भूमिका :— डॉ० शरणामसिंह 'अरुण'

१० फाहियान की भारत यात्रा — [illegible] — १–

११ भारत की खाद्य समस्या — रूपलाल मेहता एम० ए० एम-एस सी — –४

आगामी प्रकाशन

१२ मालवी लोकगीत : एक विवेचनात्मक अध्ययन — डॉ० चिन्तामणि उपाध्याय

१३ स्वतन्त्र कालीन गुजरात (रासमाला भाग २)
    अनुवादक – सम्पादक :— श्री गोपालनारायण बहुरा एम० ए०

१४ नेवाज कृत शकुन्तला नाटक
    सम्पादक एवं टिप्पणकार — साहित्य-शिरोमणि राजेन्द्र शर्मा

१५. टॉड कृत 'राजस्थान' भाग १ खण्ड २ — राजस्थान में जागीर व्यवस्था
    प्रधान सम्पादक :— डॉ० रघुवीरसिंह डी० लिट्०
    अनुवादक-सम्पादक :— देवीलाल पालीवाल एम० ए०

टॉड कृत 'राजस्थान'

प्रधान-सम्पादक

डॉ० रघुबीरसिंह डी० लिट्०

भाग १—खण्ड १

राजपूत कुलों का इतिहास

भूमिका-लेखक

डॉ० मथुरालाल शर्मा, डी० लिट्०

अनुवादक — सम्पादक

देवीलाल पालीवाल एम्० ए०

जयपुर

मंगल प्रकाशन

प्रकाशक
उमरावसिंह 'मंगल'
प्रकाशन
'मंगल' प्रकाशन
गोविन्द राजियों का रास्ता
जयपुर (राजस्थान)

मूल्य १०—००
(दस रुपए)
प्रथम संस्करण १९६१

मुद्रक
'मंगल' प्रकाशन
—(प्रेस विभाग)
जयपुर (राजस्थान)

प्रकाशकीय

भारत की विभिन्न राष्ट्रीय इकाइयों के इतिहास-ग्रन्थों की प्रकाशन योजना के अन्तर्गत फार्बस कृत 'रासमाला गुजरात का इतिहास' के प्रकाशन के साथ-साथ राजस्थान के सुप्रसिद्ध इतिहास-ग्रन्थ Annals and Antiquities of Rajasthan by Lt Col James Tod को हिंदी में प्रस्तुत करने की योजना में सहयोग देने की प्रार्थना आदरणीय डॉ रघुबीरसिंहजी से की। उन्होंने कृपा कर इस योजना के प्रधान सम्पादक का पद ग्रहण किया। श्री देवीलाल पालीवाल ने अनुवाद आदि कार्य करना स्वीकार करने की कृपा की। मू इस योजना का प्रथम चरण १९५८ के मध्य में पूर्ण हो गया था। टॉड के इतिहास-ग्रन्थ में जहाँ प्रामाणिकता और गम्भीरता है वहीं अनेक स्थलों पर भ्रामक और असंगत बातें भी हैं। इस बात को दृष्टि में रख कर निर्णय किया गया कि अस्पष्ट, अपरिचित असंगत और भ्रामक स्थलों पर आधुनिक शोध के आधार पर यथासाध्य टिप्पणियां दी जावें। यह बात विचार और निर्णय में जितनी सहज थी कार्य रूप में उतनी ही कठिन हो गई। जैसे-तैसे १९५९ में यह कार्य प्रेस मे दिया गया। कार्य-पद्धति यह रही कि प्रत्येक फार्म को पूर्णरूपेण यहां से तैयार करा कर प्रधान सम्पादक को भेजा जावे। जब हम सब उस पर विचार करते तब कई शंकाएं अथवा जानकारी के प्रश्न यहाँ पर उठ जाते अथवा वहाँ से प्रधान सम्पादक उठा देते। परिणाम स्वरूप प्रेस कार्य रुक कर, शोध और पत्राचार फिर प्रारम्भ हो जाता। कई बार तो छ. मास तक का समय शोध के विचार-विनमय मे लग जाता। ऐसी स्थिति मे मुद्रण करने के लिए भारी धन भी व्यय होता था। कृपालु मित्रों के सहयोग से जैसे तैसे काम होता रहा। अब १९६३ में यह प्रथम खण्ड 'राजपूत कुलों का इतिहास'[१] आपकी सेवा में प्रस्तुत किया जा रहा है।

प्रस्तुत ग्रन्थ को हिन्दी में प्रस्तुत करने का श्रेय यदि मैं किसी को दे सकता हूं तो उनमें सर्व प्रथम नाम आएगा आदरणीय डॉ रघुबीरसिंहजी डी लिट (महाराज कुमार, सीतामऊ) का। आपने ही इस सारी योजना का संचालन किया और समय-समय पर अपना आवश्यक कार्य रोक कर भी मेरा मार्ग-दर्शन किया। इस कार्य को करते हुए ऐसे अवसर भी आए जब मैं हतोत्साह हो गया था किन्तु आपने मुझे सदैव प्रयत्नशील रहने की प्रेरणा और परामर्श दिया। इसी श्रेणी मे दूसरा नाम है आदरणीय श्री गोपालनारायण बहुरा एम ए (उप-संचालक प्राच्यविद्या प्रतिष्ठान जोधपुर) का। श्री बहुराजी का वरद-हस्त ऐसे कामों में सदैव मुझ पर रहा है। इस खण्ड के शोध-कार्यों में भी आपने हाथ बटाया है। यथार्थ मे यदि इन दो गुरुजनों की हर सम्भव सहायता और सहयोग मुझे न मिलते तो मैं इस कार्य को और अवसर ही न होता। ऐसे महापुरुषो के प्रति कृतज्ञता ज्ञापन करना उनका महत्त्व कम करना है। भला गुरुजनो के ऋण से क्या कोई उऋण हो सका है?

डॉ० देवराज उपाध्याय साहित्य शिरोमणि राजेन्द्र शर्मा तथा श्री भागचन्द्र धाकड़ से अनुवाद के कुछ स्थलों के संशोधन में सहायता प्राप्त हुई है। अत: इसके लिए इन्हें धन्यवाद देना मेरा कर्तव्य है।

पुरातत्त्वाचार्य मुनि जिनविजय ने भी इस कार्य में मुझे प्रत्येक सम्भव सहायता प्रदान की है। अतः इन के प्रति कृतज्ञता ज्ञापन करता हूं।

श्री कमलकिशोर जैन (अधिकारी सूचना-केन्द्र जयपुर) श्री दीपसिंह जी (पुस्तकालयाध्यक्ष महाराजा सार्वजनिक पुस्तकालय जयपुर) श्री बाबूसिंह (पुस्तकालयाध्यक्ष सूचना-केन्द्र जयपुर) ने संदर्भ ग्रन्थ देखने और पढ़ने की सुविधा और सहायता दी। श्री मुकनसिंह श्री चम्पालाल रांका श्री नरेन्द्र बाहरी श्री शान्तिनाथ जी श्री रोशनलाल जैन आदि मित्रों ने इस कार्य के लिए मुझे प्रोत्साहित और उत्तेजित किया। अतः इन सबको धन्यवाद देता हूं। मित्रवर श्री जगत शरण चतुर्वेदी को कैसे भूल सकता हूं जो मेरे लिए अक्सर मुझ से और अन्य कष्टों से वाद-युद्ध करते रहते हैं।

श्री विजय नारायण शुक्ल तथा श्री प्रतापचन्द पाटनी की सहायता के बिना कवर आदि को यह रूप देना जयपुर में असम्भव था ही है अतः इन्हें धन्यवाद देना आवश्यक है।

उन सभी विद्वानों (जिनके ग्रन्थों का सन्दर्भ दिया है अथवा जिनके आधार पर कुछ भी लिखा है) के प्रति कृतज्ञता ज्ञापन करता हूं।

अन्त में उन सभी महानुभावों के प्रति विशेष रूप से कृतज्ञता ज्ञापन करता हूं जिनके नाम मैं किसी कारण-वश यहां नहीं दे सका हूं; तथा जिन्होंने अज्ञात रूप में मेरी सहायता की।

अन्त में इतना निवेदन करना है कि यदि प्रस्तुत ग्रन्थ में कुछ अच्छाई है तो उसका श्रेय उन कृपालु विद्वानों को है, जिन्होंने इसे प्रस्तुत कराया है। और जो त्रुटियां हैं उनका दोष संयोजक सम्पादक तथा प्रकाशक के नाते मुझ पर, मेरी परिस्थितियों सीमित साधनों और अर्थाभाव पर है। इसके लिए मैं क्षमा प्रार्थी हूं। पूरी सावधानी बरतने पर भी छापे में जो कोई भूलें रह गई हैं, उसके लिए विशेष रूप से क्षमा चाहता हूं।

मंगल प्रकाशन
गोविन्द राजियों का रास्ता
जयपुर

विनीत—
उमरावसिंह मंगल

प्रस्तावना

गुप्त साम्राज्य के पूर्ण पतन तथा हर्ष की मृत्यु के बाद भारत के विभिन्न प्रदेशों में समय-समय पर जिन अनेकानेक राजघरानों का आधिपत्य हुआ था उनमें से बहुतों की परम्परा किसी न किसी रूप में आगे मुसलमानी आधिपत्यकाल में चलती ही गई और परिवर्तित विभिन्न परिस्थितियों में भी उनका अपना महत्व बना रहा। तब ये कई एक राजघराने राजपूत कहलाने लगे। इन राजघरानों के दीर्घकालीन ऐतिहासिक महत्व के कारण इतिहासकार उन राजघरानों के आदि पुरुषों की उत्पत्ति, वंश तथा पूर्व इतिहास आदि की पूरी-पूरी जानकारी प्राप्त करने को समुत्सुक रहे हैं और तदर्थ सतत प्रयत्न करते आये हैं। इन विभिन्न राजघरानों के जातीय संगठन, उनके परंपरागत कुलाचार, आचार-व्यवहार, रीति-रिवाजों और रहन-सहन आदि के आधार पर उनके आदि-स्थान और उत्पत्ति-स्रोत का ठीक-ठीक पता लगाने का आयोजन करना स्वाभाविक था। यही कारण था कि राजस्थान के ही नहीं राजपूतों के भी आदि-इतिहासकार कर्नल जेम्स टॉड ने 'न केवल उनके इतिहास की खोज की बल्कि उनकी धार्मिक भावनाओं, उनके सामान्य विचारों और उनके विशिष्ट आचार-व्यवहार के बारे में भी ज्ञान प्राप्त करने का प्रयत्न किया'। यों 'जानकारी प्राप्त करने का (उसका) क्षेत्र अत्यन्त विस्तृत हो गया था'। इस प्रकार एकत्र की गई विपुल ऐतिहासिक सामग्री और महत्वपूर्ण उपयोगी जानकारी के आधार पर कर्नल जेम्स टॉड ने अपने इस सुप्रसिद्ध इतिहास ग्रंथ "एनल्स एण्ड एण्टिक्विटीज् ऑफ राजस्थान" की रचना की जो हिन्दी भाषा भाषियों में 'टॉड राजस्थान' नाम से सुज्ञात है। इस ग्रंथ की रचना करते समय टॉड का जो दृष्टिकोण था उसे उसने स्वयं इन शब्दों में व्यक्त किया है— "मैं यहां यह भी कह देना चाहूँगा कि प्रस्तुत विषय को इतिहास की कठिन शैली में गठित करने की मेरी इच्छा कभी भी नहीं थी क्योंकि उसका परिणाम यह होता कि ऐसी बहुत सी बातें छोड़ देनी पड़तीं जो कि राजनीतिज्ञों अथवा जिज्ञासु विद्यार्थियों के उपयोग की होती हैं। मैं इस ग्रंथ को भावी इतिहासकार के हेतु सामग्री के प्रचुर संग्रह के रूप में प्रस्तुत कर रहा हूँ। मुझे इस बात का कोई विचार नहीं रहा कि मैंने इस ग्रन्थ के आकार को अत्यधिक बढ़ा दिया है किन्तु मुझे इस बात की अवश्य चिन्ता बनी रही है कि कोई लाभदायक बात नहीं छूट जावे।" इसकी यही प्रमुख विशेषता इस ग्रन्थ के महत्व को आज भी अक्षुण्ण बनाए हुए है।

'टॉड राजस्थान' के अब तक दो-चार हिन्दी अनुवाद प्रकाशित हो चुके हैं। बांकीपुर, पटना के खड्गविलास प्रेस से सन् १९१३ ई. में पण्डित रामगरीब चौबे कृत हिन्दी अनुवाद प्रकाशित होने लगा था, परन्तु उसके केवल दो खण्ड ही निकल कर रह गये जिनमें मूल ग्रन्थ के प्रथम खण्ड के पहिले तीन विभागों का ही अनुवाद है। इस अनुवाद का विशेष महत्व इसी कारण है कि उसका सम्पादन राजस्थान के ही नहीं प्राचीन भारतीय इतिहास के प्रकाण्ड विद्वान् महामहोपाध्याय डॉ. गौरीशंकर हीराचन्द ओझा ने किया था। प्रत्येक प्रकरण के अनुवाद के अन्त में उन्होंने उसमें आये अपरिचित या महत्वपूर्ण नामों या वर्णित विषयों सम्बन्धी अपनी विस्तृत टिप्पणियां दे दी थीं जिनमें तब तक की शोधों से नई जानकारी के आधार पर टॉड की भूलों को ठीक करने का यथासाध्य प्रयत्न किया गया था। अब तो वह अधूरा अनुवाद भी अप्राप्य हो गया है और इन पिछले तीस वर्षों में ऐतिहासिक शोध भी बहुत आगे बढ़ गई है। श्री खेमराज श्रीकृष्णदास ने वेंकटेश्वर प्रेस बम्बई से समूचे 'टॉड राजस्थान' का पं. बलदेव मिश्र कृत हिन्दी अनुवाद दो मोटी जिल्दों में प्रकाशित किया है जो इतिहास के किसी अधिकारी विद्वान के समालोचनात्मक सम्पादन के अभाव में जिज्ञासु शोधकर्ताओं या इतिहास-प्रेमियों के लिये अधिक उपयोगी नहीं हो सकता है। इन पिछले कई वर्षों से 'टॉड राजस्थान' के

कुछ और भी हिन्दी अनुवाद निकले हैं, जिनमें मूल ग्रन्थ के बहुत से अंशों का अनुवाद नहीं है और उनका ठीक तरह से सम्पादन भी नहीं हुआ है जिससे वे इतिहास के संशोधकों के लिये अप्रामाणिक और सर्वथा अनुपयुक्त भी हैं। अतः राष्ट्र भाषा हिन्दी के साहित्य भण्डार की इस बड़ी कमी की पूर्ति के लिये 'टॉड राजस्थान' का यह नया हिन्दी अनुवाद तैयार करवा कर प्रकाशित किया जा रहा है।

इस प्रथम खण्ड में टॉड लिखित भूमिका के अतिरिक्त मूल ग्रन्थ के प्रथम दो विभागों का अनुवाद प्रस्तुत है। प्रथम विभाग में टॉड ने राजस्थान का भौगोलिक विवरण दिया है। सन् १८०६ ई० में टॉड ने पहली बार राजस्थान और मालवा प्रदेशों का सर्वेक्षण प्रारम्भ किया और वर्षों के निरंतर परिश्रम से टॉड द्वारा एकत्र सामग्री और जानकारी के आधार पर सन् १८१५ ई० में राजस्थान का बहुत-कुछ सही मान चित्र बन कर तयार हुआ। जिस प्रकार उसने यह सारी जानकारी एकत्र की थी उसका जो विवरण टॉड ने लिखा है वह प्रेरणादायक है।

दूसरे विभाग में टॉड ने राजपूत-कुलों का इतिहास लिखा है। उस समय भारत में प्राचीन शोध का कार्य प्रारम्भ ही हुआ था। अतः टॉड को तदर्थ विभिन्न राजकुलों की कई एक वंशावलियों में प्राप्य सूचियों का ही उपयोग करना पड़ा। अपनी अनेकानेक यात्राओं या दौरों के समय टॉड ने स्वयं कई शिलालेख या उनकी प्रतिलिपियाँ एकत्र की थी। उनमें प्राप्य जानकारी का भी टॉड ने उपयोग करने का प्रयत्न किया था किन्तु इन प्राचीन शिलालेखों को पढ़ने या उनका अर्थ लगाने में कई एक भूलें हो गईं। सातवें अध्याय में टॉड ने छत्तीस राजकुलों का विवरण दिया है।

टॉड ने अपने इस ग्रन्थ में इस बात की स्थापना करने का भरसक प्रयत्न किया है कि राजपूत मुख्यतया सीथियनों अर्थात् शकों के वंशज हैं। अपने इस कथन के समर्थन में टॉड ने बताया है कि राजपूतों में प्रचलित अनेक रीति-रिवाज जैसे सूर्य-पूजा अथवा सूर्योपासना, सती प्रथा, अश्वमेध यज्ञ करना, विशेष मद्यपान, शस्त्रों और और घोड़ों की पूजा आदि शक जाति के रीति-रिवाज से बहुत मिलते जुलते हैं। यही नहीं टॉड के अनुसार तातारी और शक लोगों की पुरानी कथाओं तथा पुराणों की कथाओं में भी बहुत समानता पाई जाती है। आगे चलकर विंसेन्ट स्मिथ आदि यूरोपीय विद्वानों ने टॉड के इस मत को मान्य ही नहीं किया किन्तु एक मात्र 'गुर्जर प्रतिहार' नाम के आधार पर ही उनमें से कई ने अन्य तीन तथा-कथित अग्निवंशी राज-कुलों को भी गुर्जर हूणों का वंशज होने का अनुमान प्रस्तुत किया।

'टॉड राजस्थान' की रचना के बाद के इन पिछले सवा सौ वर्ष से भी अधिक के काल में प्राचीन शोध और अध्ययन का काम बहुत आगे बढ़ चुका है। सैकड़ों प्राचीन शिलालेख प्रकाश में आए हैं और उनको ठीक-ठीक पढ़ कर उनका सही अर्थ भी लगाया जा चुका है। इस सारी महत्त्वपूर्ण प्रामाणिक ऐतिहासिक सामग्री के अध्ययन और मनन से यह तो स्पष्ट हो ही जाता है कि टॉड का कथन अधिकतर काल्पनिक ही था। अन्य यूरोपीय इतिहासकार भी मूल प्रमाणों के आधार पर निश्चितरूपेण यह प्रमाणित नहीं कर पाये हैं कि कौन-कौन सी राजपूत जातियाँ किस-किस बाहरी आक्रमणकारी जातियों की वंशज हैं। ओझाजी ने जहाँ विन्सेंट स्मिथ आदि इन सब ही इतिहासकारों के इन कथनों को अमान्य किया है वहाँ साथ ही अपने सुप्रसिद्ध इतिहास-ग्रन्थ राजपूताने का इतिहास में सप्रमाण यह भी प्रमाणित किया है कि भारत पर आक्रमण करने वाली शक और हूण जातियाँ आर्यों से भिन्न नहीं किन्तु वस्तुतः क्षत्रिय ही थी और वैदिक धर्म को छोड़ कर अन्य (बौद्ध आदि) धर्मों के अनुयायी हो जाने के कारण वैदिक धर्म के आचार्यों ने उनकी गणना विधर्मियों (धर्म भ्रष्टों) में की। न तथा-कथित अग्नि-वंशी राजकुल विक्रम संवत् की

१६ वीं शताब्दि से पहिले अपने को अग्नि वंशी नहीं मानते थे प्रत्युत उनके शिलालेखों में स्वयं को 'सूर्य-वंशी' 'चन्द्र-वंशी' या 'ब्रह्म-क्षत्र' आदि लिखा मिलता है। (पहिली जिल्द द्वितीय संस्करण, पृ ४१-६३ ७२-७६)।

ईसा की १९ वीं शताब्दी के प्रारम्भ में टॉड ने राजपूतों को एक संगठित जाति के रूप में पाया और साथ ही उसने राजपूतों के छत्तीस राजकुलों का सविस्तार विवरण पढ़ा और सुना। महाभारत पुराण आदि प्राचीन ग्रन्थों में भारत के प्राचीन राजवंशों के विवरणों में उसे कहीं भी न तो राजपूत जाति का उल्लेख मिला और न उसने इस छत्तीस राजकुलों की व्यवस्था ही पाई। अतः 'राजपूत जाति की उत्पत्ति और उसके आदि निवास' की समस्या एक अबूझ पहेली के रूप में टॉड के सम्मुख उपस्थित हुई जिसका उसने उपर्युक्त हल निकाला। परन्तु इस समस्या का हल निकालने के लिये दो महत्वपूर्ण बातों का ठीक पता लगाना अत्यावश्यक है। प्रथम तो यह है कि किसी जाति-सूचक अर्थ में 'राजपूत' शब्द का प्रयोग कब से होने लगा? दूसरे एक जाति विशेष के रूप में राजपूत कब संगठित हुए और छत्तीस राजकुलों की यह कल्पना कब से प्रारम्भ हुई?

ओझाजी के अनुसार— मुसलमानों के राजत्व-काल में क्षत्रियों के राज्य क्रमशः अस्त होते गये और जो बचे उनको मुसलमानों की अधीनता स्वीकार करनी पड़ी अतएव वे स्वतन्त्र राजा न रह कर सामन्त से बन गये। ऐसी दशा में मुसलमानों के समय राजवंशी होने के कारण उनके लिये 'राजपूत' नाम का प्रयोग होने लगा। फिर धीरे-धीरे यह शब्द जाति-सूचक होकर मुगलों के समय अथवा उससे पूर्व सामान्य रूप से प्रचार में आने लगा। (रा इ प्रथम भाग द्वि सं पृ ४२)। इस कथन की विवेचना करते हुए जयचन्द्र विद्यालंकार ने लिखा है— (सब ही राज-) कुलों को मिला कर राजपूत जाति बनाने की कल्पना का सोलहवीं शताब्दी से पहिले होने का कोई प्रमाण नहीं है। ....प्रथम में राजपूत कोई नई जाति न थी। राजाओं के पुत्र इस देश में सदा से पैदा होते थे और अपने बराबर वालों में ही ब्याह-शादी की जावे ऐसा रुझान भी लोगों में सदा से रहा है। ११ वीं सदी में भारत में जो राजघराने थे उनमें भी यही चलन था। किन्तु उस समय से एक नई बात होने लगी। जीवन में संकीर्णता आ जाने के कारण लोगों को दूर के और अपरिचित लोगों से शंका और डर प्रतीत होने लगा कि कहीं उनसे मिल कर हमारा कुल बिगड़ न जाय। इस कारण उस समय के सब राजघराने मिल मिले बने और उनका राजपूतपन पत्थर की लकीर हो गया। आगे चल कर उनके बेटों-पोतों के हाथ में राज न रहे तो भी वे राजपूत बने रहे और दूसरे कुलों के लोग राज पा लेने पर भी राजपूत नहीं माने गये। (भारतीय इतिहास की मीमांसा पृ १४५-७)।

भारत पर मुसलमानों के अधिपत्य के बाद जो सर्वथा अभूतपूर्व राजनैतिक धार्मिक सामाजिक और आर्थिक परिस्थितियां समुपस्थित हुईं उनका हिन्दू समाज के सभी वर्गों के दृष्टिकोण सामाजिक संगठन आचार विचार रहन-सहन और जीवन के सारे पहलुओं पर अत्यधिक प्रभाव पड़ा। सदियों तक इतिहास के चलते हुए इस क्रम में समय-समय पर अनेकों नई परिस्थितियां सामने आईं या विषम प्रवृत्तियां उभरी। किन्तु इन सब का पूरा-पूरा प्रतिबिम्ब राजनैतिक घटनावली से कदापि स्पष्ट नहीं होता है उसे तो अन्य समकालीन साहित्य में खोजना पड़ता है। यों तो आज अनेकानेक अन्य लेखों के कई पुराने क्षत्रिय या जाट में राजवंशी बताने तथा हिन्दू समाज की कई एक जातियों को स्वयं को राजपूत कहने या प्रमाणित करने में गौरव का अनुभव करते हैं। परन्तु यह तो सर्वमान्य बात है कि उत्तर-मध्यकाल में तथा-कथित राजपूत जाति का यह संगठन और इस प्रकार का उसका यह विकास मुख्यतया गुजरात राजस्थान तथा मालवा प्रदेशों में ही हुआ था। अतः जाति के रूप में राजपूत-कुलों के इस संगठन तथा विकास के क्रम का यथावश्यक अध्ययन इन्हीं क्षेत्रों के इतिहास और साहित्य में करना होगा। यहाँ आज भी ऐसा बहुत सा साहित्य प्राप्य है जिससे सारे अध्ययन और खास कर राजस्थान के तत्कालीन समाज के जीवन विचारों

और विकास आदि पर सर्वथा नया प्रकाश पड़ सकता है। जैन-ग्रन्थ-भण्डारों में भी हजारों हस्तलिखित ग्रन्थ संग्रहीत हैं उनका अब तक इस दृष्टि से किसी ने कभी अध्ययन नहीं किया है। चारण-साहित्य और राजस्थानी वार्ता-साहित्य बहुत बड़े परिमाण में आज भी हस्तलिखित ग्रन्थों में प्राप्य है। अनेकानेक प्राच्य स्थानों का भी इसी दृष्टि से गहराई के साथ अध्ययन किया जाना चाहिये।

पुनः मुसलमानों के अनेकानेक प्रारम्भिक आक्रमणों और बाद की विजयों या राज्य-स्थापना के फलस्वरूप कई पुराने छोटे-बड़े राज्यों का अन्त हुआ तथा वहां के राजघरानों उनके वंशजों या सगे-सम्बन्धियों और कई बार समूची जातियों तक को वहां से अन्यत्र जाना पड़ा था। यों इन विभिन्न राजपूत कुलों की जातीय भूमियां समय-समय पर बदलती रही हैं। राजस्थान तथा उसके पड़ोसी प्रदेशों में भी बहुत से क्षेत्र इन विभिन्न राजपूत कुलों से सम्बद्ध होने के कारण उनके नामों से सदियों तक पुकारे जाते रहे हैं यद्यपि उनमें से कइयों का सम्बन्ध बहुत पहले ही समाप्त हो चुका था। इन जातीय-भूमियों को ठीक तरह से जाने या समझे बिना उन विभिन्न राजपूत कुलों के इतिहास की विभिन्न प्रवृत्तियों या उनकी अनेकानेक विशेषताओं का ठीक-ठीक कारण या महत्त्व नहीं आंका जा सकता है। तदर्थ राजस्थान के विभिन्न क्षेत्रों के साथ ही वहां निवास करने वाली प्रमुख जातियों तथा अब तक शासन करने वाले राजघरानों का पूरा सही इतिहास जानने के लिये इस दिशा में अत्यावश्यक खोज और अध्ययन करना सर्वथा अनिवार्य हो गया है।

यही कारण है कि यह जानते हुए कि टॉड की प्रायः ये सारी मान्यताएं भ्रमपूर्ण ही प्रमाणित हो चुकी हैं, और यह मानते हुए भी कि टॉड का तत्सम्बन्धी बहुत-कुछ विवरण अनेकों बातों में गलत और भ्रमपूर्ण है उसका यह नया हिन्दी अनुवाद यहां प्रस्तुत किया जा रहा है। इन सारी मान्यताओं तथा भ्रमों का प्रारम्भ टॉड के ही इस विवरण से हुआ था। पुनः टॉड ने अपने इस ग्रन्थ के सब ही भागों में विविध प्रकार की बहुल सामग्री एकत्र कर दी है, उसे भी समूची हिन्दी भाषा-भाषियों को सुलभ करना अत्यावश्यक है, जिससे उसका अध्ययन तथा उस पर पूरा मनन कर उसमें से उपादेय जानकारी का यथास्थान उपयोग किया जा सके।

ठीक अनुवाद करना यों भी कठिन कार्य है और टॉड जैसे ओजस्वी लेखक के इस 'राजस्थान' ग्रन्थ का अनुवाद करना तो वस्तुतः अनुवादक के लिये कसौटी ही है। प्रसन्नता की बात है कि 'टॉड राजस्थान' का यह अनुवाद करने में श्री देवीलाल पालीवाल को पर्याप्त सफलता मिली है। इस संशोधित संस्करण को तैयार करने में श्री ओझाजी द्वारा सम्पादित खड्गविलास प्रेस बांकीपुर, वाले अनुवाद से पूरी-पूरी सहायता ली गई है जिसके लिये उसके बहुत ही कृतज्ञ हैं। किन्तु प्राचीन राजवंशों सम्बन्धी उस जैसी विशेष विस्तृत टिप्पणियां देना आवश्यक नहीं जान पड़ा। राजस्थान विश्वविद्यालय जयपुर के भूतपूर्व इतिहास-आचार्य डॉ० मथुरालाल शर्मा ने इस भाग की भूमिका लिखने का अनुग्रह किया है जिसके लिये उनके आभारी हैं। प्रकाशक श्री उमरावसिंहजी 'मंगल' ने बड़ी लगन और बहुत चाव के साथ 'टॉड राजस्थान' के इस हिन्दी अनुवाद के प्रकाशन का यह आयोजन किया है। इस भाग को तैयार करवा कर उसे इस सुचारु रूप में छपवा कर प्रकाशित करने में उन्होंने पूरा-पूरा उत्साह दिखाया है। इस भाग की अनुक्रमणिका भी उन्होंने ही तैयार की है। अतः उनके लिये हृदय से मंगल-कामना करते हुए आशा करता हूं कि वे इस महत्त्वपूर्ण विशद इतिहास-संग्रह-ग्रन्थ के इस नये हिन्दी अनुवाद को सम्पूर्ण प्रकाशित करने में सफल मनोरथ होंगे और यों राष्ट्र-भाषा हिन्दी के साहित्य-भण्डार को पुनस्पन्न बना सकेंगे।

"रघुबीर निवास"
सीतामऊ (मालवा)
जनवरी २६ ’६१

रघुबीरसिंह

भूमिका

कर्नल जेम्स टॉड ने यह बृहद् ग्रन्थ उन्नीसवीं शताब्दी के प्रारम्भ में लिखा था। इससे पहिले राजस्थान का इतिहास केवल ख्यातों और कहानियों के रूप में था। क्रमबद्ध इतिहास कोई नहीं था। टॉड ने ही सबसे पहले राजस्थान का नक्शा तैयार किया था। उसने प्रायः प्रत्येक रियासत की चप्पा चप्पा भूमि देखी थी और जहां गया वहां से अपने इतिहास के लिये विविध प्रकार की विपुल सामग्री का संग्रह किया था। 'टॉड का राजस्थान' शुद्ध इतिहास नहीं है। स्वयं उसने अपनी भूमिका के अन्त में लिखा है कि यदि यह शुद्ध इतिहास होता तो इसमें बहुत सी रोचक और उपयोगी सामग्री का कथानकों और गाथाओं का समावेश नहीं सकता था। परन्तु फिर भी टॉड ने राजस्थान के इतिहास की दिशा में बड़ा पांडित्यपूर्ण प्रयास किया है। इसमें यत्र तत्र तिथि क्रम और घटनाओं की भूलें रह गई हैं और कहीं-कहीं अतिशयोक्तियां भी हैं तथा कल्पनाओं के आधार पर जो निष्कर्ष निकाले गये हैं, वे भी सन्तुलित नहीं मालूम होते। परन्तु टॉड की कृति प्रथम प्रयास है और ऐसे समय की रचना है जब ऐतिहासिक शोध का प्रारम्भ भी नहीं हुआ था। इस ग्रन्थ में इतनी सामग्री है कि वर्तमान इतिहासकार का इसके बिना काम नहीं चल सकता। इस ग्रन्थ के आधार पर कई इतिहास नाटक उपन्यास और कहानियां लिखी जा चुकी हैं और इस समय भी यह बड़ा ही उपयोगी माना जाता है।

इस पुस्तक के दो तीन हिन्दी अनुवाद पहले भी प्रकाशित हो चुके हैं। यह अनुवाद डॉ रघुवीरसिंह (महाराज कुमार) सीतामऊ, के सम्पादकत्व में प्रकाशित किया जा रहा है। ऐसे ख्यातनामा विद्वान् द्वारा सम्पादित यह हिन्दी अनुवाद अवश्य ही विद्वानों को ग्राह्य होगा। इसमें बड़ी उपयोगी टिप्पणियां दी गई हैं जिनसे प्रगट होता है कि वर्तमान ऐतिहासिक शोध में टॉड के बाद कितना काम हो चुका है। 'टॉड का राजस्थान' बहुत बड़ा ग्रन्थ है। अभी इसके प्रथम परिच्छेद के आठ अध्यायों का अनुवाद प्रकाशित हो रहा है। इसमें टॉड ने राजस्थान का भूगोल दिया है। इस विषय का टॉड प्रथम लेखक है और यह उसका आंखों देखा चित्र है। शेष अध्यायों में राजपूतों की उत्पत्ति का वर्णन है और इस विषय में विविध स्रोतों का विवेचन किया गया है और फिर राजपूतों के प्राचीन कुलों का संक्षिप्त और तुलनात्मक वृत्तान्त लिखा गया है। टॉड का मन्तव्य है कि राजपूत लोगों की उत्पत्ति सीथियन लोगों से हुई है। इसके उसने कई कारण दिये हैं। उसके बाद इस विषय पर बहुत कुछ लिखा जा चुका है। डॉ रामकृष्ण भण्डारकर श्री ए विसेण्ट स्मिथ, गौरीशंकर ओझा और डॉ पुरुषोत्तम लाल भार्गव ने इस विषय में गहन खोज की है। अब टॉड का मत सर्व मान्य नहीं है। तो भी यह रद्द नहीं कहा जा सकता। इस विषय पर विचार करते समय इस बात का उल्लेख और अवगाहन आवश्यक है।

यह अनुवाद बड़े परिश्रम से किया गया है। टॉड की भाषा जटिल दुरूह और ओजस्विनी है। इसका ठीक-ठीक अनुवाद करना अति कठिन है। तो भी इस अनुवाद में टॉड के भावों की यथासाध्य रक्षा करने का प्रयत्न किया गया है। कहीं कहीं व्याकरण की दृष्टि से भाषा कुछ गिर गई है। परन्तु विदेशी भाषा का और विशेषकर टॉड की भाषा का हिन्दी में अनुवाद करना कोई साधारण कार्य नहीं है। पूरा होने पर यह अनुवाद बड़ा उपादेय और उपयोगी होगा और राजस्थान के इतिहास का अध्ययन करने में विद्वानों को इससे बड़ी सहायता प्राप्त होगी।

—मथुरालाल शर्मा

विषय सूची

भूमिका

(कर्नल जेम्स टॉड लिखित)

यूरोप में इस बात पर अत्यन्त निराशा प्रकट की गई है कि भारतवर्ष में गम्भीर ऐतिहासिक चिन्तन का अभाव है। जब सर विलियम जोन्स ने सब प्रथम संस्कृत साहित्य के विपुल भण्डार की खोज आरम्भ की तब यह आशा की गई थी कि इस प्रयत्न के द्वारा विश्व-इतिहास में विशेष वृद्धि होगी। किन्तु यह आशा पूर्ण नहीं हुई, और जैसा कि प्राय होता है इस आशापूर्ण उत्साह की जगह उदासीनता और विरक्ति फैलती गई। सामान्य तौर पर अब लोग इस बात को स्वत सिद्ध मानते हैं कि भारतवर्ष का कोई राष्ट्रीय इतिहास नहीं है। फ्रांस के एक प्रसिद्ध प्राच्य विद्या-विशारद ने उपरोक्त धारणा के विरुद्ध यह प्रश्न उठाया कि यदि भारतवर्ष का कोई राष्ट्रीय इतिहास नहीं था तो अबुलफज़ल को प्राचीन हिन्दू इतिहास की रूपरेखा तैयार करने के लिए सामग्री कहां से प्राप्त हुई?[1] वास्तव में, काश्मीर के इतिहास सम्बन्धी पुस्तक[2] राजतरंगिणी"(1) का अनुवाद कर विल्सन महोदय ने इस भ्रम को मिटाने में भारी योग दिया है। इससे यह प्रमाणित हो गया कि नियमित इतिहास लिखने की परिपाटी का भारतवर्ष में अभाव नहीं था और इससे यह भी सन्तोषपूर्वक माना जा सकता है कि किसी काल में ऐसी सामग्री आज से कहीं अधिक मात्रा में उपलब्ध थी और यदि विशेष प्रयत्न किये जांय तो और भी अवशिष्ट ऐतिहासिक साहित्य प्रकाश में लाया जा सकता है। यद्यपि फ्रांस और जर्मनी[3] के विद्वानों के साथ साथ कोलब्रुक, विलकिन्स विल्सन तथा हमारे देश के अन्य विद्वानों ने भारतवर्ष के गुप्त विद्या भण्डार के कुछ विषयों की पूर्वीपवासियों के सम्मुख प्रकट किया है किन्तु अब भी इतना ही कहा जा सकता है कि हम अब तक केवल भारतीय ज्ञान के द्वार तक ही पहुंच पाये हैं और इसलिये हम

---

१ "मेलेन्जेज् एशियाटिक्स" में मिस्टर ऐबल रेमुसेट ने इस विषय पर बहुत ही उपयुक्त और कठोर बातें कही हैं जिनमें उन्होंने बिना किसी उद्देश्य के हमारे देशी भाइयों के निरुत्साह की उचित आलोचना की है। रायल एशियाटिक सोसाइटी, और मुख्यत पूर्वीय साहित्य के अनुवाद से सम्बन्धित उसका विभाग अब भी इस आक्षेप का निवारण कर सकता है।

२ "एशियाटिक रिसर्चेज्" भाग १५

३ अगर श्लेगल जैसे तीक्ष्ण बुद्धि वाले विद्वान् लेखकों का योग इस उत्साहपूर्ण कार्य में मिल जाय तो फिर पूर्वीय साहित्य के पठन-पाठन से क्या-क्या नये आविष्कारों की आशा नहीं की जा सकती है?

---

(१) 'राजतरंगिणी' की रचना महाकवि कल्हण ने १२ वीं शताब्दी में की थी। उसमें कुल मिला कर ८८२१ श्लोक हैं प्रथम चार तरङ्गों में पौराणिक काल से लेकर कर्कोटक नाग वंशीय राजाओं तक का इतिहास है, पांचवीं तरङ्ग में अवन्ति वर्मा आदि राजाओं की वंशावली का चित्रण है, छटी तरङ्ग में यशस्कर ब्राह्मण से लेकर दिद्दा नामक किसी रानी तक का उल्लेख है सातवीं तरङ्ग में अनन्त कलश और हर्ष जैसे ख्याति प्राप्त राजाओं का इतिहास वर्णित है और आठवीं तरङ्ग में उच्चल सुस्सल एवं जयसिंह प्रभृति राजाओं की वंशावली वर्णित है। यो राजतरंगिणी में पौराणिक काल से लेकर १२ वीं शताब्दी तक लगभग दो हजार वर्षों का क्रमबद्ध इतिहास नाम एवं तिथि क्रम से वर्णित है।

निश्चयात्मक रूप से भारतीय ज्ञान के बारे में कुछ भी कहने की स्थिति में नहीं हैं। भारतवर्ष के विभिन्न भागों में ऐसे बड़े–बड़े पुस्तकालय अब तक विद्यमान हैं जो इस्लाम धर्म के प्रवर्तकों द्वारा विनष्ट होने से बच गये हैं। उदाहरणार्थ जैसलमेर और पट्टन में ऐसे प्राचीन साहित्य के संग्रह विद्यमान हैं जो जीवित रहनेवाले आक्रांता(२) के अनुसंधान से भी बच गये। उपरोक्त दोनों राज्यों को अलाउद्दीन ने ध्वस्त किया था और यदि वह उपर्युक्त साहित्य संग्रहों को देख लेता तो निस्सन्देह ही वह उनकी वैसी ही दुर्दशा करता जो उमर ने सिकंदरिया(३) के पुस्तकालय की की थी। इस प्रकार के कई अन्य छोटे–छोटे संग्रहालय मध्य एवं पश्चिमी भारत के प्रदेशों में विद्यमान हैं जिनमें से प्रत्येक हजारों ग्रन्थों से भरा पड़ा है। इन संग्रहों में कुछ तो राजाओं की व्यक्तिगत सम्पत्ति हैं और कुछ जैन सम्प्रदायों के अधिकार में हैं।[४] यदि हम भारतवर्ष की तत्कालीन राजनैतिक उथल पुथल और परिवर्तनों पर विचार करें जो महमूद गजनवी के आक्रमण के बाद भारत में होते रहे हैं तथा उसके कई उत्तराधिकारियों की अत्यन्त धार्मिक कट्टरता पर ध्यान दें, तो हमें भारतवर्ष के राष्ट्रीय इतिहास सम्बन्धी ग्रन्थों की न्यूनता का कारण विदित हो जायगा। साथ ही हम यह अनहोनी राय भी नहीं बना लेंगे कि हिन्दू लोगों को उस कला का ज्ञान नहीं था जो कि अन्य देशों में अत्यन्त प्राचीनकाल से फलती फूलती रही है। क्या यह कल्पना की जा सकती है कि उच्च सभ्यता वाले राष्ट्र के धनी हिन्दू लोग जिन्होंने कई प्रकार की विद्यायें उन्नत की हैं जिनके द्वारा गृह-निर्माण कला मूर्तिकला काव्य और संगीत आदि उच्च कलायें न केवल खूब फली-फूली अपितु जिन्होंने इन कलाओं के नियमों की अत्यन्त उत्तम एवं सुस्पष्ट व्याख्या की और शिक्षा दी वे अपने इतिहास की घटनाओं को क्रमबद्ध रूप से लिखने की एवं अपने राजा–महाराजाओं के चरित्रों तथा उनके शासनकाल की विशेष बातों को अंकित करने जैसी साधारण कला का ज्ञान न रखते हों?

---

४ जैसलमेर में उपलब्ध जैनियों की हस्तलिखित पुस्तक की कुछ प्रतियां, जो पांचवीं से आठवीं शताब्दी पूर्व की लिखी हुई थीं, मैंने रायल एशियाटिक सोसाइटी को भेंट की थीं। पट्टन और जैसलमेर के पुस्तकालयों की इन असंख्य हस्तलिखित पुस्तकों में से कई अत्यन्त प्राचीन काल की हैं, जिनकी लिपि उनके स्वामी भी नहीं पढ़ पाते हैं अथवा केवल उनके प्रधान आचार्यों एवं उनके प्राचीन कार्य करने वाले पुस्तकाध्यक्षों द्वारा ही पढ़ी जा सकती हैं। इनमें तन्त्रविद्या की एक पुस्तक इतनी पवित्र मानी जाती है कि चिन्तामणि मन्दिर में सदा सांकल से लटकी रहती है और उसके ऊपरी आवरण को बदलने के लिए अथवा किसी आचार्य की नियुक्ति के समय ही वह नीचे उतारी जाती है। कहते हैं कि यह ग्रन्थ इस्लाम धर्म के सिन्धु नदी के इस पार आने से पूर्वकाल के आचार्य-सोमादित्य सूरी की रचना है, जिसके धर्म का प्रभाव सिन्धु नदी के उस पार भी दूर तक फैला हुआ था। उसका करामाती (चमत्कारी) कपड़ा भी अभी तक सुरक्षित है जो नये आचार्यों के गद्दी पर बैठने के समय काम में लाया जाता है। अक्षर निस्सन्देह ही पाली लिपि के हैं और यदि हम लोग अथक विनम्र और प्रवीण विद्वान हैं क्योंकि और उसके साथी डा. मैसेज को उस मन्दिर में भेज सकते तो उस दुर्बोध ग्रन्थ का कुछ तात्पर्य अवश्य समझ में आ सकता था और उनकी भावों को कोई हानि नहीं पहुंचती, क्योंकि एक जैन यती-यति पर जोशी जबकि उसने इसके आशय को समझने के लिए अंकित करने इस प्रकार की धर्म-अंकित सेवा की थी।

---

(२) अलाउद्दीन खिलजी

(३) खलीफा उमर के सेनापति अम्र इब्न उल्आस ने सन् ६४० ई. में मिस्र के प्रसिद्ध नगर सिकंदरिया (Alexandria) को विजय करने के समय वहां के प्राचीन पुस्तकालय को खलीफा की आज्ञा से जलाकर राख कर दिया था। उमर के पूछने पर खलीफा ने उत्तर लिखा था कि यदि ये पुस्तकें कुरान के अनुसार हैं तो इसको अनेक भाषाओं में असंख्य अनुवादों की आवश्यकता नहीं यदि इनका आशय कुरान के विरुद्ध है तो सब नष्ट करने के योग्य हैं, अतः सबको नष्ट कर दो। कहा जाता है कि पुस्तकों का वह संग्रह इतना बड़ा था कि ६ (छः) मास तक इनसे शहर के हम्मामों में जल गरम होता रहा।

जहां बौद्धिक विकास के ऐसे लक्षण प्राप्त होते हैं वहां घटनाओं को लिखने वाले योग्य इतिहास-लेखकों का अभाव रहा हो, यह बात कैसे मानी जा सकती है ? समकालीन इतिहासकार हमें यह बताते हैं कि उस समय की घटनायें रोचक एवं स्मरण रखने योग्य थी। इसलिये हम इस बात पर विश्वास नहीं कर सकते कि भारतवर्ष में इतिहास के लेखकों का अभाव था। हस्तिनापुर और इन्द्रप्रस्थ अणहिलवाड़ा और सोमनाथ जैसे शहर, देहली एवं चित्तौड़ के विजय स्तम्भ आबू और गिरनार के मन्दिर एलिफेन्टा और एलोरा के गुफा-मन्दिर ये सभी बहुत ही भव्य सभ्यता के प्रतीक हैं। इनको देखकर हम यह सोच भी नहीं सकते कि जिस युग में ये सब निर्माण कार्य हुए, उस समय कोई इतिहासकार नहीं रहा होगा। तिस पर भी महाभारत के युद्ध से लेकर सिकन्दर के आक्रमण तक और उस ऐतिहासिक घटना से लेकर महमूद गजनवी के आक्रमणकाल तक विशुद्ध हिन्दू-इतिहास का एक भी पृष्ठ(उपरोक्त ग्रन्थों के सिवाय) पश्चिमी विद्वानों के समक्ष नहीं खोला जा सका है। भाट-कवि चन्द द्वारा लिखित देहली के अन्तिम हिन्दू-सम्राट पृथ्वीराज के गौरवपूर्ण इतिहास में हम ऐसे संकेत देखते हैं जिससे हम यह राय बना सकते हैं कि उस काल में उसके ग्रन्थ के समान अन्य कई ग्रन्थ विद्यमान थे जो महमूद और शहाबुद्दीन (१ —११९३ ई) के बीच के काल से सम्बन्धित थे किन्तु जो बाद में लुप्त हो गये।

विदेशी विजेताओं की आठ शताब्दियों की अत्यन्त निर्मम आधीनता में रहने तथा इस देश की प्राचीन संस्कृत भाषा का बिल्कुल ज्ञान नहीं रखने वाले उन असभ्य कट्टर एवं क्रूर शत्रुओं द्वारा इस देश के प्रत्येक प्रधान नगर को बार-बार लूटने और विनष्ट करने के बाद यह आशा नहीं की जा सकती कि इस देश की अन्य महत्वपूर्ण वस्तुओं के साथ-साथ साहित्य की भी असाध्य हानि नहीं पहुंची हो। राजवाड़े के इतिहास की अपूर्ण अवस्था की जब कभी मैंने आलोचना की तब मुझे बहुत ही उचित प्रत्युत्तर मिला 'जब हमारे राजा लोगों से अपनी राजधानियां छूट जाती थी, वे एक दुर्ग से दूसरे दुर्ग में खदेड़े जाते थे,जो उन्हें प्रायः पहाड़ों की कन्दराओं में रहने को मजबूर होना पड़ता था और हमेशा यह डर लगा रहता था कि कहीं सामने परोसी हुई भोजन की थाली को भी न छोड़ना पड़े तब ऐसी स्थिति में ऐतिहासिक घटनाओं को लेखबद्ध करने का विचार करने का भी अवसर मिल सकता था ?'

जो लोग हिन्दुओं से उसी प्रकार के ग्रन्थों की रचना की आशा रखते हैं जिस प्रकार कि ग्रीस और रोम के ऐतिहासिक ग्रन्थ लिखे गये हैं वे एक बड़ी भारी भूल करते हैं। ऐसे लोग भारतवासियों की उन विशेषताओं पर ध्यान नहीं देते जो उन्हें अन्य देशों की जातियों से पृथक् करती हैं और जो उनकी बौद्धिक रचनाओं को पश्चिम की रचनाओं से भिन्न रूप में विकसित करती हैं। उनके दर्शन उनके काव्य उनकी शिल्पकला सभी में मौलिकता के गुण विद्यमान हैं तो उनके इतिहास में भी उस गुण के विद्यमान न होने की आशा न की जानी चाहिये। उनकी उपरोक्त समस्त कलाओं की भांति उनके इतिहास का स्वरूप भी देशवासियों के धर्म के साथ उनके बने सम्बन्ध से निश्चित हुआ है। साथ ही हम बात का भी स्मरण रखना चाहिये कि जब तक यूरोप के पुरातन साहित्य-ग्रन्थों की शैलियों का अध्ययन करके उसके आधार पर इंग्लैंड और फ्रांस के साहित्य की शैली ठीक नहीं की गई थी, तब तक इन दोनों देशों यहां तक कि यूरोप के समस्त सभ्य देशों के इतिहास भी उसी अपरिपक्व अव्यवस्थित एवं शुष्क भाषा में लिखे जाते थे जैसे कि प्राचीन राजपूतों के इतिहास रहे हैं।

नियमबद्ध एवं समुचित ऐतिहासिक विवरणों के अप्राप्य होने पर भी अन्य प्रकार के कई देशीय ग्रन्थ उपलब्ध हैं (जो वास्तव में बड़ी भारी संख्या में मिलते हैं)। यदि कोई चतुर एवं धैर्यवान व्यक्ति उनकी शोध करे तो वह उनसे भारतवर्ष के इतिहास के लिये यथेष्ट मात्रा में सामग्री प्राप्त कर सकता है। इन ग्रन्थों में सर्वप्रथम पुराण और राजाओं की वंशावर्णन सम्बन्धी कथाएं हैं। ये यद्यपि धर्म सम्बन्धी बातों रूपकों और असम्भव लगने वाली परिस्थितियों के वर्णन से भरी हुई हैं किन्तु उनमें कई ऐसे तथ्य हैं जो इतिहासकार की शोध के लिए प्रकाश-स्तम्भ का काम दे सकते

है। विद्वान् ह्यूम ने सेक्सन जाति के सात राज्यों(४)के इतिहासों और इतिहासकारों के सम्बन्ध में जो बातें कही हैं वह राजपूतों के खास राज्यों[१] के बारे में भी सही हैं। "उनमें नामों की बहुतायत है किन्तु घटनाओं का अत्यन्त अभाव है अथवा परिस्थितियों और कारणों के वर्णन के बिना वे परस्पर इस प्रकार से उलझे हुए हैं कि परम चतुर लेखक भी उनको पाठकों के लिये रुचिप्रद अथवा शिक्षाप्रद बनाने में अवश्य हताश हो जाएगा। ईसाई साधु (जिनके समान राजपूतों में ब्राह्मण होते हैं) जो सांसारिक कार्यों से पृथक् रहते थे लौकिक कार्यों को पारलौकिक कार्यों से निम्न समझते थे उन पर अन्धविश्वास आश्चर्यपूर्ण घटनाओं के प्रति प्रेम और छलप्रपंच की प्रवृत्ति का प्रभाव पड़ गया था।"

भारतवर्ष का वीरता-प्रधान काव्य इतिहास जानने सम्बन्धी दूसरे साधन हैं भाट लोग जो मानव जाति के सबसे प्राचीन इतिहासकार माने जा सकते हैं। जब तक कवियों का ध्यान कथा-साहित्य की ओर नहीं गया था अथवा यों कहें कि जब तक लेखकों के एक वर्ग ने इतिहास के पद को प्रतिष्ठित कर उसे साहित्य का एक विशिष्ट विभाग नहीं बना दिया था तब तक निस्सन्देह ही तत्कालीन कविजन ही वास्तविक घटनाओं को लेखबद्ध करने और युग के प्रसिद्ध व्यक्तियों की स्मृति को अमर करने का कार्य करते थे। भारतवर्ष में व्यासजी से जो जाब(५) के समकालीन थे भाट कवियों द्वारा केलिओपी (६) की पूजा चली आती है और यह काम भी मेवाड़ के वर्तमान इतिहास-लेखक बेनीदास(७) द्वारा की जाती है।

कविजन पश्चिमी भारत के प्रधान इतिहासकार रहे हैं यद्यपि हम यह नहीं कह सकते कि उनके सिवाय कोई दूसरे इतिहासकार नहीं हुए, उनकी (इतिहास लेखक कवियों की) कमी भी नहीं है यद्यपि वे एक विशिष्ट भाषा में बोलते हैं जिसका इस प्रकार की गम्भीर भाषा में अनुवाद होना आवश्यक है जिससे घटनायें और वस्तुयें सम्भव मालूम पड़ें। उनकी भावनाकुलता और अस्पष्टता की पूर्ति उनकी स्वच्छन्द लेखनी से हो जाती है। राजपूत राजाओं की निरंकुशता का प्रभाव कवियों की काव्यधारा पर नहीं पड़ा जो प्रवाह रूप से बहती रही है यदि उनके काव्य को किसी ने रोका अथवा बांधा है तो केवल 'कुं भुअंग' अथवा 'सर्पाकार दुर्गों' के स्वरूप ने। इस बात को अवश्य ही स्वीकार किया जाना चाहिए कि ऐतिहासिक चिन्तन की स्वतन्त्रता पर लेशमात्र भी बन्धन अथवा प्रतिबन्ध नहीं था। इसके प्रतिकूल कवि और राजा के मध्य एक प्रकार का समझौता अथवा सौदा होता था। कवि भाट राजा लोगों की बढ़ा-चढ़ाकर प्रशंसा करते थे और राजा उन्हें पुष्कल धन देते थे। निस्सन्देह ही इसके द्वारा कविता-मय इतिहास की स्पष्टता में दोष आ जाता है। भाट लोग उपरोक्त सौदे को 'सुस्वस्ति' का सौदा कहते आये हैं जो राजस्थान के दरबारी कवियों और इतिहासकारों ने आज तक किया है। यह प्रवृत्ति तब तक चलती रहेगी जब तक कि कवियों और इतिहासकारों के मध्य ऐसे जाग्रत और स्वच्छन्द विचार वाले लोग न उत्पन्न हो जायेंगे जो अपने साहित्यिक श्रम का पारितोषिक केवल सर्वसाधारण में सम्मानित होने में ही चाहेंगे और अन्य किसी प्रकार के पारितोषिक के लिये आकांक्षा नहीं रखेंगे।

---

१. मेवाड़, मारवाड़, आमेर, बीकानेर, जैसलमेर, कोटा और बूंदी

---

(४) जब रोमन लोग इंग्लैण्ड को छोड़ कर चले गये तो उनके पीछे ऐंग्लो-सेक्सन जाति ने उस देश को जीत कर सात राज्य कायम किये जो सन् ४५० से ८२७ ई० तक रहे। ये राज्य अंग्रेजी इतिहास में सेक्सन हेप्टार्की (Saxon Heptarchy) के नाम से प्रसिद्ध हैं।

(५) जाब एक प्रसिद्ध ईश्वर भक्त थे जो ईसा से बहुत पहले हुए थे।

(६) प्राचीन काल में यूनान देश में वीररसात्मक काव्य की अधिष्ठात्री देवी का नाम केलिओपी था जिसको हमारे यहाँ की सरस्वती देवी समझना चाहिए।

(७) बनीदास अथवा बेनीदास उदयपुर के महाराणाओं का वंशपरम्परागत बड़वा अर्थात् [illegible] [illegible] वाला था जो महाराणा भीमसिंह के राज्यकाल में विद्यमान था। लेखक (टॉड) ने इससे मेवाड़ के महाराणाओं की वंशावली आदि कई ऐतिहासिक वृत्तान्त मालूम किये थे।

इतना होते हुए भी ये इतिहासकार कटु सत्य कहने का साहस रखते थे जो कभी कभी उनके स्वामियों के लिए अत्यन्त अरुचिकर होता था। अनैतिकता की बातें देखकर जब कवि अत्यन्त दुखी होते थे और मानसिक क्षोभ से उद्वेलित हो जाते थे तो वे परिणामों से निडर होकर, उनको दुखी और क्षोभित करने वाले राजा की निन्दा करने से भी नहीं चूकते थे। कवियों के इस प्रकार के कई निन्दात्मक कथन उनकी उपहासात्मक रचनाओं में विद्यमान हैं, उनमें अनेक ऐसे हठी लोगों का उपहास किया गया है जो यदि कवियों को क्रुद्ध न करते तो वे अपयश के धब्बे से बच जाते। राजपूत शत्रु की कटार की अपेक्षा कवि की विषमय वाणी की मार से अधिक डरता है।

राजपूत राज्यों में सर्वसाधारण से राजकीय बातों का कोई रहस्य नहीं रखा जाता सामान्यतः उनमें उच्च सरदार से लेकर द्वारपाल तक प्रत्येक व्यक्ति रुचि लेता है। ऐसी स्थिति में घटनाओं को लिपिबद्ध करने वाले इतिहासकार को बड़ी सुविधा मिलती है। लगातार अस्तव्यस्त अवस्था में रहने वाले देश मेवाड़ में कई बार ऐसा समय भी आया जब कि कई बातों को गुप्त रखना अत्यन्त आवश्यक हो गया उस समय मेवाड़ के राणा ने यह विचार प्रकट किया "यह चौमुखी राज[1] है एकलिंग इसके स्वामी हैं मैं उनका प्रतिनिधि हूं, मेरा विश्वास उन्हीं में है और मैं अपने बालबच्चों (प्रजा) से कुछ भी नहीं छिपाता।" सामान्य शत्रुओं के विरुद्ध संगठन करते समय आवश्यक राजकीय बातों को सर्वसाधारण से गुप्त न रखने की प्रवृत्ति का परिणाम यह होता है कि उनका सामना करने में कई त्रुटियां (कमियां) आ जाती हैं किन्तु यह भी सही है कि इस भावना के कारण शासन को पैतृक स्वरूप मिल जाता है और उससे सर्वसाधारण में स्वामी भक्ति और देश-भक्ति की भावनायें उत्पन्न हो जाती हैं यद्यपि ये भावनायें पूर्ण और गहरी नहीं हो पाती।

इन कवितामय इतिहासों की एक बहुत बड़ी न्यूनता यह है कि उनका वर्णन योद्धाओं द्वारा रणक्षेत्र में प्रदर्शित किये गये वीरतापूर्ण कार्यों तक ही सीमित रहता है अथवा यों कहें कि उनकी लेखनी का क्षेत्र 'रंग-रणभूमि' अर्थात् प्रेम और युद्ध के किस्सों तक ही व्याप्त है। युद्ध पसन्द करने वाली जाति के मनोरंजन के लिए लिखने वाले लेखक सर्व साधारण से सम्बन्धित बातों और शान्तिमय जीवन से सम्बन्धित कला कौशल की बातों को महत्त्व नहीं देते प्रेम और युद्ध ही उनके विषय होते हैं। भारतवर्ष का अन्तिम बड़ा भाट कवि चन्द (८) अपने ग्रन्थ (९) की भूमिका में लिखता है कि, "मैं साम्राज्यों के शासन सम्बन्धी नियमों की व्याख्या करूंगा" आदि और कवि चन्द ने अपने संकल्प को पूरा किया है उसने अपने ग्रन्थ में विभिन्न घटनाओं के वर्णन के साथ साथ भिन्न भिन्न स्थानों पर उपरोक्त बातों की व्याख्या कर दी है।

इसके अतिरिक्त भाट कवि राज्य-व्यवस्था से सम्बन्धित प्रत्येक गुप्त कार्यवाही का ज्ञान रखने पर भी राज-दरबार के षड्यन्त्रों और अन्य प्रकार की हल्की बातों में इतने गहरे उतर जाते हैं कि राजकार्यों के विषय में यथार्थ सम्मति प्रकट करने के योग्य नहीं समझे जाते।

इन तमाम कमजोरियों के होते हुए भी देशी भाट कवियों के ग्रन्थ तथ्यों घटनाओं धार्मिक विचारों आचार-व्यवहार के तरीकों आदि के सम्बन्ध में बहुत ही मूल्यवान सामग्री प्रस्तुत करते हैं जिनमें से अधिकांश अनपेक्षित लिख दी गई हैं और वे सब से कम सन्देह-युक्त ऐतिहासिक प्रमाण माने जा सकते हैं। कवि चन्द लिखित पृथ्वीराज के वीरता-पूर्ण इतिहास में कई भौगोलिक एवं ऐतिहासिक तथ्यों का विवरण अपने सम्राट् की लड़ाइयों का वर्णन करते समय दिया गया है और जिन्हें उसने स्वयं अपनी आंखों से देखा था। कवि चन्द सम्राट पृथ्वीराज को अपमान से बचाने के लिए

---

१ चार मुंह वाले का राज्य अर्थात् उनके इष्टदेव एकलिंग का राज्य

---

(८) कवि चन्द बरदाई। (९) पृथ्वीराज रासो

एवं अपने महाराणा की शोकजनक मृत्यु में भी सहायक हुआ। चन्द का यह कवितामय इतिहास (१०) मेवाड़ के महान् राणा अमरसिंह द्वारा संग्रहीत किया गया था जो स्वयं साहित्य के संरक्षक एक अच्छे योद्धा तथा नीतिज्ञ थे।

इतिहास जानने के अन्य साधनों में ऐतिहासिक लेख मन्दिरों को दान भेंट तथा उनके गिरने टूटने और वापस मरम्मत होने आदि के विषय में ब्राह्मणों द्वारा लिखे गये वर्णन हैं, जब कि ऐसे अवसरों पर उनमें प्रसंग-वशात् ऐतिहासिक और वंशावलियों सम्बन्धी ब्यौरा भी दिया जाता था। तीर्थस्थानों और धार्मिक स्थानों से सम्बन्धित माहात्म्यों में मिथ्याविश्वास से पूर्ण संस्कारों और धर्म-कार्यों स्थानीय धार्मिक समारोहों और रीति-रिवाजों के साथ-साथ धर्म से सम्बन्ध न रखने वाली घटनाएं भी दी हुई होती हैं। जैनियों के शास्त्रार्थों से भी यथेष्ट ऐतिहासिक सामग्री मुख्यतः गुजरात और नहरवाला (११) के सम्बन्ध में चालुक्य वंश के समय की मिलती है। जैनधर्म की पुस्तकों का गहरा एवं ध्यान पूर्वक अध्ययन करने से जो कि इस धर्म के अनुयायियों के विज्ञान सम्बन्धी ज्ञान से परिपूर्ण हैं हिन्दू-इतिहास के कई रिक्त स्थानों की पूर्ति की जा सकती है। भारतवर्ष के परस्पर विरोधी मतावलम्बियों की संकुचित भावना निस्संदेह ही इतिहास की शुद्धता पर विपरीत प्रभाव डालती थी और जिस आधार पर ब्राह्मण लोग अपनी उच्चता का निर्माण करते थे वह जनसमुदाय का अज्ञान होता था। ऐसा प्रतीत होता है कि प्राचीन काल में भारतवर्ष और मिश्र में राजाओं एवं धार्मिक आचार्यों के बीच इस बात का प्रयत्न था कि वे राष्ट्र के सर्वसाधारण को अज्ञान के अन्धकार में रखकर अपनी आधीनता में बनाये रखें।

इस प्रकार की कई पुस्तकों का विद्यमान होना मुझे ज्ञात है जो ऐतिहासिक एवं भौगोलिक दोनों प्रकार के वृत्तान्तों से परिपूर्ण हैं। उनमें रास अथवा राजाओं की छन्दोबद्ध कथायें बहुत ही सामान्य रूप से मिलती हैं, स्थानीय पुराण धार्मिक लेख और जनश्रुति के दोहे* भी मिलते हैं क्रम शासनपद शिलालेख जिनके ताम्रपत्र अधिकार की सनदें जिनमें कई प्रकार के अधिकारों और देश की शासन-सम्बन्धी कई विशिष्ट बातों का उल्लेख होता है आदि प्राप्त होते हैं। ये सब मिला कर जैसा कि मैंने पूर्व भी कहा है इतिहासकारों के लिये बहुत मूल्यवान सामग्री हैं। इसके अतिरिक्त इतिहासकार को उस समय के दूसरे वृत्तान्तों से भी सहायता मिल सकती है जिनकी पुष्टि प्राचीन मूर्तिपूजकों और पश्चात काल के मुसलमान लेखकों की पुस्तकों में की जा सकती है।

जब से इस मनोरम देश से मेरा राजकीय सम्बन्ध प्रारम्भ हुआ तब से ही मैंने स्वयं को उसके प्राचीन ऐतिहासिक लेखों की खोज और संग्रह में लगाया। इस कार्य को हाथ में लेने का मेरा उद्देश्य यह था कि इस देश के लोगों के इतिहास पर कुछ प्रकाश डाला जाय जिनके बारे में यूरोप के लोगों को बहुत कम जानकारी है। इसके अति-रिक्त ऐसे समय में जब कि इंग्लैंड के साथ उसके राजनैतिक सम्बन्ध निश्चित रूप से परिवर्तित हो रहे हैं मेरे इस प्रयत्न से दोनों पक्षों को एक दूसरे को पूरी तरह समझने और सर्वथा उचित सम्बन्ध बनाने में लाभ पहुंचे। पाठकों के लिये

---

* इनमें से कई एक में उन बादशाहों के नाम हैं जिन्होंने महमूद गजनवी और शहाबुद्दीन के मध्य में भारत पर चढ़ाई की थी, जिनके नाम फरिश्ता के इतिहास में नहीं मिलते। इनके द्वारा अजमेर की चढ़ाई और मरु राजाओं की राजधानी बनाना की विजय का पता लगा।

---

(१०) यहां लेखक का तात्पर्य पृथ्वीराज रासो से है परन्तु रासो को कई विद्वान् प्रमाणिक ग्रन्थ नहीं मानते कई कुछ अंशों को प्रमाणिक मानते हैं। इस सम्बन्ध में पृथ्वीराज रासो [(रेपाउट) बसन्त विश्व विद्यालय द्वारा प्रकाशित] की भूमिका तथा डॉ मोतीलाल मेनारिया लिखित राजस्थान का पिंगल साहित्य (प्रथम सं १९५२ ई०) के पृ ४१ से ५१ तक विशेष रूपेण द्रष्टव्य हैं।

(११) गुजरात की राजधानी अणहिलवाड़ा को मुसलमान लेखकों ने 'अनहलवारा' या 'नहरवाला' और संस्कृत लेखकों ने अणहिलपुर या अणहिल पाटन लिखा है।

यह बात अरुचिकर होगी यदि मैं इसका विस्तृत वर्णन करने लगूं कि मैंने किस प्रकार राजपूत इतिहास के भिन्न भिन्न आकरों का संग्रह किया और किस प्रकार उनका सार निकाल कर उसको वर्तमान स्वरूप देकर पुस्तकाकार बनाया। मैंने पुराणों की पवित्र वंशावलियों से प्रारम्भ किया महाभारत का अध्ययन किया और चन्द की कविताओं (जो पूरी तरह तत्कालीन ऐतिहासिक विवरण से युक्त हैं) जैसलमेर, मारवाड़ और मेवाड़[८] की अनगिनत ऐतिहासिक

---

८. 'मारवाड़' के इतिहास सम्बन्धी काव्यों में 'सूरज प्रकाश' (१२) 'विजय विलास'(१३) और ख्यातों अथवा आख्यायिकाओं में शासनकालों के कुछ वर्णनांश भी मिलते हैं। मेवाड़ के इतिहास विषयक ग्रन्थ 'खुमाण रासो' (१४) एक नवीन ग्रन्थ है जो लुप्त हो गई प्राचीन सामग्रियों के आधार पर बनाया गया है। इसमें महमूद की चित्तौड़ पर की गई चढ़ाई से वर्णन प्रारम्भ किया गया है। यह महमूद सम्भवतः इस्लाम के बहुत प्रारम्भिक काल के सिन्ध निवासी किसी कासिम का लड़का था। इसके सिवाय दूसरे 'जय-विलास' (१५) राज प्रकाश'(१६) तथा 'जगत विलास' (१७) काव्य हैं वे अपने नाम के प्रसिद्ध राजाओं के समय में निर्मित हुए हैं। परन्तु इनमें पुराने ऐतिहासिक वृत्तान्त बहुत संक्षेप में हैं। इसके सिवाय जयपुर के इतिहास-संग्रहालयों में जयपुर राजवंश से सम्बन्धित वर्णनांश भी है और 'मानचरित्र' (१८) में राजा मान का इतिहास है।

---

(१२) "सूरजप्रकाश' —करणीदान रचित डिंगल भाषा का काव्य रचना-काल सं० १८०० वि० के आसपास। इसमें ७५०० छन्द हैं। टॉड ने इन्हें कन्नौज का तथा पं० रामकरण आसोपा ने आल्हाबास का चारण बताया है। डॉ० मोतीलाल मेनारिया के अनुसार ये कविया शाखा के चारण और मेवाड़ राज्य में शूलवाड़ा गांव के निवासी थे। ये महाराजा अभयसिंह के आश्रित थे। इस रचना से प्रसन्न होकर महाराजा ने इन्हें लाख पसाव दिया और इनको हाथी पर सवार किया तथा स्वयं घोड़े पर चढ़ कर इनकी अगोल में (आगे-आगे) साथ चले।

(१३) 'विजय विलास' की रचना महाराजा विजयसिंह के नाम पर बारहठ विशनसिंह ने की थी।

(१४) 'खुमाण रासो' के रचयिता का असली नाम दलपत था। परन्तु दीक्षा के पश्चात् बदलकर दौलत विजय रख लिया। हिन्दी के विद्वानों ने इनका मेवाड़ के रावल खुमाण द्वितीय (सं० ८७०) का समकालीन होना अनुमानित किया है, जो गलत है। वास्तव में इनका रचना काल सं० १७३० और सं० १७६० के मध्य में है। (नागरी प्रचारिणी पत्रिका वर्ष ४४ अङ्क ४ पृ० ३८७—३९८)

इसमें बापा रावल (सं० ७९१) से लेकर महाराणा राजसिंह (सं० १७०९—३७) तक के मेवाड़ के राजाओं का वृत्तान्त है। परन्तु खुमाण का वृत्तान्त अधिक होने से इसका नाम 'खुमाण रासो' रखा गया है। 'खुमाण रासो' आठ खंडों में विभाजित है और इसकी भाषा पिंगल है।—मेनारिया पृ० ११०

(१५) 'जय विलास' —रणछोड़ भट्ट रचित काव्य जिसमें महाराणा जयसिंह और उसके बाद के मेवाड़ के शासकों का यश-वर्णन है। रायल एशियाटिक सोसाइटी लंदन के टॉड-संग्रह में इसकी प्रति प्राप्य है।

(१६) 'राज प्रकाश' के लेखक का नाम किशोरदास है, ये राव जाति के कवि मेवाड़ के महाराणा राजसिंह के आश्रित थे। यह ग्रन्थ इन्होंने सं० १७१६ में बनाया था। इसमें महाराणा राजसिंह के विलास-वैभव और शौर्य पराक्रम का वर्णन है। १३२ छन्दों में यह ग्रन्थ समाप्त हुआ है। —मेनारिया पृ० ११२

(१७) इसका नाम "जग विलास' है, जगत विलास नहीं जो सं० १८०२ में लिखा गया था। कवि का नाम नन्दराम है। इसमें महाराणा जगतसिंह की दिनचर्या राज्य वैभव तथा जगनिवास महल की प्रतिष्ठा आदि का सविस्तार वर्णन है। —मेनारिया पृ० २३४

(१८) "मान चरित्र' —आम्बेर के राजा मानसिंह विषयक इस इतिहास-ग्रन्थ की कोई प्रति अब तक देखने को नहीं मिली है।

कछवाहों खीची राजपूतों और कोटा बूंदी के हाड़ा राजपूतों आदि के इतिहासों को उनके अपने-अपने भाटों से सुना। आमेर व जयपुर के राजा जयसिंह (जो वर्तमान काल के हिन्दू राजाओं में विज्ञान के सबसे बड़े संरक्षक हैं) द्वारा संकलित सामग्री का कुछ भाग मेरे हाथों पड़ गया जिसमें कि उनके वंश का इतिहास वर्णित किया गया है। मुझे पूर्ण विश्वास है कि आमेर (जयपुर) में और भी अधिक प्रचुर मात्रा में इतिहास सम्बन्धी सामग्री विद्यमान थी जो विषय वासना में तल्लीन रहने वाले जयसिंह के पौत्र महाराजा (१९) ने एक वेश्या (१९) के साथ अपना राज्य विभाजित करते समय राज्य के पुस्तकालय का भी बँटवारा(१९) कर दिया हो, जो राजस्थान में सब से अच्छा संग्रह था। तैमूर वंश के कुछ सरदारों की भांति जयसिंह भी 'कल्पद्रुम' (२०) नामक दिनचर्या (२०) की पुस्तक लिखा करते थे।

---

(१९) सवाई जयसिंह के पश्चात् ५वीं पीढ़ी में सवाई जगतसिंह हुए थे। उन्हीं के विषय में रसकपूर वेश्या की कहानी कही जाती है। कहा जाता है कि उसने आधा राज्य बटवा लिया था। तदनुसार राज्य के आधे हाथी घोड़े रथ आदि सब उसके आधीन कर दिये गये थे। पोथी-खाने में से उसने पुस्तकें बंटाई हों यह मुझे नहीं जँचता और न पोथी खाने में कार्य करते समय मुझे इसका कोई प्रमाण ही मिला है। पोथी-खाने का एक विभाग 'सूरतखाना' या तस्वीरखाना' कहलाता था। उसमें कुछ चित्र ऐसे मेरे देखने में आये जिनके चेहरे कटे हुए थे। पूछने पर वहाँ के एक कर्मचारी ने बताया कि इन चेहरों को कटवा कर रसकपूर ने अपना कंठ्या (एक कंठमाल) बनवा लिया था। इसमें कहाँ तक सत्य है कहा नहीं जा सकता। परन्तु यह अनुमान लगाया जा सकता है कि राज्य के कुछ चतुर कर्मचारियों ने कुछ चित्रों के चेहरे देकर पोथीखाने की अमूल्य निधि को बचा लिया हो। बाद में राज्य के कामदारों ने इस वेश्या को महलों में बन्द करवा दिया था और उसके निवास के महल 'रसविलास' के नाम से अब भी जयपुर के शहरी महलों में सुज्ञात है।

(उमरावसिंह मंगल के नाम श्री गोपालनारायण बहुरा का पत्र दि० १२-८-५६।)

(२०) 'जयसिंह कल्पद्रुम' इसकी रचना काशी के देव भट्ट के पुत्र रत्नाकर सम्राट् ने की थी। इसके लिए महाराजा जयसिंह ने इनसे विशेष प्रार्थना की थी। वास्तव में यह धर्म शास्त्र का ग्रन्थ है जिसके आरम्भ में जयसिंह के वंश एवं पराक्रम का वर्णन किया गया है। वंश वर्णन ऐतिहासिक दृष्टि से महत्त्वपूर्ण है। धर्म शास्त्र में नित्याचार वर्णन मुख्य वस्तु है। जिसमें राजाओं आदि की दिनचर्या कैसी रहनी चाहिए इसका वर्णन होता है। सम्भव है इसी बात को अन्यथा समझ कर किसी ने टॉड को इसे जयसिंह की दैनिक डायरी बताया हो। जयसिंह कल्पद्रुम का प्रकाशन लक्ष्मी वेंकटेश्वर प्रेस से संवत १९८२ में हो चुका है। इसकी हस्तलिखित तीन प्रतियां राजस्थान पुरातत्त्व मन्दिर में भी मौजूद हैं जो सं ६८२४ ५५६१ व १०४८७ पर अंकित हैं।

वास्तव में 'कल्पद्रुम' और जयसिंह-कल्पद्रुम' एक ही पुस्तक का नाम है। कहते हैं कि इस पुस्तक का दूसरा खण्ड अभी तक अप्रकाशित है। ऐसी एक प्रति जयपुर के पोथी खाने में मेरे देखने में आई थी। परन्तु समयाभाव के कारण अधिक छानबीन नहीं कर सका।

(उमरावसिंह मंगल के नाम श्री गोपाल नारायण बहुरा का पत्र दि० १२-८-५६)

इस सम्बन्धी एक प्रति प्रतापगढ़ (राजपूताना) के हस्तलिखित ग्रन्थसंग्रह में मैंने स्वयं देखी है। कोई हजार से भी अधिक पृष्ठों का विस्तृत ग्रन्थ था। इस ग्रन्थ की दो अपूर्ण प्रतियाँ ओरियण्टल इन्स्टीट्यूट बड़ोदा में भी प्राप्य हैं और वहाँ उसे धर्मशास्त्र विषयक ग्रन्थों की सूची में गिना गया है। (An Alphabetical List of Mss. in the Oriental Institute, Baroda, Vol I, P.892, S-Nos. 500-501) (मंगल के नाम डॉ० रघुबीरसिंह, डी० लिट्० का पत्र दि० २२-०-५६।)

एक ऐसे महत्वपूर्ण व्यक्ति द्वारा, एक अत्यन्त ही दिलचस्प युगमें लिखी गई यह पुस्तक ऐतिहासिक दृष्टिसे अत्यन्त मूल्यवान सिद्ध होगी। महाराजा दतिया (२१) से मैंने उनके पूर्वपुरुष की दिनचर्या की पुस्तक (२२) प्राप्त की थी जिसने औरंगजेब की सेना के बड़े बड़े सरदारों के मध्य बड़ी प्रतिष्ठा के साथ कार्य किया था और जिसमें से स्काट (२३) ने अपने दक्षिण के इतिहास में बहुत से अंश उद्धृत किये थे।

लगभग दस वर्ष तक एक जैन विद्वान (२४) की सहायता से मैं ऐसे प्रत्येक ग्रन्थ की खोज में रहा, जो राजपूतों के इतिहास के बारे में किसी भी प्रकार के तथ्यों अथवा घटनाओं पर प्रकाश डालता हो या उनके आचार-व्यवहार एवं चरित्र सम्बन्धी बातों का उल्लेख करता हो। इस प्रकार की पुस्तकों के उद्धरण तथा भाषान्तर के लिये आवश्यक अंश मेरे जैन सहायक द्वारा इन जातियों की अधिक प्रचलित बोलियों (जो संस्कृत से बनी हैं) में अनुवाद कर दिये जाते थे जिनको कि मैं उनके बीच लम्बे समय तक रहने के कारण समझने लग गया था। अत्यधिक परिश्रम करके तथा लगातार कई घंटे जुटकर, जिसके लिये उत्साह की उत्कट भावना की आवश्यकता पड़ती थी मैंने न केवल उनके इतिहास की खोज की बल्कि उनकी धार्मिक भावनाओं उनके सामान्य विचारों और उनके विशिष्ट आचार व्यवहार के बारे में भी ज्ञान प्राप्त करने का प्रयत्न किया। इसके लिए मैं उनके चारणों और भाट इतिहासकारों से मिलता और उनसे परम्परागत कथाएं और रूपकमय कवितायें सुनता। जानकारी प्राप्त करने का मेरा क्षेत्र अत्यन्त विस्तृत हो गया था और यह निश्चित था कि उन विषयों के सम्बन्ध में मेरे ज्ञान की वृद्धि अधिक हो जाती किन्तु मेरी रुग्णावस्था ने मुझे इस आनन्ददायक किन्तु परिश्रमपूर्ण कार्य को छोड़ने को बाध्य कर दिया और मुझे स्वदेश जाने को विवश कर दिया ठीक उसी समय में जब कि मैं हिन्दुओं की पूजनीय मिनर्वादेवी (२५) की ड्योढी में प्रवेश करने की शपथ प्राप्त कर चुका था। फिर भी मैं कुछ प्राचीन ग्रन्थ ले आया, जिनकी खोज का कार्य मैं अब दूसरों पर छोड़ता हूं। प्राचीन संस्कृत भाषा के हस्तलिखित

(२१) ओरछा के इतिहास-प्रसिद्ध राजा वीरसिंह ने अपने छोटे पुत्र भगवानराय को दतिया परगना जागीर में दिया था। भगवानराय ने अपने पराक्रम से उसे बढ़ाया। भगवानराय का लड़का शुभकरण सदैव शाही सेना में रहा। वह बड़ा प्रतापी था। शुभकरण का लड़का दलपत बुन्देला था। यों प्रारम्भ में बपौती से प्राप्त जागीर को बढ़ाकर अपने पराक्रम से प्राप्त नए परगनों का मिलाकर दतिया राज्य को विकसित किया।

टॉड के समय दतिया में राजा पारिछत था। उसने १८०१ ई० से १८३६ ई० तक राज्य किया। यह दलपत बुन्देला के पुत्र रामचन्द्र के प्रपौत्र इन्द्रजीत (१७२६–१७६१) का पौत्र था।

(२२) यहां टॉड का तात्पर्य भीमसेन कृत 'तारीख ई दिलकशा' से है। भीमसेन सक्सेना कायस्थ था उसके पिता दक्षिण में शाही तोपखाने का मुशरिफ था। भीमसेन दक्षिण में नियुक्त मुगल राज्य कायस्थ असैनिक अधिकारी था। उसने औरंगजेब के दक्षिण में युद्धों का आंखों देखा वर्णन किया है। औरंगजेब के काल के सच्चे एवं निष्पक्ष वृत्तान्त तथा तत्कालीन स्थिति और घटनाओं के कारणों के विशद वर्णन की दृष्टि से यह ग्रन्थ उस काल की सर्वाधिक महत्वपूर्ण रचना है। इस पुस्तक की एक हस्तलिखित सम्पूर्ण प्रति ब्रिटिश म्यूजियम लन्दन में उपलब्ध है।

(२३) स्कॉट ने भीमसेन के इतिहास के कुछ भाग का भावार्थ (Free Translation) दिया है, जो स्कॉट के ग्रंथ की जिल्द दो में पृष्ठ १ से १२२ तक वर्णित है।

(२४) यहाँ टॉड साहब का तात्पर्य यति ज्ञानचन्द्र से है। इस सम्बन्ध में आगे पहला प्रकरण देखें।

(२५) रोमन 'मिनर्वा' का बुद्धि तथा कला-कौशल की अधिष्ठात्री देवी मानते थे जैसे हिन्दू सरस्वती देवी को मानते हैं। यहाँ मिनर्वा देवी की ड्योढ़ी से अभिप्राय शायद सरस्वती भण्डार (उदयपुर) से है।

ग्रन्थों का विशाल संग्रह, जिसको मैंने इंगलैण्ड भेजा था रायल एशियाटिक सोसाइटी को भेंट कर दिया गया है। यह संग्रह उसके पुस्तकालय में रक्खा है। (२६) उसमें बिना जांच किये बहुत से ग्रन्थों के विषय प्राचीन भारत के इतिहास पर विशेष प्रकाश डाल सकते हैं। मुझे तो केवल इतने ही यश का भागी बनना है कि मैं उन्हें यूरोपीय विद्वानों की जानकारी में ले आया हूं। मुझे आशा है कि मेरे प्रयत्न से दूसरे लोगों को भागी इसी प्रकार के प्रयत्न करने की प्रेरणा मिलेगी।

राजपूत राज्यों के बारे में यूरोपवासियों को जो थोड़ा बहुत ज्ञान अब तक प्राप्त हुआ है उससे अन्य राज्यों की अपेक्षा भारतवर्ष के इस हिस्से के महत्व के बारे में कुछ मिथ्या भ्रम उत्पन्न हो गया है। यदि यह भी मान लिया जाय कि कवि बर्नों ने उनके वर्णनों में अतिशयोक्ति की है फिर भी उस देश के इतिहास के प्राचीन काल में राजपूत राजदरबारों का वैभव निश्चय ही बढ़ा चढ़ा रहा होगा। पुरातन काल से ही उत्तरी भारत धनी था उसका यह भाग जो सिन्धु नदी के दोनों ओर स्थित है तत्कालीन बादशाह दारा (२७) की सबसे अधिक ऐश्वर्य पूर्ण सूबेदारी वाला भाग था। इस भाग में विभिन्न प्रकार की घटनायें बहुतायत से घटी हैं जो इतिहास के लिए बहुत उपयुक्त सामग्री प्रस्तुत करती हैं। राजस्थान में एक भी ऐसा छोटा राज्य नहीं है जिसमें थर्मोपिली(२८) के समान रणभूमि न हो और एक भी ऐसा शहर नहीं है जिसमें लियोनिडास (२९) जैसा वीर पुरुष उत्पन्न न हुआ हो। किन्तु कालान्तर के आवरण ने उन घटनाओं को ढक दिया है जिन्हें इतिहासकार की जादूभरी लेखनी अत्यन्त प्रशंसा का पात्र बनाती। सोमनाथ की तुलना डेल्फस(३०) से

---

(२६) Barnett का Catalogue of the Tod Collection of Indian Mss in the Possession of the Royal Asiatic society

(२७) ईरान का बादशाह दारा (प्रथम) ५२२-४८६ ई० पू० । इसके दो लेखों में जो पर्सिपोलिस (५१८-५१५ ई० पू०) और नक्शेरुस्तम (५१५ ई० पू०) नामक स्थानों में उत्कीर्ण हैं 'हिन्दू' या पंजाब को उसके साम्राज्य का एक प्रदेश कहा गया है। अतः दारा ने यह विजय ५१८ ई० पू० के आसपास की होगी।

हेरोडोटस (३।९४) का यह कहना है कि भारत दारा के साम्राज्य का बीसवाँ प्रान्त गिना जाता था, साम्राज्य की आय का तृतीयांश भारत से ही आता था। यह ३६० टेलेंट (१ टेलेंट=३०० पौंड) के बराबर स्वर्ण सोना होता था जिसका मूल्य १ करोड़ ५० लाख रुपये से अधिक था। यह स्वर्ण सिन्धु नदी की बालुका को धोने से निकलता होगा क्योंकि भूगर्भ शास्त्रियों के मत में सिन्धु नदी के कुछ भाग उस समय में अवश्य ही स्वर्णोत्पादक थे (वी बाल इण्डियन ऐण्टीक्वेरी अगस्त १८८४)

(२८) यह उत्तर और पश्चिम यूनान के मध्य एक तंग घाटी और रणक्षेत्र का नाम है।

(२९) ई० पू० ४८० में ईरान के बादशाह जर्कसीज् ने २६४१६१० सैनिकों के साथ यूनान पर आक्रमण किया। उस समय वहाँ के छोटे छोटे राजाओं ने मिल कर अपने में से स्पार्टा के वीर राजा 'लियोनिडास' को 'थर्मोपिली' की घाटी में ८००० सेना सहित ईरानियों से युद्ध करने भेजा था। ईरानियों ने इस घाटी पर कई बार आक्रमण किया परन्तु हर बार हार कर पीछे लौटना पड़ा। अन्त में एक विश्वासघाती मनुष्य की सहायता से वे पहाड़ी पर चढ़ आये। लियोनिडास को अपनी सेना के बहुत से लोगों के ईरानियों के पक्ष में मिल जाने का सन्देह हुआ। उसने अपने साथ केवल १००० विश्वास पात्र सैनिकों को रक्खा बाकी सेना को विदा कर दिया और आप बड़ी वीरता से इस युद्ध में लड़ता हुआ मारा गया।

(३०) यूनान देश के डेल्फ़ी नगर का प्रसिद्ध 'अपोलो' अर्थात् सूर्य का मन्दिर।

की जाती भारत की लूट का माल लीडिया के राजा(११) की सम्पत्ति के बराबर ठहरता और पांडवों की सेना के समूह के सम्मुख जर्कसीज़ (१२) की सेना महत्त्वहीन मालूम पड़ती । परन्तु हिन्दुओं के यहाँ या तो हेरोडोटस (१३) और जेनोफन(१४) के समान इतिहास लेखक हुए ही नहीं अथवा यदि हुए तो दुर्भाग्यवश उनके ग्रन्थ लुप्त हो गये ।

यदि "इतिहास का नैतिक प्रभाव उसके द्वारा उत्पन्न की गई सहानुभूति पर निर्भर करता है" तो इन राज्यों का इतिहास उस दृष्टि से अत्यन्त रुचिकर है । कई युगों तक अपनी स्वतन्त्रता की रक्षा के लिए एक वीर जाति का संघर्ष करते रहना अपने पूर्व पुरुषों के धर्म की रक्षा के लिए अपनी प्रिय से प्रिय वस्तु का बलिदान कर देना और समस्त प्रलोभनों के बावजूद अपने अधिकारों और राष्ट्रीय स्वतन्त्रता की मरते दम तक दृढ़ता से रक्षा करना ये सब बातें एक ऐसा चित्र प्रस्तुत करती हैं जिसके विचार करने मात्र से हमारे रोंगटे खड़े हो जाते हैं । यदि मैं उस उल्लासपूर्ण आनन्द का एक अंश भी, जो मुझे उन स्थानों के मध्य जहाँ पर ये घटनाएँ हुई थीं, खड़े होकर विजय काल की उन गाथाओं को सुनने से प्राप्त हुआ है अपने पाठकों के हृदय में उत्पन्न कर सकूं तो मैं इस उदासीनता पर विजय प्राप्त करने में निराशा अनुभव नहीं करूंगा जिसके कारण मेरे देशवासी भारत सम्बन्धी ज्ञान प्राप्त करने का प्रयत्न नहीं करते। न मुझे इस बात का भय है कि भारतीय नामों के उच्चारण से जो यद्यपि एक हिन्दू के लिए संगीतमय और अर्थपूर्ण हैं किन्तु एक यूरोपियन के लिए कर्णकटु एवं अर्थविहीन हैं किसी प्रकार का कुप्रभाव पड़ेगा क्योंकि यह बात स्मरण रखने योग्य है कि पूर्व का प्रत्येक नाम किसी न किसी शारीरिक अथवा मानसिक गुण का बोधक होता है । प्राचीन नगरों के खंडहरों में बैठ कर मैंने उनके ध्वंस की गाथाएं सुनी हैं अथवा उनके शूरवीर रक्षकों की स्मृति में निर्मित किये गये स्मारक चिन्हों के निकट खड़े होकर उन शहीदों के वंशजों के मुख से उनकी वीरता की चर्चायें सुनी हैं । जब दक्षिणीय गाथ (१५) लोग (अर्थात् मराठे) इस देश को नष्ट भ्रष्ट रहे थे उस समय कुछ काल तक मैं उनके साथ रहा हूँ और जिन स्थलों पर परस्पर के युद्ध अथवा विदेशी आक्रमण के विरुद्ध लड़ाइयां हुई हैं वहां मैं घूमा हूँ, ताकि उनमें मारे गये लोगों के शवदाह स्थानों पर बनाये गये ग्रामीण स्मारकों में उनका नाम और इतिहास पढ़ सकूं । ऐसी कथाएं अथवा लेख इतिहास तथा उनके आचार–विचार के अध्ययन की दृष्टि से अच्छी सामग्री प्रस्तुत करते हैं । यहाँ तक कि एक "विजय स्तम्भ" या मन्दिर के निर्माण अथवा उसके जीर्णोद्धार का वर्णन करने वाली कविता भूतकाल सम्बन्धी हमारे ज्ञान के भण्डार में निश्चय ही वृद्धि करती है ।

---

(११) यह राजा लीडिया का न होकर लीडिया का बादशाह क्रीसस था । वह अपनी समृद्धि के लिये प्रसिद्ध था । लीडिया एशिया माइनर का एक प्रसिद्ध भाग था जहाँ यह बादशाह ई० पू० ५६०–५४६ के मध्य राज्य करता था ।

(१२) यह ईरान के बादशाह दारा (प्रथम) ५२२–४८६ ई० पू० का पुत्र था इसने ई० पू० ४८६–४६५ तक राज्य किया ।

(१३) यूनान का ई० पू० ४८४–४२५ का विख्यात इतिहास लेखक ।

(१४) यूनान का इतिहासकार और सुकरात का मित्र एवं शिष्य समय–ई० पू० ४३०–३५५ ।

(१५) गाथ जर्मन देश की एक वीर जाति के लोग थे जो आदि काल में यूरोप में बाल्टिक सागर के तट पर निवास करते थे । ईसा की पाँचवी शताब्दी में इनके एक दल ने रोम को विजय कर उसको खूब लूटा था । फिर स्पेन पर चढ़ाई कर वहाँ अपना राज्य स्थापित किया था जो दो शताब्दी के लगभग कायम रहा । इसी बीच में इनके एक दल ने अपना अधिकार कुस्तुनतुनियाँ के द्वारों तक स्थापित कर लिया था ।

जब हम उन राज कुलों की प्राचीनता के विषय पर विचार करते हैं जो अभी मध्य और पश्चिम भारत में शासन कर रहे हैं तो हम उनमें केवल दो राज वंश ऐसे देखते हैं जिनकी उत्पत्ति ऐतिहासिक जानकारी की सीमा के बाहर है शेष राज्यों की स्थापना मुस्लिम शासन की प्रगति के साथ हुई, उनके इतिहासों की पुष्टि उनके विजेताओं के इतिहास से होती है। मेवाड़ जैसलमेर और मरु भूमि के कुछ छोटे छोटे राज्यों को छोड़कर शेष तमाम वर्तमान राज वंश अपनी वर्तमान स्थिति में मुसलमानों के आक्रमणों के पश्चात् ही पहुँच पाये हैं। अन्य प्रथम स्तर के राज वंश जैसे परमार और सोलंकी राजवंश जो धार और अणहिलवाड़ा में शासन करते थे, कई शताब्दियों पहले लुप्त हो गये थे।

मैंने यह सिद्ध करने का प्रयत्न किया है कि राजस्थान एवं प्राचीन यूरोप की वीर जातियां एक ही वंशवृक्ष की शाखायें हैं। मैंने विस्तार पूर्वक यह प्रमाणित करने का यत्न किया है कि भारतवर्ष में जो सामन्ती व्यवस्था प्रचलित है ठीक उसी प्रकार की सामन्ती व्यवस्था प्राचीन काल में यूरोप में फैली हुई थी जिसके अवशेष आज तक हमारे देश के शासन नियमों में विद्यमान हैं। मुझे इस बात का ध्यान है कि इस प्रकार के अनुमानों की सत्यता पर लोग सन्देह करते हैं और कभी कभी उपहास भी करते हैं। जो विचार इन प्रश्नों पर मैंने बनाये हैं उनके पक्ष में मैं किसी भी प्रकार की हठधर्मी अथवा पक्षपात प्रदर्शित नहीं करना चाहता। वर्तमान युग में विश्व इतना चापल है कि वह किसी भी ग्रन्थकार के द्वारा पथभ्रमित नहीं हो सकता जो कल्पनाओं के सहारे ही रचना करता है फिर ऐसा लेखक चाहे कितना ही चतुर क्यों न हो। किन्तु सम्भावना यह है कि समय द्वारा झूठे सिद्धान्तों की वास्तविकता की पोल खोल देने के पश्चात् हम विपरीत भूल कर सकते हैं। हम पूर्व और पश्चिम के लोगों की उत्पत्ति एक ही वंश से होने के सम्बन्ध में अत्यन्त संशयवादी हो गये हैं। फिर भी मैं अपने प्रमाण विश्व के निष्पक्ष निर्णय के लिए प्रस्तुत करता हूं। समानतायें जो यद्यपि इन प्रश्नों का निर्णय नहीं कर सकतीं इतनी अनोखी और महत्वपूर्ण हैं कि उनका अध्ययन और शोध आवश्यक है इस प्रकार का परिश्रम निष्फल नहीं जायेगा। मुझे आशा है कि बुद्धिमान लोग ग्रन्थकार के इस उद्योग की प्रशंसा करेंगे जो उसने विस्तृत ऐतिहासिक विवरणों और अपूर्ण लेखों की अथाह टिमटिमाती रोशनी के सहारे से प्राचीनता के अन्धकारपूर्ण कोनों में प्रवेश कर इस विषय को प्रकाश में लाने के लिए किया है।

मुझे इस बात का ध्यान है कि इस ग्रन्थ में बहुत सी ऐसी बातें हैं, जिनके लिये सर्व साधारण को क्षमा करनी होगी, और मुझे विश्वास है कि उन त्रुटियों की क्षमा याचना के लिए मुझे उससे बड़ा कारण नहीं देना पड़ेगा जो मैंने पहले ही निवेदन कर दिया था और वह था मेरे स्वास्थ्य का खराब होना। मेरी रुग्णावस्था के कारण मेरी विशाल सामग्री को *वर्तमान अपूर्ण रूप देना भी मेरे लिए दुःसाध्य हो गया था। यहाँ यह भी कह देना चाहूंगा कि प्रस्तुत विषय को इतिहास* की कठिन शैली में गठित करने की मेरी इच्छा कभी भी नहीं थी जिसका परिणाम यह होता कि ऐसी बहुत सी बातें निकाल देनी पड़ती जो कि राजनीतिज्ञों अथवा जिज्ञासु विद्यार्थियों के उपयोग की होती। मैं इस ग्रन्थ को भावी इतिहासकार के हेतु सामग्री के प्रचुर भंडार के रूप में प्रस्तुत करता हूं। मुझे इस बात का कोई विचार नहीं था कि मैंने इस ग्रन्थ के आकार को अत्यधिक बढ़ा दिया है किन्तु मुझे इस बात की अवश्य चिन्ता रही है कि कहीं कोई लाभदायक बात न छूट जाय।

★

राजस्थान अथवा राजपूताने का भूगोल

राजस्थान की सीमायें

राजस्थान भारतवर्ष के उस भाग का सामान्य एवं शास्त्रीय नाम है जो कि (राजपूत) राजाओं का निवासस्थान रहा है। इन देशों की प्रचलित भाषा में उसे 'रजवाड़ा' पुकारा जाता है किन्तु अंग्रेजों में राजपूत राज्यों को निर्दिष्ट करने के लिए अधिक संस्कृत नाम 'रायथान' जो परिवर्तित होकर 'राजस्थान' हो गया है सामान्य रूप से प्रचलित है।

यह अभी विदित नहीं हुआ है कि मुसलमान विजेता शहाबुद्दीन के आक्रमण से पूर्व राजस्थान की सीमा कहाँ तक थी (सम्भवतः तब यह यमुना और गंगा के पार हिमालय की तलहटी तक भी पहुंची होगी)। फिलहाल हम उसकी प्रतिबन्धित परिभाषा को ही अपनायेंगे जो फिर भी एक विशाल भूभाग को घेरे हुए है और जिसमें विभिन्न प्रकार की दिलचस्प जातियां बसी हुई हैं।

धार और अणहिलवाड़ा पट्टन (मालवा और गुजरात की राजधानियाँ) के भग्नावशेषों पर निर्मित मांडू और अहमदाबाद के राज्यों के अभ्युदय से पहले 'राजस्थान' उस भूभाग का नाम होना चाहिये जो इस ग्रन्थ के आरम्भ में दिये गये मानचित्र के अनुसार, पश्चिम में सिन्धु नदी की घाटी पूर्व में बुन्देल खण्ड[1] उत्तर में (सतलज से दक्षिण का) जंगल देश' नामक मरुस्थल और दक्षिण में विन्ध्याचल की पहाड़ियों तक फैला हुआ था।

इस भूभाग में लगभग ८ अक्षांश और ६ देशान्तर का समावेश होता है जो २२ से ३ उत्तरी अक्षांश और ६९ से ७८° पूर्व देशान्तर तक के १ ५ वर्ग मील के क्षेत्र में फैला हुआ है।

मेरा विचार यद्यपि इस विस्तृत भूभाग के समस्त राज्यों के इतिहास एवं उनकी भूतकालीन और वर्तमान परिस्थिति का वर्णन करने का है फिर भी मध्य भाग के राज्यों पर बहुत अधिक ध्यान दिया जाएगा मुख्यतः मेवाड़ पर जिसका विस्तृत वर्णन उसे शेष राज्यों के लिए एक प्रति रूप बना देगा और उनकी समान प्रकार की बातों को दोहराने की आवश्यकता से मुक्त कर देगा।

---

1 यह एक तरह से अनोखी बात है कि जिस प्रकार बड़ी सिन्धु नदी इस प्रदेश के पश्चिम की सीमा बनाती है उसी प्रकार छोटी सिन्धु नदी पूर्वी सीमा है। इस छोटी सिन्धु के पूर्व के हिन्दू राजा पुत्र रत्न (१) के यहाँ हैं और वे राजस्थान अथवा रजवाड़ में शामिल नहीं माने जाते।

---

(१) छोटी सिन्धु के पूर्व में बुंदेल खण्ड है। वहाँ के राजपूत अपना निकास चन्द्रवंश से बताते हैं।
(चन्देल और उनका राजत्व काल पृ १४ से ४४)

राजस्थान के राज्य

जिस क्रम से इन राज्यों का वर्णन किया जायेगा वह इस भांति है'—

(१) मेवाड़ अथवा उदयपुर,
(२) मारवाड़ अथवा जोधपुर,
(३) बीकानेर, और किशनगढ़,
(४) कोटा } अथवा हाड़ोती
(५) बूंदी }
(६) आमेर अथवा जयपुर उसकी स्वतन्त्र और प्राचीन शाखाओं के साथ
(७) जैसलमेर, और
(८) सिन्धु घाटी तक का भारतीय रेगिस्तान ।

भौगोलिक सर्वेक्षणों की कहानी

इस पुस्तक का मुख्य आधार इस देश के भूगोल से है इतिहास सम्बन्धी एक आध्यायों वाले भाग प्रसंगवश पीछे से दिये गये हैं। वास्तव में प्रथम यही सोचा था कि इस ग्रन्थ में आवश्यक रूप से भूगोल ही दिया जाए; किन्तु परिस्थितियों की विवशता के कारण वैसा करना असम्भव हो गया यहाँ तक कि जितनी विपुल सामग्री (लेखक को) प्राप्त थी उसके अनुसार वैसा पूर्ण मानचित्र [1] भी न बन सका। वैसे तो इस कमी से सामान्य पाठक को कोई हानि महसूस नहीं होगी क्योंकि भूगोल सम्बन्धी ब्यौरा महत्त्वपूर्ण होने पर भी प्राय शुष्क और नीरस ही बनता है, किन्तु लेखक को तो इस कमी के लिए विशेष दुःख रहेगा।

यह भी इच्छा थी कि पुराणों और हिन्दू शास्त्रों में प्राप्त प्राचीन भूगोल से सम्बन्धित अशों के साथ इस मानचित्र का मिलान करूँ किन्तु यह कार्य भविष्य के लिए स्थगित कर देना पड़ा यदि लेखक को पुनः इस परिश्रमपूर्ण कार्य को हाथ में लेने का अवसर मिला तो जल्दी में लिखे गये इस सामान्य वर्णन की त्रुटियाँ दूर की जा सकेंगी।

सन् १८०६ में मराठा युद्धों की समाप्ति पर लेखक को सिंधिया के दरबार में जाने वाले राजदूत के साथ भेजा गया तब यह परिश्रमपूर्ण शोध कार्य प्रारम्भ हुआ और उसे करते हुए ही यह सामग्री संग्रहीत हुई। उस समय इस मराठा सरदार की सेना मेवाड़ में डेरा डाले हुये थी मेवाड़ तब अंग्रेजों के लिए बिल्कुल अपरिचित प्रदेश था और उसकी दोनों राजधानियों उदयपुर और चित्तौड़ की स्थिति उस समय के अच्छे से अच्छे मानचित्रों में भी उल्टी दिखाई गई थी। चित्तौड़ को उदयपुर से पूर्व और उत्तर-पूर्व (ईशान) की ओर न बता कर उसके दक्षिण-पूर्व (अग्नि कोण) में दिखाया गया था यह बात उस समय के हमारे तत्सम्बन्धी अल्पज्ञान का प्रमाण थी।

अन्य बातों के विषय में तो जानकारी बिल्कुल ही नहीं के बराबर थी। १८०६ के पहले के मानचित्रों में तो राजस्थान के लगभग तमाम पश्चिमी और मध्य भाग के राज्य दिखाये ही नहीं गए थे। कुछ समय पूर्व तक तो यही सोचा

---

१ यह मानचित्र ईस्ट इंडिया कम्पनी के सेवक युरोप्य कुम्पनीन (स्वनामधीत) मिस्टर बाकर द्वारा बनाया गया था। मुझे आशा है कि आगे चल कर वे मेरी इस सामग्री का और अधिक उपयोग कर सकेंगे।

जाता था कि राजस्थान की सभी नदियों का मार्ग दक्षिण में नर्बदा की ओर है। यह भ्रम मात्र में भारतवर्ष के भूगोल के ख्याति लेखक प्रसिद्ध रेनल्स (२) द्वारा दूर किया गया था।

लेखक ने इस कमी को पूरा किया और १८१५ ई० में पहली बार सम्मिलित रूप से राजस्थान का भूगोल तैयार कर पिंडारियों की लड़ाई प्रारम्भ होने के पूर्व ही मार्क्विस ऑफ हेस्टिंग्ज को भेंट किया। यह इस कार्य का परिश्रम उस समय पूर्णरूपेण सफल हुआ जब प्रसिद्ध सेनापति हेस्टिंग्ज ने अपनी युद्ध अभियान योजना में उसको प्रमुख आधार बनाया। लेखक यहाँ इस बात की चर्चा कर देना भी अपना कर्तव्य समझता है कि मध्यवर्ती एवं पश्चिमी भारतवर्ष के जितने भी मानचित्र इस समय के पश्चात छपे उन सभी का आधार बिना किसी अपवाद के लेखक का यह परिश्रम पूर्ण शोध ही रहा।[3]

लेखक के सर्वेक्षण

उदयपुर जाने के लिये राजदूत दल का मार्ग आगरे से जयपुर की दक्षिणी सीमा में होकर था। इस भाग का कुछ भाग डॉ० हण्टर ने नापा था और खगोल निरीक्षण से चिह्न निश्चित किये थे जिन्हें मैंने अपने प्रयत्नों का आधार बनाया। इन्हीं डॉ० हण्टर का बनाया हुआ इस मार्ग का एक उपयोगी मानचित्र सिंधिया के दरबार के तत्कालीन रेजिडेण्ट[4] के पास था। इसी बहुमूल्य मानचित्र के अनुसार सन् १७९१ में राजदूत कर्नल पामर ने मार्ग तय किया था वह बहुत महत्वपूर्ण एवं सामान्यतः सही था अतः मैंने अपनी आगे की पैमाइश का आधार उसे ही बनाया। उसमें मध्य भारत के ग्वालियर नरवर, दतिया झाँसी, भोपाल शाजापुर, उज्जैन आदि सब सीमान्त स्थान दिये गये थे और वहाँ से लौटते हुए कोटा, बूंदी रामपुरा (टोंक) बयाना से लेकर आगरे तक दर्ज थे। खगोल निरीक्षण द्वारा ये स्थान न्यूनाधिक शुद्धि के साथ अपने ठीक स्थानों पर स्थापित किये गये थे।

रामपुरा तक हण्टर महोदय के मानचित्र ने पथ प्रदर्शन किया और इस स्थान से उदयपुर तक नई पैमाइश प्रारम्भ हुई यहाँ कि हम सन् १८०६ ई० में पहुँचे। उदयपुर का स्थान बहुत ही अनुपयुक्त यन्त्रों द्वारा निश्चित किया

३ जब १८१७ का युद्ध प्रारम्भ हुआ तो मेरे मानचित्र की प्रतियाँ रणक्षेत्र के समस्त सैन्य विभागों को भेजी गईं जो वहाँ अधिकारियों के हाथों में गईं। उसकी प्रतिलिपियाँ यूरोप लाई गईं और भारतवर्ष के प्रत्येक नवीन मानचित्र में वे नाम शामिल किए गए। एक मानचित्र ऐसा भी बनाया गया, जिससे लोगों को यह अनुमान हुआ कि इकट्ठा करने वाले ने ही उसको बनाकर तैयार किया है। इससे मार्क्विस ऑफ हेस्टिंग्स की यह भविष्यवाणी सच्ची हुई कि "ऐसी वस्तु किसी की निजी सम्पत्ति नहीं रह सकती; मुझे डर है कि अन्य जन इसके स्वामी न बन बैठें" और साथ ही उन्होंने यह इच्छा प्रगट की कि कर्ता अपने परिश्रम का पूरा लाभ प्राप्त करे। इसके लिए अपने प्रतिफल प्राप्त करने के अधिकार को भावी सरकारों के कागजों पर आगे के लिए सुरक्षित नहीं रखा जाए।

इसका यह अर्थ नहीं कि इस बात से ग्रंथकार को आश्चर्य हुआ हो। वह अपने लिये प्राथमिकता का दावा तो करता है किन्तु वह विज्ञान की प्रगति का अवरोधक नहीं बनना चाहता क्योंकि

'अनुकरण करने का द्वार तो प्रत्येक के लिये खुला हुआ है'

४ मेरे आत्मीय मित्र मनी मर्सर, जिन्होंने अपनी प्रशंसा द्वारा मेरे यत्नों को प्रोत्साहित किया।

(२) जेम्स रेनेल (१७४२-१८३०)

गया था उसके देशान्तर में केवल एक डिग्री का परिवर्तन जान पड़ा जबकि उसके अक्षांश में लगभग पांच डिग्री का अन्तर पाया गया।

इसके पश्चात हमारे साथ की सेना उदयपुर से रवाना होकर चित्तौड़ के समीप होती हुई विन्ध्याचल से निकलने वाली समस्त बड़ी बड़ी नदियों को मालवे के मध्य से एक के बाद एक पार करते हुए बुन्देलखण्ड की सीमा पर बिमलासा पहुंची जहाँ हमने विश्राम किया। सात सौ मील की इस यात्रा में मैंने पहले के दूत दल के मार्ग को दो बार पार किया और इस बात से मुझे अत्यन्त प्रसन्नता हुई कि मेरे प्रारम्भिक प्रयत्नों के परिणाम सामान्य तौर पर पहिले से निश्चित निर्णयों के अनुसार ही निकले।

१८०७ ई० में जब सेना ने राहतगढ़ का घेरा डाला तब मराठे वहां व्यर्थ समय खो रहे थे। मैंने उस समय का सदुपयोग करने और मेरे प्रिय विषय की योजना को पूरा करने का निर्णय किया। रक्षक सेना की एक छोटी सी टुकड़ी के साथ मैंने बेतवा और चन्देरी नदियों के किनारे से होकर उन अज्ञात स्थानों तक जाने और उसी रेखा में पश्चिम में कोटे की ओर बढ़ कर दक्षिण से उन सभी नदियों का एक बार और मार्ग ढूंढने एवं उनमें सबसे महत्वपूर्ण नदियों (काली सिन्धु पारबती और बनास) के चम्बल के साथ संगम स्थानों का पता लगाने का निश्चय किया और यह सब करने के पश्चात् मैंने आगरे जाने का तय किया। जिस समय मैंने यह कार्य किया वह समय वर्तमान से बहुत भिन्न था कभी कभी आधी रात को डेरे उखाड़ कर कूच करना पड़ता था और कई बार लुटेरों का शिकार होना पड़ता था।[१] इस मार्ग के मुख्य मुख्य स्थान बिमलासा राजघाटा बेतवा के किनारे कोटरा ललितपाताना कोटा नगर, पाटन जहाँ काली सिन्धु पर पलायता बड़ौद शिवपुर, पाली चम्बल और पार्बती के संगम पर, रणथम्भोर, करौली, मथुरा और आगरा थे।

मराठा लश्कर में वापस लौटने के पश्चात मैंने फिर अपने कार्यक्षेत्र को बढ़ाने का निश्चय किया और पश्चिम की ओर भरतपुर, कठूमर डीग होते हुए जयपुर, टौंक इन्द्रगढ़ गूगल छपरा राघोगढ़, आरोन कुर्वाई और भीलसा के मार्ग से सागर तक की यात्रा की यह एक सहस्त्र मील से अधिक की यात्रा थी। मैंने लौट कर मराठा सेना के लश्कर को वहीं पाया जहाँ कि मैंने उसे छोड़ा था।

सिंधिया के इस निरन्तर गतिमान दरबार के साथ मैं इस प्रदेश में हर जगह घूमा और १८१२ ई० तक लगातार पैमाइश करता रहा। तदन्तर सिन्धिया का दरबार एक जगह ही जम गया। तब मैंने उन देशों की जानकारी प्राप्त करने की योजना बनाई जिनमें कि मैं स्वयं नहीं जा सका था।

सर्वेक्षण दल

सन् १८१ -११ में मैंने दो दल एक सिन्धु नदी की ओर और दूसरा सतलज के दक्षिण के रेगिस्तान की ओर रवाना किया। पहला दल शेख अब्दुल बरकत की मातहती म पश्चिम की ओर उदयपुर से होकर गुजरात सौराष्ट्र कच्छ लखपत और सिन्ध की राजधानी हैदराबाद होकर सिन्ध को पार कर मत्ता पहुँचा वहां से नदी के दाहिने किनारे पर सीवान की ओर बढ़ा नदी को वहां पुनः पार की और बायें किनारे पर यात्रा जारी रख कर खैरपुर पहुंचा जो सिन्ध के तीन

---

१. इन यात्राओं में कई ऐसी घटनाएं घटीं जो आश्चर्यजनक यात्राओं की याद दिलाती हैं किन्तु उनका वर्णन करने के लिये यहाँ स्थान नहीं है।

सूबेदारों में से एक के रहने का निवासस्थान है। यहाँ से यह दल (सिकन्दर के आक्रमण के समय की सागड़ी(३) जाति की राजधानी) देखकर[१] आबू पहुँच कर उमर सूमरा के रेतीले मार्ग से लौट कर जैसलमेर मारवाड़ और जयपुर होता हुआ नरवर के मुकाम पर मुझे आ मिला। यह सब बड़े श्रम-कौशल का कार्य था परन्तु शेख बड़ा साहसी और उद्योगी तथा साथ ही पढ़ा-लिखा पुरुष भी था। उसने जिस क्षेत्र में होकर यात्रा की वहाँ की भिन्न-भिन्न जातियों का भूगोल उनकी स्थिति और उनके सम्बन्ध में भावी खोज के हेतु अपनी दिनचर्या की पुस्तक में संकेत और निर्देश लिख लिये थे।

दूसरा दल एक बहुत ही योग्य पुरुष मदारीलाल की अधीनता में रवाना हुआ। यह व्यक्ति भूगोल सम्बन्धी खोज की इन यात्राओं में बहुत प्रवीण हो गया था। और उसने उससे सम्बन्धित अन्य ज्ञान भी पर्याप्त बढ़ा लिया था। इस विस्तीर्ण प्रदेश का भूगोल सम्बन्धी कोई भी ऐसा महत्त्व का स्थान नहीं रहा जहाँ कि यह साहसी पुरुष न पहुँचा हो। इस व्यक्ति की इस प्रकार की विषम और भयानक यात्रायें करने की योग्यता का कोई मुकाबला (समानता) नहीं कर सकता था। इस उत्साही उद्योगी और अधिकार स्थापक तथा चतुर व्यक्ति ने यह काम करके दिखाया कि यदि कोई दूसरा

---

१. यह देख मेरे पास नमूने के तौर पर सिलीपत जाति के पत्थर के टुकड़े तथा बहुत पुराने सिवान किले की ईंट का टुकड़ा और वहाँ के खंडों का कुछ जला हुआ अन्न लाया जिसके लिए यह कहा जाता है कि यह विक्रमादित्य के भाई भर्तृहरि के समय का जला हुआ है। अनुमान है कि सिकन्दर के आक्रमण के समय यह अन्न भूमि में गाड़ा गया हो और पीछे आग से जल गया हो। कप्तान पोटिंजर का अनुमान है कि सिवान(४) मुसिकेनस (५) की राजधानी थी।

---

(३) सिकन्दर के आक्रमण के समय भिन्न-भिन्न जातियों के कई राज्य थे। यूनानी इतिहासकार एरियन के मतानुसार इनमें से एक 'सागड़ी' जाति का राज्य था। रोमन इतिहासकार डायोडोरस (या डियोडोरस) इसे "सोड्री" या "सोग्राइ" (=शूद्र) लिखता है। (इनवेजन पृ० २६३) डॉ० वासुदेव शरण अग्रवाल के मतानुसार उत्तरी सिन्ध में रोरी के पूरब में शूद्र या शौद्रायण जन-पद था। पातञ्जलि ने इसका नाम अमाब्राह्मणक जन-पद और इसके दक्षिण में स्थित ब्राह्मणक जनपद को अपूपलक कहा है (महाभाष्य सूत्र १।३।१) अब्राह्मणको देश अपूपलका दश। टॉड का अनुमान था कि सागड़ी जाति के लोग सम्भवतः परमारों की शाखा 'सोढ़ा' रहे हों। ओझाजी के मतानुसार सोढ और सांखले परमार धरणीवाह के वंशज हैं।

(४) टॉड 'सागड़ी' जाति की राजधानी "आलोड़" अथवा 'आरोड़' मानते थे। किन्तु कनिंघम के मतानुसार यह "आलोड़" और रोहड़ के मध्य स्थित थी। "मुसीकेनस" की राजधानी सम्भवतः आलोड़ थी और "सीवान" यूनानियों का सिन्धीमाना था। (क० १-पृ० ५)

(५) स्ट्रेबो डायोडोरस तथा एरियन आदि ने लिखा है कि "मुसीकेनस" (या मुसिकनुस) सागड़ी राज्य के दक्षिणी सीमा पर के देश का एक राजा था। डॉ० वासुदेवशरण अग्रवाल के मतानुसार उस समय यहाँ ब्राह्मण राजा "मुसिकनुस" का राज्य था। मुसिकनुस का मूल संस्कृत रूप "मुचकर्ण" है मूषिक नहीं (पाणिनीय सूत्र। ४।२।८० कुमुदादिगण)

पुरुष होता तो अवश्य मर जाता। *

इन दूर-दूर के प्रदेशों के अच्छे अच्छे जानकार, वहाँ के निवासी समझ बूझ कर और पारितोषिक दिये जाकर मेरे पास लाये जाते थे। १८१२ से १८१७ तक जब मैं मराठा लश्कर के साथ ग्वालियर में रहा, वहाँ पर मैं जब कभी भी इच्छा करता सिन्धु की घाटी थाट, उमर-सूमरा के रेगिस्तान अथवा राजस्थान के किसी भी राज्य के निवासी को अपने पास बुला सकता था।

यूरोप के निवासी इस बात पर बड़ी कठिनाई से विश्वास करेंगे कि इन देशों में जहाँ डाक घरों का प्रबन्ध नहीं है, कासिद और अन्य पत्रवाहक लोग लम्बे २ मार्गों की विशेषताओं और उनकी ठीक ठीक दूरी का बहुत ही सही अन्दाज दे देते हैं। मुझे यह कहने में कोई संकोच नहीं है कि यदि किसी एक देश के नापे हुए "कोस" का सही अन्दाज लग जाय तो उसकी रेखा सफलता और शुद्धता के साथ समतल धरातल पर खींची जा सकती है। मैंने यह बात कई बार सुनी है कि हिन्दू राजाओं का यह नियम था कि वे एक नगर से दूसरे नगर तक सड़कों को नपवाते थे इस नाप देह को मन नाम में लाया जाता था उसका वर्णन 'भाव महात्म्य'* (६) में मिलता है। निस्संदेह ही पैमाइश द्वारा जानी गई दूरी और उसी दूरी का वहाँ के निवासियों का अन्दाजा दोनों बराबर उतरते थे। यह इस बात का सर्वोत्तम प्रमाण है कि यहाँ के निवासियों का दूरी का अन्दाजा कोरी अनुमानित कल्पना ही नहीं थी अपितु यहाँ किसी न किसी अधिक निश्चित विधि का प्रचलन था।

मार्गविलास के दल के अतिरिक्त मैं किसी अन्य अकेले दल के ज्ञान से संतुष्ट नहीं होता था। मैं सदा एक दल के ज्ञान को उसी स्थान पर जाने वाले दूसरे दल की सहायता का आधार बनाता था। अन्त में इस भाँति उस दूसरे दल की जानकारी और काम की बातों से तथा उसके साथ लाये गये देशवासियों की सहायता से प्रत्येक स्थान की पूरी जांच पड़ताल (छानबीन) करके ही मैं सन्तुष्ट होता था।

---

७. अंत में उसका स्वास्थ्य जर्जर हो गया उसमें नैराश्य छा गया और अचानक उसकी मृत्यु हो गई। मेरा विश्वास है कि उसे जहर दे दिया गया था। बखारी की भांति ही एक अन्य उत्साही व्यक्ति कता भी भूगोल सम्बन्धी खोज का कार्य करते हुए मर गया। भूरत में भूगोल उन लोगों के लिए अत्यन्त ही विनाशकारी रही, जिन्होंने कि उसकी खोज का काम बहुत लगन से किया।

८. एक बहुमूल्य एवं प्राचीन ग्रन्थ जो मैंने रायल एशियाटिक सोसायटी (७) को भेंट कर दिया।

---

(६) "भाव महात्म्य" ग्रन्थ और उसमें दी गई सर्वे सम्बन्धी यन्त्रों के विवरण को मैंने देखा। (अनुवाद सं १ पृ ६-पाद टिप्पणी ७ भी)। मेरे पास L.D Barnett कृत Catalogue of Tod Collection of Indian Mss, in Possession of Royal Asiatic Society है (J R. A.S., June, 1940 p p. 129–170)। इसमें उक्त सोसाइटी को टॉड द्वारा भेंट किये गये सारे संस्कृत राजस्थानी एवं अन्य हिन्दी हस्तलिखित ग्रन्थों की सूची है। उसमें तो 'भाव महात्म्य' नामक ग्रन्थ का कहीं भी नाम नहीं मिलता है। उसमें एक दूसरे ग्रन्थ का उल्लेख है– 'विश्वकर्मावतार' अथवा ज्ञान प्रकाशित दीपार्णव' जिसमें गृह निर्माण शिल्पकला आदि सभी बातों की विवेचना की गई है।
(अमराव सिंह गंगा के नाम डॉ० रघुवीरसिंह, सी तिद् का पत्र दि० २९–७–५१)।

(७) रायल एशियाटिक सोसायटी लन्दन को पत्र लिखा गया, वहाँ से उत्तर आया था कि "इस पुस्तकालय में अथवा ब्रिटिश म्यूजियम में 'भाव महात्म्य' नामी Mss नहीं है"।

इस प्रकार इस बृहद् देश के भागों की रेखाओं से मैंने कई जिल्दें भर डालीं, और जिन स्थानों की स्थिति निश्चित हो चुकी थी उनके आधार पर मैंने एक सामान्य मानचित्र बना लिया और उसमें वे समस्त सूचनाएँ भर दीं। मैं विशेष कर पश्चिमी राज्यों की चर्चा करता हूं, क्योंकि मध्यवर्ती भाग अथवा उस भाग की जिसमें चम्बल और उसकी सहायक नदियाँ बहती हैं जो या तो पश्चिम में अरावली पर्वतमाला अथवा दक्षिण में विन्ध्याचल पर्वतमाला से निकलती है मैंने स्वयं पैमाइश की है, और हर दिशा में इतनी शुद्धता से की है कि यह किसी भी सैनिक अथवा राजनैतिक कार्य में पूर्णरूपेण उपयोगी प्रमाणित हो सकती है। जब तक त्रिकोणमिति के अनुसार पैमाइश दक्षिण से आगे बढ़कर सारे भारतवर्ष में न हो जाय, तब तक मेरी यह पैमाइश उपयोगी प्रमाणित होती रहेगी। इन प्रदेशों के उत्तर में सतलुज तक और पश्चिम में सिन्धु नदी तक जो विस्तृत सम भूभाग है, वहाँ पर भूगोल सम्बन्धी विषयों का एक साथ समावेश करना उन स्थानों की अपेक्षा बहुत सरल है जहाँ बीच में पर्वतीय भूमि आ गई है।

इन भिन्न २ रेखाओं को उपर्युक्त मानचित्र में अंकित करके मैंने उनकी शुद्धता को त्रिकोणमिति अर्थात् नई रीति की पैमाइश द्वारा जाँचने का निश्चय किया।

मेरे दल पुनः इसी काम के लिये उन्हीं क्षेत्रों में भेजे गये जिनसे वे परिचित हो गये थे। उन्होंने उन स्थानों से कार्य प्रारम्भ किया जिनकी स्थिति निश्चित थी (और मेरे ज्ञान ने इसमें बहुत सहायता की) इनमें से हर एक को केन्द्र बना कर उन्होंने २ मील के अन्तर तक प्रत्येक नगर को जाने वाले मार्गों को अंकित कर लिया। जो स्थान चुने गये थे वे प्रायः ऐसे थे जो करीब करीब समद्विबाहु त्रिकोण बनाते थे। यद्यपि उनकी जानकारी को क्रमपूर्वक लगाना बड़ा कठिन काम था तो भी यह ऐसी रीति थी कि जिसके द्वारा देखने वाला आप ही अपनी अशुद्धता जान लेता था क्योंकि ये रेखाएँ प्रत्येक दिशा में एक दूसरे को काटती और परस्पर शुद्ध करती थीं। इस प्रकार के साधनों से मैंने उन अज्ञात प्रदेशों में कार्य किया जिसका कुछ फल पाठकों के सम्मुख उपस्थित है। कुछ फल मैं इसलिये कहता हूं कि मेरे स्वास्थ्य ने मेरी इच्छा के विरुद्ध बहुत सा भाग हठात् छुड़ा दिया है जो कि इन प्रदेशों की यात्रा के १ जिल्दों में मैंने लिखा था।

लेखक द्वारा निर्मित मानचित्र

जैसा कि मैंने ऊपर कहा है इस समस्त ज्ञातव्य के आधार पर बनाई गई रूपरेखा का मानचित्र सन् १८१५ ई० में मैंने गवर्नर जनरल को भेंट किया था जो बाद के युद्ध में अत्यधिक महत्त्वपूर्ण प्रमाणित हुआ। युद्ध प्रारम्भ होने के ठीक पहले मैंने एक और दूसरा मानचित्र तैयार किया जिसमें मालवे के अधिकतर भाग का समावेश था। मैंने उसे भी गवर्नर जनरल को भेंट किया और वह युद्ध में बहुत उपयोगी प्रमाणित हुआ। इस लघु मानचित्र में विन्ध्याचल पर्वतों की सामान्य स्थिति उनमें से निकलने वाली नदियों के उद्गम तथा बहाव मार्ग एवं पर्वत श्रेणियों के समस्त दर्रे बताये गये थे जो अत्यन्त महत्त्व के थे। इस भाग में आने वाले विभिन्न देशों की सीमाएँ भी उसी प्रकार बताई गई थीं और इस भाँति यह मानचित्र बाद में पेंडारा राज्य को नष्ट करने में अत्यन्त ही आवश्यक एवं उपयोगी सिद्ध हुआ।

इस मानचित्र को निर्माण करने में मुझे डॉ० हंटर के और मेरे, दोनों के निश्चित किए हुए अनेक स्थानों से काम लेना पड़ा। मुझे यह देखकर बड़ी प्रसन्नता होती है कि बाद में उन स्थानों की कई बार पैमाइश हुई है और उनके आधार पर जो मानचित्र निर्माण हुए उनमें मेरी निश्चित की हुई रेखाएँ ही दिखाई गई हैं। मेरी खोज के पश्चात् जो नई रेखाएँ वैज्ञानिक एवं उत्साही भूगोल ज्ञाताओं के द्वारा निश्चित की गई हैं उनका कुछ भाग मैंने बिना हिचकिचाहट के अपने

इस मानचित्र[९] में दिया है।

सन् १८१७ से १८२२ तक मैंने कई पैमाइशी रेखायें बनाईं और यहाँ मैं अपने सम्बन्धी[१०] के लिए अपनी कृतज्ञता प्रकट किए बिना नहीं रह सकता केवल उनकी सहायता से मेरे भूगोल सम्बन्धी इस परिश्रम में सुधार हुआ। इन महोदय ने एक वृत्ताकार पैमाइश की जिसमें मेवाड़ के करीब करीब सीमान्त स्थान राजधानी से आरम्भ कर चित्तौड़ मांडलगढ़ शाहपुर राजमहल और लौटते हुए मिनाय कनौर देवगढ़ से होकर उस स्थान तक जहाँ से चले थे सभी स्थान आ गये हैं। इस पैमाइश के द्वारा निश्चित किए गए सीमान्त स्थानों के आधार पर बहुत से मध्यस्थल के स्थान निश्चय कर दिये जिनके लिए मेवाड़ अपनी ऊबड़खाबड़ पहाड़ी स्थिति के कारण बहुत उपयोगी है।

सन् १८२ में मैंने अरावली को पार कर एक बहुत उपयोगी यात्रा की जिसमें मैं कुम्भलमेर पाली होकर मारवाड़ की राजधानी जोधपुर तक वहां से मेड़ता होकर लूणी नदी के मार्ग का पता लगाता हुआ उसके उद्गम स्थान अजमेर तक पहुँचा और चौहान तथा मुगल राजाओं के इस प्रसिद्ध स्थान से आगे बढ़ कर मिनाय बनेड़ा होकर मेवाड़ के मध्यवर्ती भाग से लौटता हुआ राजधानी पहुँचा।

मुझे यह देखकर विशेष सन्तोष हुआ कि मेरे निश्चित किये गये जोधपुर के स्थान में जो कि पश्चिम और उत्तर के भूगोल सम्बन्धी रचना को निश्चय करने में मुख्य स्थान की भांति काम में लाया गया था केवल तीन कला का अन्तर अक्षांश में और इससे कुछ ही अधिक रेखांश में अन्तर पड़ा जिसके द्वारा मैंने बीकानेर का स्थान निश्चय किया था। यहां मिस्टर एलफिन्स्टन के अङ्कित किये हुये चिह्न से पूरी तरह आ मिला जिसका वर्णन उन्होंने काबुल में एलची (राजदूत) के रूप में जाते हुये अपनी यात्रा के वृत्तान्त में लिखा है।

उदयपुर जोधपुर, अजमेर आदि स्थान जो मैंने निरीक्षण द्वारा निश्चत किये थे और हंटर के निश्चत किये स्थानों के सिवाय मैंने उस उद्योगी यात्री के जो कि "खुरासान की यात्रा" नामक पुस्तक का लेखक[११] है दिये हुए थोड़े स्थानों से भी काम लिया है उन्होंने दिल्ली से नागपुर और जोधपुर होकर उदयपुर की यात्रा की थी।

गुजरात[१२] सौराष्ट्र प्रायद्वीप और कच्छ की रूप रेखा जिनको मुख्यतः सम्बन्ध दिखाने के लिये दर्ज किया प्रसिद्ध भूगोल-शास्त्री स्वर्गीय रेनाल्ड्स की पुस्तक से ली गई है। हम दोनों ने एक ही क्षेत्र के बहुत बड़े भाग की शोध की थी और मेरी साक्षी उन देशों के बारे में की गई उसकी शोध का मूल्य प्रकट करती है जिनमें कि वह स्वयं कभी भी नहीं गया। इससे यह सिद्ध होगया कि उद्योग द्वारा उपर्युक्त प्रकार की सामग्री के उपयोग से क्या हो सकता है!

---

९ इस मानचित्र में मालवा देश तक ही दर्ज किया गया है जिसका भूगोल कप्तान डेंजर फील्ड ने बड़े परिश्रम से सुधारा और बढ़ाया है। यद्यपि इस देश को भरने की मेरी सामग्री बहुत थी, परन्तु मैंने इसमें मुख्य स्थानों को ही दर्ज किया जो इसको राजस्थान से मिलाते हैं।

१० कप्तान पी टी वाघ दसवीं रजिमेंट-बंगाल कैवेलरी।

११ मिस्टर जे बी फ्रेजर।

१२ इन प्रदेशों में से होकर जयपुर से सिंध के मुहाने तक १८२२-२३ ई. में मैंने अपनी अन्तिम यात्रा की थी किन्तु वह यात्रा भौगोलिक खोज की अपेक्षा ऐतिहासिक एवं प्राचीन काल की वस्तुओं के अध्ययन की दृष्टि से अधिक रही थी। मेरी अधिकांश यात्राओं में यह यात्रा बहुत लाभप्रद सिद्ध हुई।

एक रेखाचित्र देता हूँ, जिसमें आबू से चंबल तक की पैमाइश वायुमापक यन्त्र द्वारा और चम्बल से बेतवा तक की पैमाइश मेरी साधारण निरीक्षा द्वारा की गई है।[18] सतह (ऊपरी भाग) इतनी ऊपर है कि कोटा के पास बेतवा समुद्र की सतह से एक हजार फुट ऊंची तथा उदयपुर नगर और उसकी घाटी से एक हजार फुट नीची है। उदयपुर की घाटी आबू के धरातल की सतह के बराबर अर्थात् समुद्र की सतह से दो हजार फुट ऊँची है। यह रेखा जिसकी सामान्य दिशा उत्तर पश्चिम से कुछ ही दूरी पर है अनुमानतः कई भौगोलिक मील लम्बी है। तो भी यह छोटा सा देश भिन्न भिन्न प्रकार के निवासियों और गुप्त अथवा प्रकट भूपदार्थों से भरा पड़ा है।

अब हमारे उच्च स्थान से (जहाँ हम खड़े हैं और अभी भी पूर्व की ओर दृष्टिपात कर रहे हैं) अपनी दृष्टि उपरोक्त रेखा के दक्षिण और उत्तर दोनों ओर डालें जो रेखा मध्यदेश[19] अर्थात् राजस्थान की मध्यवर्ती भूमि को दो समान भागों में विभक्त करती है। मध्यदेश वही समझना चाहिये जो यमुना से लगाय तक चम्बल और उसकी सहायक नदियों के बहाव मार्ग से बनता है। और ऊँचे अरावली[20] से परे पश्चिम के प्रदेश को पश्चिमी राजस्थान नाम देना उचित होगा।

दक्षिण की ओर मुड़ कर देखने पर हमारी दृष्टि विन्ध्याचल पर्वतमाला की दूर तक फैली हुई और दृढ़ता से जमी हुई श्रेणी पर रुक जाती है यह श्रेणी हिन्दुस्थान और दक्षिण के मध्य की स्पष्ट सीमा है। यद्यपि आबू पर्वत के गुरु शिखर की उच्च स्थिति से देखने पर हमें विन्ध्याचल की श्रेणी छोटी और कम महत्व की ज्ञात होगी क्योंकि हमारा देखने का स्थान उसके भव्य स्वरूप को देखने के उपयुक्त नहीं है। यदि उसे दक्षिण से देखा जाय तो उसकी भव्यता का आभास मिलेगा यद्यपि उत्तर के इस सम्पूर्ण अंचल में कितने ही ऐसे भव्य ऊँचे स्थान हैं जो उत्तार के कठिन स्थानों से ही कई सौ फुट ऊँचे उठ जाते हैं।

अरावली को स्वयं भी विन्ध्याचल से मिला हुआ कहा जा सकता है उनका संधि-स्थान चांपानेर की ओर है। यह कहना भी उचित ही होगा कि अरावली विन्ध्याचल से ही निकला और फैल गया है। यद्यपि उत्तर की अपेक्षा यह उसकी ऊंचाई बहुत कम है किन्तु सम्पूर्ण दक्षिण में[21] लूनावाड़ा डूंगरपुर और ईडर से अम्बा भवानी और उदयपुर तक यह अपना विराट रूप धारण किये हुए है।

अब यदि आबू से मालवे की उच्चभूमि पर दृष्टि डालें तो हम देखते हैं कि उसकी काली मिट्टी के मैदान विन्ध्याचल के ऊँचे ऊँचे स्थानों से आने वाली अनेक नदियों से कटे हुए हैं। यह नदियाँ उत्तर की ओर बह रही हैं इनमें से कुछ घाटियों पर बह जाती हुई अथवा ढलानों से गिर कर प्रपात बनाती हुई दिखाई देती हैं और अन्य मार्ग की रुकावटों को तोड़ती रौंदती हुई तथा मध्यवर्ती उच्चसमभूमि में अपना मार्ग बनाती हुई चम्बल में जा मिलती हैं।

---

१८. मैं इन देशों से भली भांति परिचित हूँ और विश्वास के साथ कहता हूँ कि जब वैसी ही पैमाइश बेतवा से कोटा तक की जायेगी तो इन परिणामों में बहुत थोड़ी अशुद्धता मिलेगी। अशुद्धता यह होगी कि कोटा कुछ अधिक ऊंचा और बेतवा की भूमि कुछ अधिक नीची दर्ज की गई ज्ञात होगी।

१९. मध्यभारत नाम का प्रयोग मैंने पहली बार सन् १८१२ ई॰ में 'मध्य और पश्चिमी भारत' के मानचित्र का नाम रखने में किया जो कि मैंने मार्क्विस आफ हेस्टिंग्स को भेंट किया था और तभी से यही प्रचलित हो गया।

२०. यह बात ध्यान में रखने योग्य है कि यद्यपि अरावली का आकार समतल नहीं बना रहता पर उसकी शाखें उत्तर में देहली तक पहुंचती हैं।

२१. बड़ौदा से मालवा की ओर यात्रा करने पर और धरातल की ऊंचाई नीचाई पर ध्यान देने पर दोनों पर्वत मालाओं की कड़ी दिखाई देगी।

अरावली पर्वतमाला

इस प्रकार दक्षिणी दृश्य को दृष्टिगत कर लेने के पश्चात अब हम इस रेखा के उत्तर की ओर देखें और अपनी दृष्टि को अरावली [२२] के उच्च भाग पर रोकें। राजधानी उदयपुर से लेकर, जो हमारे खड़े हुए स्थान आबू की रेखा पर है, कोगण्डा पानरवा और मेरपुर होते हुए सिरोही के निकट के पश्चिमी उतार तक एक भाग को लें। यह भाग एक सीधी रेखा में लगभग साठ मील है जिसमें उदयपुर की चढ़ाई से मारवाड़ के उतार तक पहाड़ियों के बाद पहाड़ियाँ और पर्वतों के ऊपर पर्वत उठे हुये दिखाई देते हैं। सिरोही की सीमा तक के इस सम्पूर्ण भूभाग में आदिवासियों की कई जातियाँ बसी हुई हैं जो आदिम और लगभग जंगली अवस्था की स्वतन्त्रता में रह रही हैं। वे किसी भी प्रभुसत्ता के आधीन नहीं हैं। न वे किसी को (भेंट) नजराना देती हैं और उनके नेता जो 'रावत' कहलाते हैं एक ही वंश के होते हैं। इसी भांति कोमलमेर का रावत पांच हजार धनुर्धारी एकत्रित कर सकता है। उनके निवासी पहाड़ों की घाटियों में चरागाह अथवा जलाशय के स्थानों के निकट बिखरी हुई छोटी छोटी और जंगली बस्तियों में रहते हैं। [२३]

अब मैं पाठकों को (आबू पर्वत से) कुम्भलमेर [२४] दुर्ग के शिखर पर ले चलता हूँ। हम वहाँ से अजमेर की ओर उत्तर को जाती हुई पर्वत श्रेणी पर दृष्टि डालें जहाँ थोड़ी दूर पश्चात उसका समतल आकार लुप्त हो जायेगा और ऊँची ऊँची चोटियाँ निकल आयेंगी। वहाँ से उसकी अनेक शाखायें शेखावाटी के ठिकानों और अलवर में चली गई हैं उसके पश्चात ये क्रमार्ग में कम होते होते दिल्ली के निकट समाप्त हो जाती हैं।

कुम्भलमेर से अजमेर तक का कुल देश मेरवाड़ा कहलाता है पर्वत और उसमें मेर नामक पहाड़ी जाति निवास करती है। इस अद्भुत जाति के आचार व्यवहार और इतिहास के बारे में आगे चल कर लिखेंगे। इस श्रेणी की औसत चौड़ाई छः से पन्द्रह मील तक है उसकी ऊँची घाटियों और चट्टानों पर एक सौ पचास से अधिक गाँव और पुरवे [ढकि (राजस्थानी)] इधर उधर बिखरे हुये हैं। यहाँ पर यथेष्ठ पानी होता है चरागाहों की कमी नहीं है और उनकी अपनी आवश्यकताओं की पूर्ति जितनी खेती हो जाती है। इन टीलों पर होने वाली खेती में उतना ही भारी परिश्रम पड़ता है जितना कि स्विट्जरलैंड के देश में और राइन नदी पर अंगूर की खेती में पड़ता है।

ईडर से अजमेर तक इस पर्वत श्रेणी की परिधि में गाड़ी चलने का कोई चिह्न नहीं दिखाई देता और इस कारण 'आड़ा' (रोकने वाला) नाम बहुत ही सार्थक है क्योंकि आधुनिक समय की युद्ध सामग्री के सबसे प्रधान अंग

---

१२ 'शक्ति का आश्रयस्थल' बहुत ही उपयुक्त नाम है, क्योंकि अरावली ने सबसे प्राचीन राजवंश सूर्यवंश अर्थात मेवाड़ के राजाओं की सदैव रक्षा की है।

२१ मेरी इच्छा इनके सभी अलग अलग स्थानों में जाने की थी। इनके स्वामियों से बातचीत होने पर उन्होंने मुझसे सत्कारपूर्ण यात्रा का वादा किया था, जिस पर मुझे पूर्ण विश्वास था क्योंकि सभ्य जाति की अपेक्षा जंगली लोग अपने वचन का विशेष ध्यान रखते हैं। कई वर्ष पूर्व मेरे एक आदमी मदारी को इस भाग में होकर जाना पड़ा था। इन जंगली जातियों के एक भाग में पहाड़ का एक स्वामी मर गया था, सब मनुष्य बाहर गये थे उसकी विधवा स्त्री अकेली झोंपड़ी में थी। मदारी ने उसको अपना वृत्तान्त कहा और मार्ग में जाने के लिए रक्षा के प्रबन्ध की इच्छा प्रकट की, तब उस स्त्री ने मृत पति के (तूणीर) तरकस से एक (बाण) तीर निकाल कर उसको दिया और इस (बाण) तीर ने रक्षा की दृष्टि से वही काम किया जैसा कि यूरोप में "सुदृढ़ पास वाला लम्बा चौड़ा 'परवाना' किसी भी यात्री को काम देता।

१४ मेरु शब्द का अर्थ संस्कृत में 'पहाड़' है, इसी 'कुम्भल' का मूल रूप है 'कुम्भ-मेर' का अर्थ कुम्भा की पहाड़ी अथवा पहाड़ है। इसी प्रकार अजमेर 'अजय की पहाड़ी' अर्थात जीत में न आने वाली पहाड़ी है।

तोपखाने को भी पश्चिम[२५] की ओर के असाध्य उतार से बचने के लिए इस श्रेणी के उत्तर भाग से मोड़कर ले जाना पड़ेगा।

अरावली पर्वतों से दिखाई देने वाले दृश्य

यदि इस पर्वत श्रेणी पर दृष्टि डाली तो दोनों ओर की घाटियों की रक्षा करते हुए कई दुर्ग इसकी चोटियों पर दिखाई देते हैं और कई सोते पर्वत श्रेणी के मध्य भाग में प्रपात बनाते हुए और टेढ़ा बाँका मार्ग ढूंढते हुए नीचे की ओर बहते हैं। केवल बनास कोठारी खारी देई ये सब नदियाँ पूर्व में बनास नदी में आ मिलती हैं और पश्चिम में इनसे भी अधिक नदियाँ, जो गोडवाड़ के उपजाऊ प्रान्त को अधिक उर्वर कर देती हैं 'खारी नदी' लूणी में मिलती है और मरुभूमि की असली सीमा बनाती है। इन नदियों में सुकड़ी और बांडी मुख्य हैं और दूसरी नदियाँ जो साल भर नहीं बहती और जिनमें केवल वर्षा ऋतु में ही पानी मिलता है वे प्रायः 'रेला' कहलाती हैं। यह नाम उनके तेज पहाड़ी बहाव का सूचक है। ये रेले बहुत सी कछारी मिट्टी बहा ले जाते हैं जो नीचे की पथरीली भूमि को उपजाऊ बनाते हैं।

कुम्भलमेर के ऊँचे स्थान से इस पर्वत श्रेणी के क्रम रहित समूह का दृश्य कितना ही भव्य क्यों न मालूम होता हो परन्तु मारवाड़ के मैदान से ही उसकी भव्यता अपने सम्पूर्ण रूप में दिखाई देती है जहाँ कि उसकी अनेक चोटियाँ भिन्न भिन्न रूप में एक दूसरे के ऊपर उठती हुई दृष्टिगोचर होती हैं। अथवा ऐसा प्रतीत होता है मानों वे सघन वन से ढके और टेढ़े मेढ़े उतार वाले एकान्त डाकू स्थानों को क्रोधित दृष्टि से देख रहे हैं।

ध्यान पूर्वक विचार करने पर मैं इस निष्कर्ष पर पहुँचा हूं कि अरावली पर्वत श्रेणी भारत की 'घाट्स नामक' पर्वत माला है जो भारत प्राय द्वीप के मालाबार तट स्थित घाटों से सम्बन्धित हैं। इस शृंखला में कटकर नीचे हो गये मध्यवर्ती भाग में नर्बदा और ताप्ति के बहाव के कारण (वे दोनों पृथक प्रतीत होते हैं) किन्तु इससे मेरे कथन पर कोई आंच नहीं आती। मेरे कथन की सत्यता तो इनके रूप तथा बनावट की तुलना से ही भली भांति प्रमाणित हो जाती है।

अरावली का भूगर्भीय भाग

अरावली का सामान्य रूप उसकी प्रारम्भिक कनाईट ग्रेनाइट पत्थर है जो भारी ठोस तथा गहरे नीले स्लेट के पत्थर पर फैला हुआ भिन्न भिन्न कोण बनाता है। (पूर्व की ओर इसका सामान्य ढाल है) स्लेट पत्थर सामान्य तौर पर ग्रेनाइट पत्थर के अथवा उसके आधार तल से ऊपर विरल ही निकला हुआ रहता है। भीतरी घाटियों में कई प्रकार के बिल्लोरी पत्थर और भांति भांति के रंग की सिम्पल स्लेट की चट्टानें भरी पड़ी हैं जो मकानों और मन्दिरों की छतों पर जब सूर्य उन पर चमकता है एक अद्भुत ही अनोखा दृश्य बनाती हैं। नीस और साइनाइट पत्थर की चट्टानें कहीं कहीं पर दिखाई देती हैं तथा अजमेर से पश्चिम की ओर चारों ओर फैली हुई पर्वत माला में उसकी चोटियाँ कांच के समान गुलाबी रंग के बिल्लोरी पत्थर के विकट समूह से आंखों को चकाचौंध कर देती हैं।

---

२५. मेरे पड़ाव के स्थान पर तेमर के रहनेवाले मेरे एक राजपूत मित्र ने इसका ठीक ठीक वृत्तान्त मुझसे कहा था जिसके स्थान पर थोड़े ही दिनों पूर्व सिरोही के पहाड़ी दस्युओं ने आक्रमण किया था और गायों को लेकर चल दिये थे। वे सब माल लेकर बहुत ही निकट के किन्तु विकट मार्ग से चले, यद्यपि पर्वत की गौवें ऐसे स्थानों में घूमती फांदती चली जाती हैं पर वहाँ पहुँच कर वे मार्ग रुक गई। इस कठिनाई को एक मीणे ने इस प्रकार सुलझाया उसने एक गाय का वध कर पहाड़ के नीचे लुढ़का दिया जिसकी लाश को देख कर दूसरी गौवें भी उसी के पीछे पीछे उतर गई।

अरावली और उससे मिली हुई पहाड़ियां खनिज एवं धातु पदार्थों से भरी पड़ी हैं और जैसा कि मेवाड़ के इतिहास में वर्णित है केवल इन धातुओं के साधनों के आधार पर ही मेवाड़ के राणाओं ने अपने से अधिक शक्तिशाली बादशाहों से दीर्घकाल तक टक्कर ली और ऐसे भव्य प्रासाद बनाये जो यदि किसी भी पश्चिम के शक्तिशाली राज्य के पास हों, तो वह अपने को गौरवपूर्ण समझेगा।

खानें राजकीय सम्पत्ति हैं, उनकी पैदावार पर राजा का एकाधिकार है जो उनकी निजी आय में वृद्धि करती है। 'आण(११)–दाण–खाण' इन तीन शब्दों से बनी एक कहावत है जो राजस्थान में राजाओं की प्रभुसत्ता के रूप को प्रकट करती है जिसका अर्थ है प्रजा की उत्कट राजभक्ति(११) व्यापारकर, तथा खानें। किसी समय मेवाड़ की रांगे की खानें बहुत उपजाऊ थी और कहते हैं कि उनसे काफी मात्रा में चाँदी भी निकलती थी किन्तु अब खनिजों का समुदाय लुप्त हो गया है। ऐसा लगता है कि मुगल आधिपत्य के समय में राजनैतिक कारणों से इस प्रकार की सम्पत्ति के साधनों को गुप्त कर दिया गया था। एक बहुत उच्चकोटि का तांबा भी अत्यधिक मात्रा में प्राप्त है जिसकी मुद्रा बनाई जाती है। सलूम्बर जागीर का सरदार भी अपनी जागीर की खानों से तांबा निकलवा कर गजाशा से पैसे बनवाता है। पश्चिमी सीमा पर सुरमा (अञ्जन) मिलता है। तामड़ा नीलमणि लहसुनिया बिल्लौर, स्फटिकपत्थर, हरा–पीला रंगदार पत्थर *तथा निम्न कोटि के पन्ने भी मेवाड़ में पाये जाते हैं। यद्यपि मैंने स्वयं कोई मूल्यवान नमूना नहीं देखा किन्तु राणा* ने मुझे यह बताया कि जनश्रुति के अनुसार उसकी देशी पहाड़ियां हर प्रकार की खनिज सम्पत्ति से परिपूर्ण हैं।

पठार

अब हम अरावली के उच्च स्थान को छोड़कर पठार अथवा मध्यभारत की उच्च समभूमि का दौरा करते हैं। यह भी इस मनोरंजक भूभाग का एक महत्त्वपूर्ण भाग है। उसका स्वरूप निश्चित प्रकार का है जो दक्षिण के विन्ध्याचल और पश्चिम के अरावली से भिन्न है तथा उसमें निम्न कोटि की रचना के अथवा बहुत ही समतल आकार की परतों वाले ट्रेप आदि के पत्थर हैं।

इस उच्च समभूमि की परिधि मानचित्र में भली–भांति दिखाई गई है इसका धरातल अत्यन्त ही विषम रूप से दिखाई देता है और इसका स्वरूप लगातार समतल रूप में अथवा पर्वत श्रेणियों में बदलता रहता है।

मांडलगढ़ से यात्रा प्रारम्भ करके हम दक्षिण की ओर बढ़े तो चित्तौड़गढ़ (मांडलगढ़ और चित्तौड़गढ़ दोनों उच्च समभूमि से पृथक अलग खड़ी चट्टानों पर स्थित हैं) से गुजरते हुए जावद दांतोली रामपुरा[२६] भानपुरा मुकुन्दरा[२७] का दर्रा होकर गागरौन (यहाँ काली सिन्धु अपने सामने आये हुये मंझधार पर्वत में से बलपूर्वक मार्ग बनाती हुई इकलेरा[२८] की ओर बढ़ती है) और भूगवास तक (यहाँ पार्वती नदी कम ऊँचाई से लाभ उठाकर माशचा से हाड़ौती में प्रवेश कर जाती है) वहाँ से राघवगढ़ शादाबाद गाजीगढ़ मसवानी होते हुए नारूघाटी तक चलें तो वहाँ पूर्व में चम्बल पर उच्च समभूमि समाप्त होती है फिर प्रारम्भ के उसी स्थान मांडलगढ़ से आगे कदम बढ़ायें तो कुछ दूर पर *ही उसका अधिक मंझधार रूप समाप्त हो जाता है और उसकी बड़ी बड़ी श्रेणियां फैलती जाती हैं* जैसे कि बूँदी के दुर्ग वाली श्रेणी और वे जमबाना इन्द्रगढ़[२९] और लाखेरी[२९] होते हुए रणथम्भोर और करौली तक जाकर धौलपुर बाड़ी के समीप समाप्त हो जाती हैं।

---

२६. यहाँ से चम्बल पहली बार पठार में प्रवेश करती है।
२७. यहाँ पर पहाड़ों के मध्य में इसकी प्रसिद्ध घाटी है।
२८. यहाँ नैवज नदी पर्वत श्रेणी को तोड़ती जाती है।
२९. ये दोनों प्रसिद्ध दर्रे हैं जहाँ पर पर्वत श्रेणियां बड़ी पेचदार हैं।

---

(११) 'आण' का अर्थ दुहाई या शपथ है।

इस उच्च समभूमि की ऊँचाई और विषमता इसको पश्चिम से पूरब की ओर पार करके अर्थात् मैदान से चम्बल नदी की सतह तक जाने पर भलीभांति देखी जा सकती है जहाँ कि कोटा और पाली के घाट की चौड़ी सी सम भूमि को छोड़कर यह नदी चट्टानी दीवारों में होकर बड़े जोर से बहती दिखाई देती है।

रणथम्भौर में यह उच्च समभूमि ऊँची ऊँची कतारों के रूप में बदल जाती है उनकी सफेद चोटियाँ धूप में चमकती हैं जो विषम हैं किन्तु शिखर वाली नहीं हैं। ये यद्यपि पर्वतों के सिलसिले से पृथक हैं किन्तु पहाड़ी बनावट उनमें विद्यमान रहती है। यहाँ पर भिन्न भिन्न सात श्रेणियां (सतपुड़ा) हैं। बनास नदी इन सभी श्रेणियों में से अपना मार्ग बनाती हुई चम्बल नदी में जाकर मिलती है। रणथम्भौर के आगे और करौली से चम्बल नदी तक सम्पूर्ण मार्ग एक असम भूमि है जिसके शिखर ऊपर पर ऊटगिरि, मंडरायल और बूंदी के विख्यात दुर्ग हैं। किन्तु पूर्वी भाग के पूरब में एक दूसरा ढालू मैदान है जो लालसौट के पास सिन्धु के छोटे से प्रारम्भ होकर चन्देरी नरवर और ग्वालियर से गुजरते हुए देवगढ़ के निकट गोहद के मैदान में समाप्त हो जाता है इस दूसरे मैदान का उतार बुन्देलखण्ड और बेतवा की घाटी में चला गया है।

यद्यपि मध्यभारत के धरातल का यह उच्च भाग बहुत प्रसिद्ध है तो भी इसकी चोटी विन्ध्याचल के शिखर की सामान्य ऊँचाई से कुछ ही अधिक ऊँची और उदयपुर की घाटी तथा अरावली की अरावली की समानता पर है। इसलिए इन दोनों श्रेणियों का उच्च समभूमि की ओर का ढाल बहुत बड़ा एवं तेज है जिसका सबसे अधिक स्पष्ट एवं साधारण प्रमाण इनसे बहने वाली नदियों का तेज बहाव है। पृथ्वी पर ऐसे बहुत ही कम भाग हैं जहाँ पर हर रुकावट को कुचल कर बहने वाले पानी के वेग से उत्पन्न ऐसी शक्तिशाली ताकत का दृश्य दिखाई पड़ता हो जो दृश्य इन श्रेणियों की प्रबल घाटियों और चट्टानों के मध्य बलपूर्वक मार्ग बनाती हुई इन नदियों का दिखाई पड़ता है। प्रबल वेग से बहने वाली चार नदियों में से चम्बल यूरोप की राइन नदी और यहाँ तक कि रोन के बराबर गिनी जा सकती है। इन चार नदियों ने तीन सौ से छ सौ फीट तक की सीधी ऊँचाई वाले पर्वत को चोटी से लेकर नीचे पानी की सतह तक काट डाला है जिसमें चट्टानें ऐसी दिखाई देती हैं मानों मनुष्य के हाथ ने उनको टाँकी द्वारा काटा हो। यहाँ पर भूतत्त्व वेत्ता प्रकृति की पुस्तक को उसके विशिष्ट स्वरूप में पढ़ सकते हैं। रामपुरा से लगा कर कोटा तक मिलने वाली अत्यन्त ही रमणीय स्थान भूतत्त्व-वेत्ता पुरातत्त्व वेत्ता और प्रकृतिप्रेमी को अन्यत्र बहुत ही कम नजर आयेंगे जहाँ कि प्रकृति अपनी अनेकानेक वेशों में विभूषित है।

इस विस्तीर्ण उच्च समभमि का धरातल बहुत ही भिन्न भिन्न प्रकार का है। कोटे के समीप कई स्थानों में तो आगे को निकली हुई चट्टानों पर वनस्पति का चिह्न तक भी नजर नहीं आता लेकिन वहाँ पर सिरका कोटा बनाता हुआ नदी के पार किनारों तक पहुँचता है जहाँ यह भारतवर्ष के सबसे अधिक उर्वरा और उपजाऊ स्थानों में से एक हो जाता है और यहाँ ब्रिटिश भारत के किसी भी स्थान से अधिक उत्तम कृषि होती है। उसके दरारों वाले पार्श्व भागों में अनेक विचित्र प्रकार के दर्रे हैं (जैसे हिंगलाज के निकट नागराज का झरना) और गहरे गहरे खाल हैं जहां से छोटी छोटी नदियां निकलती हैं और यहाँ अभी तक मन्दिरों और प्राचीन भवनों में शिल्पकला का बहुमूल्य संग्रह[1] विद्यमान है। उन्हें देखकर यात्री आत्मविभोर हो जाता है।

मध्यवर्ती ऊँचाई वाला भाग जैसा कि पूर्व कहा जा चुका है पिछली रचना का है जिसको ट्रेप कहते हैं। यहाँ पर जंगल ने इसको नग्न कर दिया है यहाँ इसका रंग धूम के समान सफेद है यह बड़ा कठोर और मिलवाँदानेदार

---

१ इनमें से कुछ को मैंने पूर्णतः नष्ट होने से बचा कर मेरे देशवासियों का ध्यान किया है।

है यद्यपि टाँकी उसपर कठिनता से चल सकती है तो भी बड़ोली के प्रसिद्ध कारीगरी के नमूने शिल्पकार के लिए उसकी उपयोगिता का प्रमाण देते हैं। पश्चिम की ओर भी इसका रंग श्वेत है। कोटा के निकट श्वेत और बैंगनी मिला हुआ है। शाहाबाद के पास लाल और भूरे रंग का है। जब उसके पूर्वी ढाल पर जलवायु का प्रभाव पड़ता है तो यह मिश्रित और भरभरा बलुवा लगभग कंकरीला बलुवा मालूम पड़ने लगता है।

यह बनावट खनिज धातुओं के उपयुक्त नहीं है। यहाँ केवल शीशा और लोहा ही मिलता है लेकिन ये मुख्यतः लोहे के व ग अनयोगी अवस्था में भारी मात्रा में मिलते हैं। ग्वालियर प्रान्त में सुरमें की खानें हैं जो अधिक मूल्यवान कही जाती हैं। यहाँ के नमूने मैंने मंगाये थे परन्तु अब वे खानें भी बन्द पड़ी हैं। देशी लोग खनिज पदार्थों के निकालने से डरते हैं। यद्यपि उनके यहाँ राँगा शीशा ताम्बा अत्यधिक मात्रा में प्राप्त होता है, तो भी अपने रसोई बनाने के बर्तनों की सामग्री तक के लिए वे पूर्णरूपेण यूरोप वालों का मुंह देखते हैं।

अब मैं छोटी छोटी पहाड़ियों का वर्णन छोड़ कर पाठक का ध्यान राजवाड़े की भौगोलिक आकृति के इस साधारण निरीक्षण से निकलने वाले एक महत्वपूर्ण सार की ओर दिलाऊंगा।

मध्यभारत के पर्वतीय ढाल

मध्यभारत में दो विभिन्न प्रकार के ढाल हैं जिनमें प्रमुख पश्चिम से पूरब की ओर है जिसका विशाल प्राकार रूप अरावली से (जो रेती के बहाव को उन मध्यवर्ती मैदानों में आने से रोकता है जो चम्बल तथा उसकी एक सहस्र शाखाओं से बह रहा है) प्रारम्भ होकर बेतवा तक चला गया है। दूसरा ढाल दक्षिण से उत्तर की ओर है, जो मध्यप्रदेश के दक्षिणी पृष्ठ-पोषक विन्ध्याचल पर्वत से प्रारम्भ होकर यमुना तक चला गया है।

हमारी इस व्याख्या को विस्तृत कर हम यह भी कह सकते हैं कि यमुना नदी का बहाव भाग उस विशाल उपत्यका अथवा घाटी के उतारों का मध्यवर्ती स्थान है जिसका उत्तरी ढाल हिमालय की तलहटी से है और दक्षिणी ढाल विन्ध्य पर्वत की ओर से है।

यहाँ से मेरा विचार विशाल नर्मदा नदी के विभिन्न रूप धारण करने वाले विस्तीर्ण मार्ग का वर्णन करने का नहीं है यद्यपि मेरे पास उसके लिए पर्याप्त साधन मौजूद हैं क्योंकि जिस क्षण हम नर्मदा की घाटी में उतरने के लिए पीठ प्रधान विन्ध्याचल पर्वत[11] की चोटी पर चढ़ते हैं तभी हम राजस्थान और राजपूतों का सम्बन्ध छूट जाता है और इस भूमि के प्रथम स्वामी यहाँ की आदि निवासी जातियों से हमारा मिलाप हो जाता है। इसका वर्णन मैं नर्मदा पर्वत के उद्गम से आरम्भ कर इसके अन्त तक समाप्त करूँगा।

---

११ विन्ध्य पर्वत रोकना। सूर्य को उसके ऊपरी भाग पर आगे बढ़ने से रोकने (१२) के कारण इसका नाम विन्ध्याचल पड़ा।

---

(१२) पुराणों में लिखा है कि विन्ध्य पर्वत ने एक बार यह चाहा कि जिस प्रकार सूर्य मेरु पर्वत की परिक्रमा करता है वैसे ही उसकी भी किया करे। परन्तु जब सूर्य ने उसकी इच्छा-पूर्ति न की तो वह ऊंचा बढ़ने लगा और उसने सूर्य का मार्ग रोक लिया। इसी से यह विन्ध्याचल कहलाया। यद्यपि देवताओं के आग्रह पर विन्ध्याचल को उसके गुरु अगस्त्य मुनि ने पुनः नीचा कर दिया किन्तु उसका वही नाम चलता रहा।

चम्बल नदी

चम्बल नदी के स्रोत विन्ध्याचल पर्वत के ऊँचे स्थानों पर हैं जहाँ पहाड़ियों के समुदायों के मध्य में इनको 'जनपाव' के नाम से पुकारा जाता है। उसी स्थान से इसके तीन स्रोत चम्बल चम्बला और गम्भीर निकलते हैं, जब कि दक्षिणी पार्श्व भाग में कम से कम दो अन्य नदियाँ निकलती हैं जिनका पानी नर्मदा में जाकर मिलता है।

पीपलोदा से क्षिप्रा नदी देवास से छोटी सिन्धु[12] और उज्जैन से होकर आने वाली अन्य छोटी नदियाँ तमाम पृथक्-पृथक् स्थानों पर चम्बल में उसके उच्चतम भूमि में प्रवेश करने से पूर्व आ मिलती हैं।

बागढ़ी से काली सिन्धु और राघोगढ़ से उसकी छोटी शाखा सोडविया और सुखड़ी और मागरदा से नेवज (या जामनेरी) और ग्राम नम्बेड़ा की घाटी से पार्वती नदी जिसकी विशेष पूर्वी शाखा शिवपुर से निकल कर पलहर स्थान पर उससे आ मिलती है। इन समस्त नदियों के उद्गम स्थान विन्ध्याचल के ऊँचे शिखर पर हैं, जहाँ से वे अपने मार्ग का अवलम्बन करती हुई उच्च समभूमि में प्रवेश कर प्रपातों[13] पर से कूदती हुई नूनेरा और पाली के पार्श्व पर चम्बल में आकर समा जाती हैं। ये सब उसमें दाहिनी ओर से मिलती हैं।

पश्चिम की ओर से चम्बल नदी का पानी बनास के मिलने से बढ़ जाता है जो अरावली की निरन्तर बहने वाली नदियों का पानी लेकर आती है और उदयपुर की झीलों से निकलने वाली बेड़च नदी का पानी लेकर मेवाड़ जयपुर के दक्षिणी भाग और करौली की ऊँची भूमि को सरलता से पार करते हुए दक्षिण की ओर मुड़ कर पवित्र संगम[14] रामेश्वर पर चम्बल से मिलती है। कई और छोटी छोटी नदियाँ चम्बल में मिलती हैं जिनका उल्लेख महत्वपूर्ण नहीं है और बहुत चक्कर लगाने के पश्चात् चम्बल यमुना में जाकर मिलती है। यह संगम स्थान पवित्र त्रिवेणी[15] कहलाता है जो इटावा और कालपी के मध्य में है।

छोटे छोटे सर्पाकार घुमावों की गणना छोड़कर चम्बल नदी की लम्बाई पाँच सौ मील(१५) से अधिक है, और उसके किनारों पर मारवाड़ में रहने वाली लगभग प्रत्येक जाति के लोग निवास करते मिल जायेंगे जैसे सौंधी

---

१२ यह चौथी सिन्ध (सिन्धु) है पहली सिन्ध अथवा सिन्धु है दूसरी यह उपरोक्त सिन्ध, तीसरी काली सिन्ध अथवा काली नदी और चौथी सिन्ध लाखेरी के समीप सिरोंज के ऊपर वाली पश्चिमी उच्च समभूमि पर बहने वाली नदी।

'सिन' शब्द सीथियन है और नदी वाचक है (जो अब प्रचलित नहीं है) और इसी अर्थ में हिन्दुओं(१४) में भी है।

१३ काली सिन्ध का पाटन की चट्टानों के समीप का प्रपात और पार्वती नदी का छपरा के समीप का प्रपात बहुत ही मनोहर और देखने योग्य है। यद्यपि मैं दो बार छपरा के निकट ठहरा जहाँ से कि पार्वती पाँच मील दूर है, किन्तु मैं उसे नहीं देख पाया।

१४ संगम उस स्थान को कहते हैं जहाँ दो अथवा तीन नदियाँ आकर मिलती हैं। यह स्थान महादेव के लिए पवित्र माना जाता है।

१५ यमुना, चम्बल और सिन्धु।

---

(१५) ६५ मील (क्रुक्स खण्ड १ पृ १४)।
(१४) सीथियन लोगों का यह 'सिन' शब्द संस्कृत में उक्त अर्थ में कहीं नहीं आता।

चन्द्रावत, सिसोदिया हाड़ा गौर, आदून, सीकरवाल, पुआर[१६], जाट[१६], तंवर, चौहान मादौरिया, कछवाहा सेंगर, बुन्देला आदि जातियाँ जिनमें प्रत्येक का समूह अपनी पृथक और विशिष्ट स्थिति एवं स्वरूप धारण किये हुए है, चम्बल से कु वारी[१७] के बीच बसी हुई है।

पश्चिमी मरु भूमि

इस प्रकार राजस्थान के मध्य भागों अथवा अरावली के पूर्वी भागों का वर्णन करने के पश्चात् मैं अब शीघ्रता के साथ उसके पश्चिमी भाग का सामान्य दृश्य[१८] प्रस्तुत करूंगा और पाठक को मरुभूमि की रेतीली पहाड़ियों से सिन्धु की घाटी तक का भ्रमण कराऊंगा।

लूणी नदी

पाठक पुनः आबू पर्वत पर खड़ा हो, जिससे थल[१९] की कठिन यात्रा से बच जाए और वहीं से इस प्रदेश पर दृष्टिपात करे। इस शुष्क 'मृत्युदेश' की सबसे दिलचस्प वस्तु 'लारी नदी' (लूणी) है जिसकी कई शाखायें अरावली से निकल कर जोधपुर राज्य के सबसे अच्छे भागों को उपजाऊ बनाती और सदा स्थान बदलने वाली बालू के उस विस्तीर्ण मैदान की स्पष्ट सीमा बनाती हुई बहती है जिसे हिन्दू-भूगोल में 'मरुस्थली' कहा गया है और जिसका अपभ्रंश मारवाड़ हो गया है।

लूणी नदी की लम्बाई अपने उद्गम स्थान पुष्कर और अजमेर की पवित्र झीलों और सुदूर स्थान पर्बतसर से निकलने वाली उसकी शाखा से लेकर उसके पश्चिम के विस्तारयुक्त खारे दलदल वाले मुहाने तक ३ मील से अधिक है।

सिकन्दर के इतिहास-लेखकों ने 'एरिनस' शब्द का उपयोग किया है जो हमें 'रन'[४] अथवा रिण शब्द का अपभ्रंश लगता है उसका प्रयोग अब भी लूणी तथा घाट के दक्षिणी मरुस्थल से बहकर आने वाली वैसी ही खारे पानी वाली नदियों के बहाव की मिट्टी से बने हुए विस्तीर्ण दलदली भाग के लिए किया जाता है। यह एक सौ पच्चास मील लम्बा है और उसकी सबसे अधिक चौड़ाई भुज से बलियारी तक सत्तर मील है। उसी भाग से काफिले आया करते हैं क्योंकि इस भयभीत खारे दलदल के मध्य उनके ठहरने के हेतु पृथक मनोहर भूमि है। ग्रीष्म ऋतु में भयानक अस्थिर बाढ़ वाले उसके भ्रामक सतह पर केवल नमक की विस्तीर्ण और चमकती हुई परत ही दृष्टिगोचर होती है और वर्षा में वह मैला और भारा दलदल बन जाता है जो कई स्थानों पर ऊँट की छाती तक गहरा हो जाता है। खारीकाबा का छोटा मरुद्यान दोनों दिशा में यात्रा करने वाले उपयोगी जानवर ऊंट के लिए चरागाह का और यात्री के लिए विश्राम का स्थान है।

---

१६. केवल ये ही जातियाँ राजपूत रक्त की नहीं हैं।

१७. कुँआरी नदी।

१८. विभिन्न राज्यों के सीमावर्ती राष्ट्रों के भागों को फिर से नहीं दोहराऊंगा जिनका प्रत्येक राज्य की सीमांत रेखा पर स्पष्ट संकेत कर दिया गया है।

१९. मरुथल के रेतीले टीलों का सामान्य नाम।

४. यह संस्कृत अरण्य अथवा अवस्थल का अपभ्रंश है इसलिये इसको लिखने की पुरानी रीति वर्तमान रीति से अधिक शुद्ध है।

मरीचिका

इस खारी दलदल के सूखे[४१] किनारों पर 'मरीचिका' का भ्रामक दृश्य विशेषता रूप से दिखाई पड़ता है जो थके हुए यात्रियों के सिवाय सभी को आनन्दित करता है। ये पक्षियुक्त दुर्गों शान्तिमय बस्तियों अथवा सघन कुंजों के उस भ्रामक दृश्य को देखकर वहाँ विश्राम करने हेतु आकर्षित हुए जाते हैं किन्तु उनका प्रयत्न निष्फल जाता है क्योंकि ज्यों-ज्यों वे उस ओर बढ़ते हैं, वह स्थान पीछे हटता हुआ प्रतीत होता है और जब सूर्य अपने तेजी से इन मेघाच्छन्न दुर्गों को लुप्त कर देता है तब यात्रियों को अपनी दौड़ की निष्फलता का पता चलता है।

मरुस्थल में ऐसे दृश्य बहुत दिखाई देते हैं मुख्यतः वहाँ अधिक दिखाई पड़ते हैं जहाँ कि ये विस्तीर्ण लवण की पहाड़ियां फैली हुई होती हैं। लेकिन ये दृश्य कई कारणों से भिन्न भिन्न दिखाई देते हैं। अधिक दशाओं में यह प्रकाशपूर्ण आकार बनाने वाला और प्रतिबिम्ब डालने वाला यह उपकरण एक लम्बाकार चट्टान की तह बन जाता है पहले यह घना और अपारदर्शक होता है फिर यह गर्मी के बढ़ने के साथ साथ पतला होता जाता है और जब अत्यधिक गर्मी हो जाती है तो यह सूक्ष्म भाप बनकर उड़ जाता है। यह दृष्टि सम्बन्धी भ्रम जिससे राजपूत लोग भली भांति परिचित हैं 'सी कोट' अर्थात् शीतकाल का दुर्ग कहलाता है क्योंकि यह मुख्यतः शीतकाल में ही दृष्टिगत होता है इसलिए सम्भव है कि इसी से उस कल्पित और आनन्ददायक 'फटमो एन एल्फानी'[४२] के दृश्य की उत्पत्ति हुई हो, जो पश्चिम में बहुत विख्यात है[४३]।

मरुभूमि

यह रेतीला प्रदेश दक्षिण में लूणी नदी के उत्तरी किनारे से और पूर्व में शेखावाटी की सीमा से आरम्भ होता है। बीकानेर, जोधपुर और जैसलमेर में समस्त रेतीले मैदान हैं और ज्यों ज्यों पश्चिम में बढ़ें त्यों त्यों रेतीला भाग बढ़ता जाता है। इस भू भाग का समस्त भाग रेतीले पत्थर की बनावट पर आश्रित है। जोधपुर से अजमेर तक जितने कुंए नये बनाये गये हैं उनकी परीक्षा करने पर सभी में एक ही प्रकार की रेत कंकर और खड़िया मिट्टी मिली है।

जैसलमेर चारों ओर मरुस्थल से घिरा हुआ है और राजधानी के चारों ओर के भाग को यदि मरुद्यान कहें तो अनुचित नहीं होगा जहाँ कि गेहूं और जौ तथा चावल भी उत्पन्न होते हैं जिस (ओेसी) का पता उसकी दक्षिणी सीमा के परे पुराने चोहटण के खण्डहरों तक जो उसी पर बने हुए हैं लगाया जा सकता है और जिसके बारे में यह कहावत

---

४१ यहाँ पर जंगली गधे (गोरखर) बहुत संख्या में घूमते हैं। ये आज भी उतने ही चालाक हैं जितने कि वे अरबों के पूर्वज जाब के समय में थे। इनका स्थान जंगल व खारी स्थानों में होता है यह भीड़ भाड़ से घबराता है और हांकने वाले की चिल्लाहट पर ध्यान नहीं देता। (जाबकी पुस्तक ३९/५/७)

४२ मन प्रसन्न करने वाले कल्पित विचार।

४३ मैंने इसको हिसार के टूटे फूटे दुर्ग की चोटी पर से देखा है, जहाँ से दूर तक दृष्टि पहुँचती है जिसको रोकने के लिए छोटे जंगलों के सिवाय कोई झाड़ नहीं है। पृथ्वी के सम्पूर्ण धुन्ध भर से महलों, दुर्गों और इन कल्पित स्वर्गीय स्तम्भों की एक ऐसी कतार, बारी बारी से अपनी क्षणिक स्थिति को समाप्त करती दिखाई देती थी, पार और उमरसुमरा के रेगिस्तानों में जहाँ भड़किये भेड़ चरा करते हैं और जहाँ बारम्बार धूल उड़ती हैं वहाँ पदार्थों की स्थिति एक सीध में होती है और विशेष कर यहाँ जल-मरीचिका पैदा होती है। यह वही भ्रान्ति है जिसके बारे में किसी प्रेरणा प्राप्त लेखक ने कहा है कि "रेगिस्तान का मृग तृष्णा कभी पानी सच्चा हो जायगा" मरुस्थल के निवासी इसे 'चितराम' कहते हैं, जो किसी भी भांति अनुचित नाम नहीं है।

चली आती है कि यह हापा(१५) नाम की जाति अथवा राजा की राजधानी या अन्य उसका कोई दूसरा चिन्ह नहीं मिलता। यह असम्भव ज्ञात नहीं होता कि यह टीबा उस पहाड़ी से मिला हो जो जालोर के उर्वर प्रान्त में होकर गई है और इसलिए यह आबू के मूल से प्रकट होने वाली एक शाखा होगी।

यद्यपि ये समस्त प्रदेश एक साथ 'मरुस्थली' अथवा मृत्यु का प्रदेश (रेगिस्तान के लिए प्रभावोत्पादक एवं वास्तविक नाम) कहलाते हैं परन्तु इस नाम का प्रयोग केवल उसके एक भाग के लिए ही होता है जो राठौड़ जाति के अधिकार में है।

लूणी नदी के बालोतरा स्थान से आरम्भ कर पाट और अमर सूमरा जैसलमेर के पश्चिमी भाग और दाउदपोता और बीकानेर की दक्षिणी सीमाओं के मध्य की चौड़ी पट्टी तक का भूखण्ड चारों ओर बिल्कुल शून्य और उजाड़ है। लेकिन सतलज से रण तक के भूभाग में जो पांच सौ मील लम्बाई की दूरी का है और जिसकी चौड़ाई भिन्न–भिन्न स्थानों पर पचास से सौ मील तक की है अनेक मरुधान मिलते हैं जहाँ सिन्धु नदी के कछार और थल से आकर गडरिये अपनी भेड़ें चराते हैं। इन स्थानों के पानी के झरनों के अलग अलग नाम हैं—तौर, पाट, थर, दर जो समतल थल के वाचक हैं जिनके गिर्द राजड़, सोढ़ा मांगलिया सहराई[४४] आदि जाति के रेगिस्तान वासी एकत्रित होते हैं।

मैं लवण की झीलों सज्जीखार के क्षेत्रों अथवा रेगिस्तान की अन्य पैदावारों अर्थात् वनस्पति अथवा खनिज पदार्थों का वर्णन नहीं करूंगा यद्यपि खानों सम्बन्धी वर्णन रोचकता से किया जा सकता है क्योंकि जैसलमेर के निकट पीले पाषाण की केवल एक ही पहाड़ी है जिसका पत्थर आगरे में अरबी ढंग की अनुपम सुन्दर इमारत शाहजहाँ की रानी स्मारक ताज में लगाया गया है।

अब यहाँ मैं न तो सिन्धु नदी की घाटी और न उस नदी के पूर्वी भाग का जहाँ रेगिस्तान के रेतीले टीले समाप्त होते हैं वर्णन करूंगा। मैं केवल इतना ही कहूंगा कि वह छोटी नदी जो भक्कर के टापू से सात मील दूर उत्तर में राग के समीप सिन्धु से पृथक् होती है और लखपत के पास समुद्र में गिरती है उस घाटी के इस पूर्वी भाग की चौड़ाई प्रकट करती है जो कि मरुस्थल की पश्चिमी सीमा बनाता है। यदि कोई यात्री 'सीधी' अर्थात् सिन्धु की समभूमि से आगे बढ़े तो वह रेगिस्तान की सीमा को उसके उन ऊंचे ऊंचे रेतीले टीलों सहित स्पष्ट रूप से देखेगा जिनके नीचे

---

४४ सहराई 'सहरा' अर्थात 'मरुस्थल' से बना है इसलिए सहरावन अथवा सहरातन जो सहरा [मरुस्थल] और धन [=मारना] शब्दों के अपभ्रंश है। राहजनी(१६) का अर्थ रास्ते में मारना है। [रा] राहबर(१७) का अर्थ है राह [सड़क] में इस शब्द को पिंडारियों ने बिगाड़ कर 'लावर' कर दिया है। जो उनके ... सुकुमार वाचक शब्द है।

---

(१५) यह जालोर के चौहान राजा सामन्तसिंह के पुत्र कान्हड़देव के भाई मालमसिंह का बेटा था। जब वि० संवत १३६८ (१३११ ई०) में अलाउद्दीन खिलजी ने चढ़ाई कर जालोर का दुर्ग लिया उस समय मालमसिंह लड़ाई में काम आया। उसके तीन पुत्र थे बीकम हापा और धुम्मा जिनमें से हापा ने अपने मामा को मार कर सुराचन्द का इलाका छीन लिया और फिर उसने चौहटण पर्वत पर दुर्ग बनाया था।

(१६) 'राहजनी'—फारसी बटमारी (रास्ते में लूटना)

(१७) राहबर– फारसी वि—है राहनुमा (पथ प्रदर्शक)।

बाकड़ा नदी बहती है, जो कि वर्षा ऋतु की बाढ़ों के सिवाय प्रायः सूखी पड़ी रहती है। ये बालू के टीले बहुत ऊँचे ऊँचे होते हैं, और उनकी ऊँचाई को 'मीठी नदी' अथवा मीठा महराण(१८) के बाढ़ की सीमा कहा जा सकता है। 'मीठा महराण' सिन्धु नदी का सीथियन अथवा तातारी नाम है और यह केवल इसी नाम से पंचनद(१९)[४५] से लगाकर समुद्र तक पुकारी जाती है।

---

[४५] सिन्धु की सहायक नदियों का संगम।

---

(१८) 'मीठा महराण' सिन्धु नदी को कहते हैं। टॉड इसको नदी वाचक सीथियन भाषा का शब्द मानते हैं किन्तु यह ठीक नहीं है। 'महराण' सीथियन शब्द न होकर मरुभाषा का शब्द है, जो संस्कृत के 'महार्णव' (महा+अर्णव=विशाल जलसमूह) शब्द का अपभ्रंश है। समुद्र का जल खारा और सिन्धु का मीठा होने से इसको 'मीठा महराण' कहा गया है।

(१९) यहाँ पाँच नदियाँ मिलती हैं अतः पंचनद कहलाता है।

★

राजपूत कुलों का इतिहास

अध्याय–१

राजपूत राजाओं की वंशावलियां–पुराण–राजपूतों का सीथियन (१) कुलों से सम्बन्ध

मध्यवर्ती और पश्चिमी भारत की सैनिक जातियों के ऐतिहासिक विवरणों को संग्रह करने का निश्चय करने पर मेरे लिए यह आवश्यक हो गया कि मैं उन स्रोतों का ठीक ठीक पता लगाऊं जिनसे निकल कर उनकी वंश परम्परा चली आई है अथवा जिनसे निकल कर आने का उपरोक्त जातियां दावा करती हैं। इस प्रयोजन के लिए मैंने उदयपुर महाराणा के पुस्तकालय से उनके पवित्र ग्रन्थों पुराणों को प्राप्त किया और उन्हें पण्डितों की एक सभा के सम्मुख प्रस्तुत किया जिसके अध्यक्ष विद्वान यति ज्ञानचन्द्र (२) थे। इन पुस्तकों के आधार पर सूर्य तथा चन्द्र की सन्तानों से उत्पन्न बड़े बड़े राजवंशों की वंशावलियां बनाई गई और ऐतिहासिक तथा भौगोलिक तथ्य निश्चित किये गये।

---

(१) सीथियन (सीथिक) जाति के लोग मध्य एशिया में रहते थे जिनको यूनानी लेखकों ने 'सीथियन' और ईरान तथा भारत वालों ने 'शक' कहा है। ये बढ़ते-बढ़ते पश्चिमी यूरोप और दक्षिणी एशिया में फैल गये थे। बाक्ट्रिया (हिन्दुकुश पर्वत के उत्तर में) और पार्थिया (ईरान का उत्तरी भाग) के यूनानी राज्यों को इन्हीं लोगों ने नष्ट किया और यूनानियों को वहाँ से निकाल कर उनको अपने आधीन कर लिया। फिर धीरे-धीरे हिन्दुकुश पर्वत को पार कर दक्षिण की ओर बढ़ते हुए सन् ईस्वी की पहली शताब्दी में अपने राजा वेनान्स (Venons) की आधीनता में उन्होंने भारत पर चढ़ाई की और थोड़े ही समय में इसके बड़े भाग पर अपना अधिकार जमा लिया। उन्होंने अपना संवत् चलाया वह उन्हीं के नाम से 'शक संवत्' कहलाया जो अब तक प्रचलित है। उनका महाराज्य अस्त होने पर शक जाति के क्षत्रप राजाओं का राज्य ई० सन् ३८८ (वि० संवत् ४४५) के समीप तक मालवा गुजरात काठियावाड़ राजपूताना आदि पर रहा फिर उस सन् के आसपास चन्द्रगुप्त "विक्रमादित्य" ने इनका राज्य समाप्त किया।

(२) ज्ञानचन्द्र जयपुर निवासी यति अमरचन्द्र के शिष्य थे। वे एक विद्वान् पुरुष और संस्कृत के अच्छे ज्ञाता थे इन से टॉड को राजस्थान का इतिहास लिखने में बड़ी सहायता मिली। उदयपुर के महाराणा भीमसिंह जी ने इनको गांव मांडल में कई बीघा भूमि प्रदान की तभी से ये मांडल में रहने लग थे।

लगभग सभी पुराणों[1] में ऐतिहासिक एवं भौगोलिक दोनों प्रकार की बातों की थोड़ी बहुत जानकारी प्राप्त होती है किन्तु भागवत स्कन्दपुराण अग्निपुराण और भविष्यपुराण इस दृष्टि से प्रधान सहायक हैं । इन ग्रन्थों में वंश सम्बन्धी तथ्य एक दूसरे से नहीं मिलते और यह हमारे लिए खेदजनक न होकर सौभाग्य की बात है। प्रत्येक वंश के राजाओं की संख्या में भिन्नता मिलती है और नाम बदल गये हैं किन्तु प्रत्येक ग्रन्थ में हम कुछ मुख्य मुख्य बातें समान रूप से देखते हैं जिससे यह सार निकलता है कि वे भिन्न भिन्न लेखकों की रचनायें हैं जो किसी एक ही मूल स्रोत के आधार पर निर्मित की गई हैं ।

भारत वर्ष के प्राचीन ग्रन्थों और पुराणों में सृष्टि की उत्पत्ति[2] जलप्रलय की घटना के साथ मानी जाती है और यही धारणा लगभग समस्त राष्ट्रों के इतिहास में भी प्राप्त होती है । यद्यपि पुराणों में उसका वृत्तान्त पूर्वीय देशों की विशिष्ट प्रकार की कल्पना से भरा हुआ है किन्तु उससे उसका महत्त्व कम नहीं हो गया है । 'अग्निपुराण' के तत्सम्बन्धी अंश का सार यह है कि जब ब्रह्मा की आज्ञा से समुद्र ने अपनी मर्यादा का परित्याग कर सम्पूर्ण सृष्टि का विनाश किया उस समय वैवस्वतमनु[3] (नूह) (४) जो हिमालय[4] पहाड़ों के निकट रहते थे कृतमाला नदी (५) में देवताओं को जलाञ्जलि दे रहे थे । उस समय एक छोटी मछली उनके हाथों पर पड़ी । एक वाणी ने यह आज्ञा दी कि इसे सुरक्षित रखो । वह मछली बढ़ते बढ़ते विशाल आकार की बन गई । मनु अपने पुत्रों उनकी पत्नियों और ऋषियों के साथ हर जीवधारी वस्तु के बीज को लेकर एक नौका में प्रविष्ट हो गये जो उस मच्छी के सिर के सींग से बन्धी हुई थी और इस प्रकार उनकी रक्षा हो गई ।

---

१ संस्कृत विद्या के प्रथम विवेचक का कथन है —"प्रत्येक पुराण में पांच विषय (३) होते हैं । ब्रह्माण्ड की रचना, उसका विकास और विश्व का नव निर्माण; देवताओं और वीरों की वंशावलियां; काल्पनिक काल-विभाजन और वीर-गाथा जिसमें अवतारी पुरुषों और वीरों के शौर्य का वृत्तान्त दिया गया है । प्रत्येक पुराण में सृष्टि की उत्पत्ति तथा काल्पनिक वीर-गाथा का वृत्तांत मिलता है इस दृष्टि से उसकी तुलना प्राचीन यूनान की दन्त-कथाएं लिखने वाली रचनाओं से बहुत उपयुक्त ठहरती है । —एच टी कोलब्रूक के संस्कृत और प्राकृत भाषा सम्बन्धी निबन्ध से । एशियाटिक रिसर्चेज जिल्द ७ पृ २ २ ।

२ 'जिनेसिस' शब्द के संस्करण में 'जन्म' और ईस या ईश्वर दो टुकड़े हो सकते हैं ।

३ सूर्य का पुत्र ।

४ हिमालयाश्रित काकेसस पर्वत । 'एसेन्स आफ दि पुराणस्' नामक ग्रंथ से उद्धरण देकर सर विलियम जोन्स लिखते हैं कि यह घटना दक्षिण के द्रविड़ देश में हुई थी ।

---

(३) सर्गश्च प्रतिसर्गश्च वंशो मन्वन्तराणि च । वंशानुचरितं चैव पुराणं पञ्चलक्षणम् ॥

(म०प०पु०कृ०अ स अ० १२)

अर्थात—सर्ग=सृष्टि प्रतिसर्ग=सृष्टि का विस्तार लय तथा पुनः सृष्टि वंश (विशिष्ट राजवंशादि का पुरुष-क्रम) मन्वन्तर (कालमान) और वंशानुचरित=वंश के अन्तर्गत विशेष व्यक्तियों के कीर्ति कलाप का वर्णन । ये पुराण के पाँच लक्षण कहे गये हैं ।

(४) ईसाई धर्म में महाप्रलय से बचा हुआ पुरुष अर्थात वर्तमान मनुष्य-जाति का आदि पुरुष 'नूह' माना गया है ।

(५) कृतमाला नदी का हिमालय से नहीं किन्तु मलयाचल पर्वत से निकलना लिखा है । "मलयात्कृतमालाद्या" ··· ··· (अग्नि पुराण अध्याय ११८, श्लोक ८) ।

इसके पश्चात विशाल उत्तरी पर्वत–श्रृंखला का वर्णन है जिसके निकट कहीं मनुष्य जाति के महान मूल पुरुष का निवास स्थान था। भविष्य पुराण में कहा गया है कि वैवस्वत (सूर्य-पुत्र) मनु सुमेरु पर्वत पर शासन करते थे। उनके वंश में ककुत्स्थ राजा उत्पन्न हुए जिन्होंने अयोध्या[४] में अपनी राज्यसत्ता स्थापित की और उनके वंशज धीरे धीरे सम्पूर्ण देश में भर गये और पृथ्वी पर फैल गये।

मुझे यह ज्ञात है कि 'सुमेरु' से हिन्दुओं का क्या तात्पर्य रहा है। उन्होंने इसके द्वारा पृथ्वी के उत्तरी ध्रुव का नामकरण किया था। किन्तु उसी नाम का उनके यहाँ एक अत्यन्त प्रसिद्ध पर्वत मेरु था जिसके 'सु' उपसर्ग लगाने का अर्थ हुआ 'उत्तम पवित्र' अर्थात् पवित्र पर्वत।

अग्नि पुराण के भूगोल सम्बन्धी भाग में इस शब्द का प्रयोग एक अत्यन्त बड़ी भौगोलिक सीमा[५] के लिए किया गया है। उक्त पर्वतमालाओं से निकलने वाली नदियों के प्राचीन नाम आज तक चले आते हैं जिनका उपरोक्त पुराण में सुमेरु पर्वत से सम्बन्ध बताया गया है। स्पष्ट बातों के साथ लगाये गये रूपकों का लाक्षणिक अर्थ ग्रहण करके हम अपने विषय को गूढ़ नहीं बनायेंगे। यद्यपि वे विश्व को सात द्वीपों में विभाजन करते हैं और उनमें दूध(६) दही(७) व मदिरा (८) के समुद्र सम्मिलित करते हैं तथा पश्चाद्वर्ती अज्ञानी लेखकों ने उनमें बहुत सा क्षेपक मिला दिया है फिर भी हमें उनमें छिपी हुई ठोस बातों को अस्वीकार नहीं करना चाहिए।

---

४. अयोध्या को अब अवध कहते हैं जो मुगल बादशाहों के राज्य के २२ सूबों में से एक की राजधानी है। वह कुछ पीढ़ियों से नाम मात्र के वजीर के आधीन रही है जिसने हाल ही में बादशाह का खिताब धारण किया है।

५ सुमेरु के दक्षिण में हिमवान हेमकूट और निषध पर्वत हैं उत्तर में नील श्वेत और शृंगी(९) देश हैं। हिमालय और समुद्र के मध्य भारतवर्ष है जो कुकर्म (१०) भूमि कहलाता है (अर्थात् कुकर्मों का देश इसके विपरीत 'आर्यावर्त' अर्थात् सुकर्मों का देश) जिसमें सात बड़ी पर्वत श्रेणियां हैं महेन्द्राचल मलयाचल सूर्याचल(११) शुक्तिमान ऋष्याचल(११) विन्ध्याचल और पारियात्र—अग्निपुराण

---

(६) (अ) श्री नन्दलाल दे ने सप्रमाण यह सिद्ध किया है कि कैस्पियन' (Caspian) सागर ही पुराना 'क्षीर सागर है। मार्को पोलो के ग्रन्थ के आधार पर उन्होंने बताया है कि आज से ७०० वर्ष पूर्व कैस्पियन सागर को ही 'शीर सागर कहते थे। 'शीर' शब्द फारसी का है और क्षीर का अपभ्रंश है।
(आ) क्षीर सागर=कैस्पियन सागर (तपोभूमि परिशिष्ट का पृ सं० ३७)

(७) यूनानी ग्रंथों में 'दाही' (Dahee) नामकी जाति का उल्लेख है। जहाँ यह जाति रहती थी वहाँ की नदी का नाम 'दाहि' हो गया था। यह नाम 'दधि' का अपभ्रंश है। उस नदी से बनी झील का नाम दधिसागर था।

(८) वर्तमान आक्सस अथवा 'जेहूं' नदी संस्कृत में वक्षु अथवा 'चक्षु' कहाती थी। इसके एक भाग का नाम 'इक्षु' भी था। इससे बनी झील का नाम 'इक्षुसागर' था।

(९) नील श्वेत और शृंगी—ये देश नहीं अपितु पर्वत हैं—
हिमवान् हेमकूटश्च निषधश्चास्य दक्षिणे।
नीलः श्वेतश्च शृंगी च उत्तरे वर्षपर्वताः॥ —(अग्निपुराण अध्याय १ ८, श्लोक ४)

(१०) टॉड महोदय ने भरतखण्ड को 'कुकर्मभूमि' लिख दिया है। पुराणों में उक्त देश को 'कर्म भूमि' कहा है जिसका अर्थ सुकर्म अथवा सत्कर्म करने योग्य भूमि है।
'वर्षं तद् भारतं नाम नवसाहस्र विस्तृतम्। कर्मभूमिरियं स्वर्गा। (अ पु अध्याय ११८, श्लोक १ २)

(११) पुराणों में 'सूर्याचल' के स्थान पर 'सह्याद्रि' और 'ऋष्याचल' के स्थान पर 'ऋक्षवान्' नाम मिलते हैं। (मत्स्य पुराण अध्याय ११)

ब्राह्मण लोगों का कथन है कि इस पवित्र पर्वत सुमेरु में महादेव[7] आदीश्वर[8] अथवा बागेश[9] का निवासस्थान है। जैनियों का कथन है कि यहाँ आदिनाथ[10] प्रथम जैनेश्वर (१२) का निवास स्थान है। वे कहते हैं कि यहाँ पर उन्होंने मनुष्य जाति को कृषि और सभ्यजीवन की कलाओं का ज्ञान (१३) दिया। यूनानी लोगों की मान्यता है कि उपरोक्त पर्वत में बकस (१४) देवता का निवास स्थान है और इसीलिए उन लोगों में यह कथा प्रचलित है कि इस देवता की उत्पत्ति जुपिटर (१५) की जंघा से हुई है। अतएव इस सार्वभौम देवता के मेरु (पर्वत) को भ्रम से मरोस (जंघा) समझ लिया गया है, इसी भूमि में सिकन्दर के अनुगामियों का सेटरनालिया (१६) नामक त्यौहार पड़ा। जिसमें वे अपनी देशी मदिरायें अत्याधिक मात्रा में पीते थे और अपने सिरों पर लता (बेल)[11] बांधते थे जो पूरब और पश्चिम दोनों ओर के बागेश देवताओं के लिए पवित्र है और जिनके भक्त समानरूप से अत्याधिक मात्रा में मदिरा पान करते हैं।

ये परम्परागत कथायें मनुष्य जाति के प्रारम्भिक इतिहास में एक ही स्थान और एक ही व्यक्ति की ओर संकेत करती ज्ञात होती हैं जब कि हिन्दुओं और यूनानी लोगों का दृष्टिकोण अन्त में एक ही केन्द्र अर्थात् निवास स्थान

---

७ 'बृहद्' शब्दार्थ के अनुसार 'बड़ा देवता'।

८ प्रथम देवता।

९ बागेश(१७) 'बाघ के स्वामी'। ये चीते का चर्म धारण करते हैं और उसको धरती पर बिछा कर बैठते हैं। यूनानी लोगों के 'बेकस' देवता भी ऐसा ही करते थे। दोनों ही का चिह्न 'लिंग' है। बागेश के मेवाड़ में कई मन्दिर हैं।

१० प्रथम देवता।

११ ऊपर चढ़ने वाली लता के लिए एक सामान्य शब्द है, जो भारतीय बकस (१७) के लिए पवित्र मानी जाती है। उसके पुजारी उसके आदर्श का अनुसरण कर नशीले पेयों के अनुरक्त होते हैं। अमरबेल एक आदर्श बेल मानी जाती है।

---

(१२) तीर्थङ्कर।

(१३) सूर्यवंशी इक्ष्वाकु राजा के मरुदेवी नाम की रानी थी इनके पुत्र ऋषभदेव थे जो जैनियों के प्रथम तीर्थङ्कर 'आदिनाथ' थे। इन्होंने मनुष्यों को तीन कर्म सिखाये (१) असिकर्म अर्थात् युद्ध और राजविद्या (२) मसीकर्म अथवा शास्त्रविद्या और (३) कृषीकर्म (कृषि कर्म) अथवा खेती-बाड़ी।

[रासमाला (हिन्दी) प्रथम भाग पूर्वार्द्ध के आधार पर]

(१४) यूनानी और रोमन लोगों का पौराणिक देवता जो जुपिटर का पुत्र और मद्य का अधिष्ठाता माना जाता है।

(१५) यूनानी इसे सैटन (शनि) का पुत्र स्वर्ग का राजा तथा मनुष्य और देवताओं का पिता मानते हैं।

(१६) 'सैटरनालिया' यूनानी तथा रोमन लोगों का प्रसिद्ध त्योहार है, जो जुपिटर के पिता सैटन (शनि) के सम्मानार्थ दिसम्बर मास में मनाया जाता था।

(१७) 'बागेश' शब्द का प्रयोग 'महादेव' के लिये न तो संस्कृत में और न अन्यत्र ही दृष्टिगोचर होता है। महादेव को बल (बृक्ष) के पत्ते (बिल्वपत्र) प्रिय हैं और बकस को सर्मा के पत्ते तथा आइवी नामक लता प्रिय थी। पर महादेव ने बस बृक्ष के बिल्वपत्रों को बल अर्थात् लता के पत्ते समझ लिए हैं।

पर आ मिलता है क्योंकि इसमें कोई सन्देह नहीं है कि आदिनाथ आदीश्वर, ओसिरिस, (१८) बाघेश, बेकस मनु मीनस (१६) आदि सभी मनुष्य जाति के मूल पुरुष 'नूह' के ही नाम हैं (२०)

हिन्दुओं ने मेरु पर्वत के स्थान का बहुत साधारण संकेत किया है किन्तु उन्होंने उसका उस भूभाग में होना बताया है जिसकी बाहरी सीमा पर बामियां, काबुल और गजनी नगर होंगे। इनमें से प्रथम नगर की कन्दराओं और विशाल मूर्तियों १२ के रूप में बुद्ध धर्म के अवशेषों का होना पाया जाता है। पेरापामिसान इस्कन्दरिया बामियाँ (२१) व

१२ जोहाक बामियां में एक अत्यंत प्राचीन दुर्ग अभी तक अच्छी स्थिति में मौजूद है, जबकि बामियाँ (२१) का दुर्ग विनष्टावस्था में पड़ा है।

"पर्वतों के मध्य १२ गुफायें चट्टानों में कटी हुई हैं और खुदाई व पलस्तर की कारीगरी का बहुत सुन्दर काम उनमें किया हुआ है। ये समिज कहलाती हैं जहाँ देसी लोग शीतकाल में जाकर निवास करते थे। यहाँ पर तीन अद्भुत मूर्तियां हैं, एक पुरुष की जो ८० एल [१एल = ३।।। फीट] ऊंची है। दूसरी एक स्त्री की ५० एल और तीसरी एक बालक की १५ एल ऊंची है इनमें से एक समिज में एक कब्र है, जहाँ पर सन्दूक में एक लाश रखी हुई है, जिसके सम्बन्ध में बूढ़े से बूढ़ा व्यक्ति भी कुछ नहीं जानता। उसे यहाँ बड़ी श्रद्धा की दृष्टि से देखा जाता है। प्राचीन लोगों के पास कुछ ऐसा मसाला था जिसके लगाने से मृतशरीर दीर्घकाल पर्यन्त नहीं सड़ता था।"   —आइने अकबरी जिल्द २ पृ १६६

(१८) मिस्र का एक प्राचीन देवता। जिसका पूजन बैल के रूप में होता था।

(१६) मिस्र की जनश्रुतियों के अनुसार मीनस मिस्र का प्रथम राजा था जो ईसा से २०० वर्ष पूर्व हुआ।

(२०) टॉड ने सब में समानता दिखाने हेतु कुछ कल्पनाएं कर ली हैं अन्यथा निम्न बातें सर्वथा भिन्न हैं:—

(क) स्रष्टा —सृष्टि के आदि पुरुष को माना गया है। पुराणों में ब्रह्मा' को भी स्रष्टा कहा गया है।

(ख) 'बागेश' से शिवजी के एक नये नाम की कल्पना की गई है ताकि 'बकस' का मिलान किया जा सके जैसा कि उपरोक्त टिप्पणी नं १० पृष्ठ ३६ से स्पष्ट है।

(ग) 'मनु' कई हुए हैं। प्रत्येक चतुर्युग के पश्चात दूसरा 'मनु' होता है ऐसा पुराणों में लिखा मिलता है। यह वैवस्वत मनु का युग कहलाता है जैसा कि पहिले पृ० ४ पर स्वयं टॉड ने लिखा है।

(घ) भारतीय और यूनानी दोनों ही परम्परायें देवताओं और राजाओं को भिन्न भिन्न मानती हैं परन्तु यहाँ टॉड ने देवताओं को (जैसे आदिनाथ आदीश्वर ओसिरिस आदि) तथा राजाओं को (जैसे मनु मीनस आदि) को एक कर दिया है। अतः टॉड का उपयुक्त लेख उचित नहीं जंचता।

(२१) प्रसिद्ध चीनी यात्री ह्वेनसांग भारत में आते समय बामियां (अफगानिस्तान) में ठहरा था। यह लिखता है कि- वहाँ के लोग बौद्ध धर्मावलम्बी हैं और यहाँ बौद्धों के १० मठ हैं जिनमें हीनयान के १० शाखोत्तरवादी धर्मगुरु रहते हैं। राजधानी से इशान कोण में एक पर्वत के उत्तर में १४० से १५० फीट तक ऊंची बुद्ध की पाषाण प्रतिमा है। उसके पूर्व में शाक्य बुद्ध की एक धातु मूर्ति १०० फीट ऊंची है। राजधानी से २ मील दूर एक मठ में बुद्ध की सोती हुई निर्वाण (मोक्ष) की स्थिति की मूर्ति है। ये मूर्तियां अब तक विद्यमान हैं।"

निकट है किन्तु यूनानी लेखकों ने सिकन्दर के समय में मेरु और नीसा[१३] को अधिक पूर्व की ओर स्थापित किया है और विचारवान इतिहासकार एल्फिन्स्टन ने उसे कोफ़स और सिन्धु नदी के मध्य बताया है। कई प्रामाणिक ग्रन्थ उसे पेशावर और जलालाबाद के मध्य स्थापित करते हैं और उसे मेर कोह[१४] अथवा 'मार कोह' बताते हैं जो २ फीट ऊँची एक नग्न चट्टान है। उसमें पश्चिम की ओर कन्दरायें हैं जिनको उनके दीन और मलीन स्वरूप के कारण सम्राट हुमायूँ ने 'बेदौलत' का नाम दिया था। [१५] हुमायूँ ने यह 'दस्ते-बे-दौलत' अथवा 'अभागा देश' नाम उपरोक्त शहरों के मध्य

१३ 'निषध' (२२) पुराणों में एक पर्वत का नाम है। यदि षष्ठी विभक्ति के आधार पर देखें (जैसा कि अंतिम अक्षर प्रकट करता है) तो यह 'निसा' नगर के नाम पर बना हुआ स्थानीय नाम होगा।

१४ 'मेर' संस्कृत और 'कोह' फारसी शब्द दोनों का अर्थ 'पर्वत' है।

१५. एशियाटिक रिसर्चेज्' जिल्द ६ पृ. ४९७ पर विल्फर्ड ने सर वाल्टर रैले के 'विश्व का इतिहास' नामक अत्यन्त प्राचीन विद्या-भण्डार (जैसा कि हिन्दू लोग कहेंगे) से बहुत कुछ उद्धृत किया है। ऐसा प्रतीत होता है कि जो कुछ उस महापुरुष ने अपनी अद्वितीय प्रतिभा से एकत्रित किया और लिखा उसके साथ विल्फर्ड ने स्वयं के एकत्रित किये हुए संग्रह को मिलाकर अपनी कल्पना शक्ति की सहायता से उसको अधिक रोचक बना दिया। परन्तु जब उन्होंने पृथ्वी पर के स्वर्ग [ईसाइयों के अदन(२३)] का प्राकृतिक वर्णन लिखा तो मुझे आश्चर्य होता है कि उस समय उन्होंने महाप्रलय के पूर्व तथा उसके पश्चात की मनुष्यजाति के उत्पत्ति स्थलों को अलग अलग नहीं बताया। सर वाल्टर रैले का एक वाक्य है जिससे उनकी कल्पना को सहायता मिल सकती थी कि अदन ऊपरी एशिया में जेहून और दूसरी बड़ी नदियों के सामान्य स्रोतों के मध्य स्थित था जहाँ बहुत से बड़ के वृक्ष हैं जो आदिनाथ अथवा महादेव के लिये पवित्र हैं।

'पाप-पुण्य का ज्ञान कराने वाले वृक्ष (२४) के विषय में कुछ लोगों ने और अनेक कल्पनाएं की हैं विशेषकर गोरोपियस बेकानस ने जो स्वयं को इस प्रकार के एक वृक्ष का पता लगाने वाला बताता है। इस वृक्ष का प्राचीन व्यक्ति अनुमान भी न कर सके इस बात पर गोरोपियस बड़ा आश्चर्य प्रकट करता है।

"दोनों [आदम और ईव (२५)] साथ साथ सघन वन में गये वहाँ उन्होंने शीघ्र ही अंजीर [जाति] का वृक्ष [बड़] चुना यह वृक्ष नहीं जो अपने फल के लिये प्रसिद्ध किन्तु वह जिससे आज भी मलाबार अथवा दक्खिन में भारतवासी परिचित हैं वह अपनी शाखायें इतनी लम्बी और चौड़ी बढ़ाकर फैलाता है कि पृथ्वी में नीचे लटकी हुई शाखा-जटायें जड़ का रूप ग्रहण कर लेती हैं। मां-वृक्ष के चारों ओर, संतति उत्पन्न हो जाती है जो एक स्तम्भ रूप बन बहुत ऊँचाई तक पहुँच जाती हैं। उनके मध्य में कुञ्ज गलियां बन जाती हैं वहाँ अक्सर भारतीय चरवाहे धूप से बचने के लिए उसकी शीतल छाया में शरण लेते हैं और अपने पशुओं को चराते हैं। —"उसके बड़े बड़े पत्तों को उन्होंने एकत्रित किया जो अमेज़ोन(२६) की ढाल के बराबर चौड़े थे।

—पैरेडाइज़ लास्ट खण्ड ९ ॐ

(२२) निषध पर्वत का नीसा नगर से कोई सम्बन्ध नहीं है और न यह शब्द षष्ठी विभक्ति में है।
(२३) ईसाइयों के मतानुसार 'अदन' उस बाग का नाम है जिसमें आदम और ईव रहे थे।
(२४) अदन के बाग का वह वृक्ष जिसका फल खाने के लिये ईश्वर ने आदम और ईव को मनाई की थी।
(२५) ईसाइयों के मतानुसार ईश्वर का उत्पन्न किया मनुष्य जाति का पहला जोड़ा।
(२६) प्राचीन यूनानियों में एक कहानी प्रचलित थी जिसके अनुसार एशिया माइनर के ईशान कोण में स्वतन्त्र स्त्रियों का एक राज्य था जिन्हें अमेज़ोन कहते थे। उनकी ढालें छोटी-छोटी होती थीं इसी से उनकी बड़ के पत्तों से समानता की गई है।

क भू-भाग को दिया था।

२५. ⊛ सर वाल्टर रैले मनुष्य जाति के उत्पत्ति-स्थानों के विषय में हिन्दू-कल्पना की भली भांति पुष्टि करते हैं उनका कहना है कि 'भारतवर्ष जलप्रलय के पश्चात प्रथम देश था जहाँ मनुष्य जाति ने बस्ती बसाई और वृक्ष-लतादि उत्पन्न हुए।" (पृ ६६)। उनका प्रथम तर्क यह है कि यह वह स्थान था जहाँ अंगूर की बेल और जैतून के वृक्ष उत्पन्न होते थे (जो अभी भी जई के साथ काबुल वासियों के मध्य उत्पन्न होते हैं) और यह कि अरारात पर्वत आरमेनिया में नहीं हो सकता क्योंकि गोर्जियन पर्वत जिस पर (नूह की) नौका ठहरी थी, ७५ रेखांश में और शिनार की घाटी ७६ से ८ रेखांश में स्थित है जिसका अर्थ यह होगा कि प्राचीन काल में हुए प्रवासियों के स्थानांतर की दिशा ही विपरीत हो जायेगी। 'ज्यों ज्यों उन्होंने 'पूर्व से" यात्रा की उन्होंने शिनार की भूमि में एक मैदान देखा और वे वहाँ रहने लगे' (जिनेसिस अध्याय २ आयात २)। वह यह भी कहते हैं कि मूसा ने जिसे अरारात नाम दिया था वह एक पर्वत नहीं है, बल्कि विशाल काकेशियस पर्वत श्रेणी के लिए एक सामान्य नाम है इसलिए हमें इस पर्वत अरारात को उठा देना चाहिये अथवा आर्मेनिया से खोद कर बाहर ले जाना चाहिये अथवा शिनार के पूर्व में किसी परम दश में ढूंढना चाहिये।" इस तरह वह उसे इण्डोसीथियन भाग में १४ रेखांश और ३५ से ३७ अक्षांश के मध्य स्थापित करते हैं "जहाँ कि पर्वत अत्यन्त ऊँचे हैं"। अन्त में वह लिखते हैं कि 'अत्यन्त उपजाऊ और गर्मी वाले भाग पूरब में ही नूह आदि-पुरुष रहता था जहाँ कि उसने अंगूर की बेल बोई जमीन जोती और जीवन-यापन किया। एरियस मोन्टेनस नामक विद्वान का कथन है कि पशु पालन के अध्ययन ने नूह को प्रसन्न कर दिया पशुपालन के ज्ञान एवं व्यवस्था में नूह सब से बढ़कर निकला और अपने ही शब्दों में इस *आदमठ (१)* अर्थात् भूमि के प्रयोग में प्रवीण मनुष्य कहलाया।" उपर्युक्त नाम चरित्र व स्थान जनियों द्वारा अपने प्रथम जैनेश्वर आदिनाथ के लिए दिये गए वृत्तान्त के बिल्कुल समान ठहरते हैं जिनने कि उनको कृषि की शिक्षा दी यहाँ तक कि अनाज गाहने के लिए बैलों के बन्धन बांधकर उनका उपयोग करना सिखाया।

यदि सर वाल्टर को इस बात का पता होता कि हिन्दू पुस्तकें अपने देश को *आर्यावर्त (२)* पुकारती हैं और विशाल इमास उसकी उत्तरी सीमा है तो वह निस्संदेह ही उसे अपना 'अरारात' मान लेते।

---

(१) संस्कृत में ईश-स्वामी आद (आदि)-प्रथम और माठ या मठ-पृथ्वी या मिट्टी है। यहाँ संस्कृत और रूमानी भाषा का अर्थ एक सा है, अर्थात 'पृथ्वी का पहला स्वामी'। इस दूर के राजपूत प्रदेशों में जहाँ प्राचीन रीति नीति और भाषा अब तक चली आती है मनुष्य के लिए जो प्रभावकारी शब्द (माटी) प्रचलित है उसका असली अर्थ पृथ्वी है। कोई सरदार अपने लोगों और सीमा पर के लोगों के मध्य की लड़ाई का वर्णन करता है जिसमें कि कोई मारा गया हो तो कहता है कि 'मेरा माटी मारा' (२७) अर्थात मेरी पृथ्वी मारी गई। यह एक ऐसा वाक्य है कि जिस पर किसी प्रकार की टीका की आवश्यकता नहीं और जिससे यह भी प्रकट होता है कि वह खून के बदले खून चाहता है।

(२) आर्यावर्त अथवा सद्गुणों और सदाशाओं का देश स्वाभाविक दृष्टि से हिमालय के दक्षिण में भारत के समतल मैदानों में पता हुआ नहीं हो सकता क्योंकि उस भाग को पुराणों में उसके विपरीत 'कुकर्म देश' (२८) के नाम से पुकारा गया है।

---

(२७) (क) संस्कृत में पृथ्वी या मिट्टी के लिए 'मठ' अथवा 'माट' शब्द नहीं है अपितु 'मही' एवं 'मृत्तिका' है। राजस्थानी भाषा में 'माटी' और 'मोटी' दो भिन्न शब्द हैं, जिनमें से पहले का अर्थ 'मिट्टी' और दूसरे का अर्थ 'बहादुर आदमी' अथवा 'पति' है। इस भांति 'मेरा मोंटी मारा' का अर्थ 'मेरी पृथ्वी मारी गई' नहीं होगा अपितु 'मेरा वीर पुरुष मारा गया' होगा। टॉड ने माटी और मोंटी में भेद नहीं किया है।

(ख) मालवी भाषा में भी 'मोंटी मारा' का अर्थ पृथ्वी मारी गई है, द्रष्टव्य—मालवी-एक भाषा-शास्त्रीय अध्ययन।

(२८) देखें पृ ३४ की हमारी टिप्पणी सं० १०।

सुमेरु के बारे में कही गई उपरोक्त बातों का सार यही प्रकट करता है कि हिन्दू स्वयं अपनी जाति का उद्गम स्थान भारत में सिन्ध के भाग को नहीं मानते बल्कि पश्चिम में काकेशस[१६] के पर्वतों में मानते हैं जहाँ कि सूर्य से उत्पन्न वैवस्वत की संतानों ने पूरब में सिन्ध और गंगा की ओर देशान्तर किया और उन्होंने कोशल में अपनी प्रथम बस्ती अर्थात् राजधानी अयोध्या अथवा अवध बसाई।

सर्व जातियों ने उन स्थानों को निश्चित करने के प्रयत्न किये हैं जहाँ से कि वे सर्व प्रथम निकली थी और इस दृष्टि से मध्य एशिया की इस उच्च भूमि के समान मनोरंजक स्थान बहुत कम हैं, जहाँ से आमू आक्सस अथवा जहून आदि अन्य नदियाँ निकली हैं और जिनमें सूर्य और चन्द्र की वंशज जातियाँ उस पवित्र पर्वत[१७] का होना (२६) *बताती हैं जहाँ उनका महान आदि पुरुष रहता था और जहाँ से वे पूर्व की ओर चले आते थे।*

राजपूत जातियों में जो सीथियन आदतें और युद्धपसन्द मिथ्याविश्वास अब तक मान्य होते हैं, वे उनमें सिन्ध के गर्म मैदानों में नहीं उत्पन्न हो सकते थे। सिन्ध के मैदान की गर्मी इतनी अधिक है कि उसमें रहने वालों से यह आशा नहीं की जा सकती कि वे उस धर्म को मानने वाले हों जिसमें उत्कट भक्ति के साथ सूर्य को आवाहन किया जाता है कि वह दक्षिणी मार्ग छोड़ कर उत्तरी गोलार्ध में आकर संजीवन दे। यह एक अधिक ठंडी जलवायु वाले भाग

१६ हिंदू अथवा हिंदुकुश या कोह स्थानीय नामकरण है जिसका अर्थ है 'चन्द्रमा का पर्वत'।

१७. मेरु का स्पष्ट अर्थ पर्वत है जैसे कि जैसलमेर (जो पश्चिमी मरुस्थल में भाटी जाति के राजपूतों की राजधानी है) शब्द का अर्थ 'जैसल का पर्वत'। मेरवाड़ा अर्थात् पर्वतीय प्रदेश व उसके निवासी मेर(१०) अर्थात् पर्वत निवासी हैं। इसी भांति रामायण नामक महाकाव्य में (काण्ड १ पृष्ठ २१६) मेरा(११) पर्वतीय अप्सरा का नाम है जो मेरु की पुत्री व हिमवत् की स्त्री थी जिससे दो कन्यायें उत्पन्न हुई प्रथम देवी गंगा नदी दूसरी पर्वतीय अप्सरा पार्वती, जिसको महाभारत में शैल की पुत्री शैला भी लिखा है। शैल (शैल) हिमवत् का दूसरा नाम है इसलिये पर्वत से निकलने वाली नदियों को संस्कृत में शैलात्मजा(शैलेयक)भी कहते हैं। शैला के गुण फ्रीगिया (एशिया माइनर का एक प्रदेश) के लोगों की साइबेली (जुपिटर की माँ) से मिलते हैं, यह भी इसी नाम के पर्वत (साइबाल?) की पुत्री थी। शैला सिंह पर सवार होती है और साइबेली के रथ में सिंह जुड़ता है। इसी भांति यूनानियों ने 'पर्वत पामीर' या 'पेरोपोमिसेस' लिखा है। यह नाम उन्होंने बामियां के पश्चिम पर्वत 'हिंदूकोह' (हिंदूकुश) का रक्खा था। परन्तु 'पर्वतपत पामीर' अर्थात् 'पर्वतों का राजा पामीर' का चंद कवि ने उस देश के पश्चिम पूरब भाग में होना लिखा है जिसकी तलहटी में दिल्ली के राजा पृथ्वीराज का बड़ा सामंत हमीर रहता था। यदि यह 'पेरो-पेमिसो' होता (जैसा कि कई ग्रंथकार लिखते हैं) तो यह उस स्थान के साथ जहाँ इसका नाम पड़ा है अधिक मेल खाता क्योंकि नीसा और मेरु के निकट होने से उसका पर्यायान्तर पर्वत या पहाड़ होता और पेरोपेमिसास यूनानियों का 'निषध पर्वत' व 'नीसा का पर्वत' माना जाता।

(२६) सूर्य और चन्द्रवंशी राजपूत सुमेरु के एशिया के मध्य भाग में होने का दावा नहीं करते और न किसी प्राचीन पुस्तक में ऐसा लिखा है। काबुल नदी के तट पर स्थित नीसा नगर के पास 'मेर कोह' पर्वत को सुमेरु मानना भी असम्भव लगता है क्योंकि सुमेरु अत्यन्त ऊँचा था और 'मेर कोह' केवल दो हजार फीट ऊँचा है।

(१०) मेरवाड़ा का भाग मेर लोगों का देश है। जातिवाचक 'मेर' शब्द मेरु (पर्वत) से नहीं निकला किन्तु मेहर शब्द का अपभ्रंश है। मेर सरदार ठेपक के ताम्रपत्र में उसकी जाति का नाम मेहर ही लिखा है।

(११) मेरु की पुत्री का नाम 'मेरा' नहीं किन्तु मेना था। (रामायण काण्ड १ अध्याय ३४ श्लोक १४)

दूसरा अध्याय

आगे की वंशावलियां पुराणों का कथा-साहित्य राजकीय एवं धर्माचार सम्बन्धी कार्यों का सम्मिश्रण यूनानी इतिहासकारों द्वारा पुष्ट पुराणों की कथाएं

अब हम सूर्य व चन्द्र वंशों की वंशावलियां बताने वाले 'भागवत' और 'अग्नि' पुराणों के ऐतिहासिक वृत्तान्तों का अवलोकन करेंगे। इनमें से प्रथम पुराण गणना के अनुसार वंशावलियों की शृङ्खला को विक्रमादित्य (५५ ई०)(१) के पश्चात् ८ शताब्दियों आगे तक प्रकट करता है। इसका अर्थ यह हुआ कि इसी समय के आस-पास इन पुस्तकों का पुनः निर्माण किया गया अथवा उनकी टीका की गई होगी। इनका मिथ्या रचना होना नहीं माना जा सकता।

यद्यपि सर विलियम जोन्स श्री बेन्टले और कर्नल विल्फोर्ड द्वारा एशियाटिक रिसर्चेज़ के ग्रन्थों में इन वंशावलियों के कई भाग प्रकाशित किये गये हैं इस पर भी वह व्यक्ति दूसरों द्वारा प्राप्त की गई जानकारी से संतुष्ट नहीं हो सकता जो स्वयं किसी विधि से प्रधान स्रोत का पता लगा सके।

यदि यह मान लिया जाय कि भारत के प्राचीन कुलों की वंशावलियां असत्य हैं तो यह मिथ्यापूर्ण रचना भी अत्यन्त प्राचीन काल में ही की गई है और इस विषय में उनके सिवाय और कोई कुछ भी नहीं बता सकता। राष्ट्रों के सबसे प्रारम्भिक इतिहास की पूर्ण जानकारी की दृष्टि से दूसरी महत्त्वपूर्ण बात यह जानना है कि ये राष्ट्र भिन्न-भिन्न नामों के लिए प्रसिद्ध हैं।

निस्सन्देह ही मूल पुराणों में अत्यन्त मूल्यवान् ऐतिहासिक सामग्री विद्यमान थी। किन्तु अब अज्ञानी भाष्यकारों और क्षेपक मिलाने वालों के दूषित मिश्रण से सही तथ्यों के मूल विषय को अलग करना कठिन बात है। मैंने तो केवल उनके ऊपरी ढंग को ही देखा है किन्तु यदि कोई योग्य व्यक्ति अधिक गहराई से खोज करे तो वह अश्लता और रूपक के आवरण के नीचे छिपे कई असम्बद्ध तथ्यों और महत्त्वपूर्ण विषयों का ज्ञान प्राप्त कर सकता है।

हिन्दुओं ने उनकी बौद्धिक शक्ति पनपने के साथ सत्य के सौन्दर्य को प्रकट करने का गुण भी खो दिया और उन्होंने अपनी साहित्यिक रचनाओं और भवन-निर्माण में अद्भुत का निरूपण प्रारम्भ कर दिया। जहाँ तक उनकी बौद्धिक उच्चता के दर्शन करने का प्रश्न है वह उनकी शिल्प-कला के अवशेषों में प्राप्त होती है जिन में कि अब भी उनकी समुचित अनुरूपता और सुन्दर कल्पनिक रचना-विधि दृष्टिगत होती है। मध्य यूरोप में भी यदि पता किये जावें और

(१) भारतवर्ष के इतिहास में दो विक्रमादित्य आते हैं। प्रथम विक्रम संवत् का प्रवर्तक। इसका काल ईसा से ५६ वर्ष पूर्व का माना जाता है। दूसरा चन्द्रगुप्त (द्वितीय) जिसकी उपाधि भी विक्रमादित्य ही थी। इसका राज्य काल ३८ ई० से ४१२ ई० तक का है। अत ५५ ई० किसी विक्रमादित्य का समय नहीं है।

लक्षित होने का भय नहीं होता तो इतिहास के तथ्यों को मनमाने रूप से तोड़ मरोड़ कर विकृत कर दिया जाता। जब कि प्राचीन एशिया की नैतिकता का ह्रास हो रहा था पूरब में कोई भी ऐसा समालोचक नहीं था जो अद्भुत के निरूपण की भर्त्सना कर सकता और न ऐसी जनता थी जो सत्य के सौंदर्य की प्रशंसा करती। ऐसे समय में प्रत्येक धार्मिक व्याख्याकार निर्मुक्त कल्पना में डूब सकता था और अद्भुत के मिश्रण के अनुपात में अपने प्रशंसकों की गिनती कर सकता था। दीर्घकाल से कृत्रिमता का उपयोग करनेवाले हिन्दू लोगों ने सरल और सच्चे ऐतिहासिक तथ्यों में रुचि लेना छोड़ दिया है।

यदि ईसा से तीसरी शताब्दी पूर्व जो तुलनात्मक दृष्टि से अधिक आधुनिक युग होता है बबीलोनिया(२) के इतिहासकार बरोसस(३) ने अपने कथा-साहित्य की रचना करके उस राजवंश को अत्यन्त अविश्वसनीय प्राचीनता प्रदान की तो भी उसके पूर्वगामी कई इतिहासकारों की रचनाओं द्वारा ही उसकी कल्पना असत्य प्रमाणित हो जाती है। किन्तु हम भारत के कथा लेखकों पर इस प्रकार की कोई रोक नहीं देखते। यदि व्यास जी ने स्वयं वे कल्पित कथाएं लिखी हैं जिनको कि हम आज पुराणों में देखते हैं तो यह कहा जा सकता है कि ज्ञान की धारा अपने उद्गम स्थान में ही दूषित हो गई है। यदि ज्ञान धारा मूल से ही ऐसी थी तो अज्ञान के कई युगों से छन कर निकलने के कारण उसकी अशुद्धता में लगातार वृद्धि ही हुई है। जब परम्परागत बातों की सच्चाई पर संदेह करना एक अपवित्र बात मानी जाती हो और जब यह सोचना भी अधार्मिक माना जाता हो कि अमुक व्यक्ति उसके आगे क्या सुधार कर सकते हैं ऐसी स्थिति में कला और विज्ञान उन्नति कर सकें यह सर्वथा असम्भव है। विद्यमान विज्ञ धार्मिक आचार्यों की पीढ़ी दर पीढ़ी यही सबसे बड़ी महत्वकांक्षा रही है कि वे उनके पूर्व पुरुषों की रचनाओं के संग्रह को जो परम्परा से उनके पास पहुंच हैं भली भांति समझ लें और कंठस्थ कर लें तथा उन मूलग्रन्थ के ग्रन्थों पर अपने भाष्य लिखें। इन भाष्यों पर भी अब तक भाष्य लिखे चले जाते हैं। जो कोई भी अब उन में सुधार करने का साहस करता है तो उसे यह रहस्य अपने मन में ही रखना पड़ता है क्योंकि वे प्राचीन दिव्यवाणी के व्याख्याकार ही हो सकते हैं यदि इससे अधिक दुस्साहस वे करते हैं तो धर्म विरोधी हो जाते हैं किन्तु यह बात सदैव नहीं रही होगी।

यदि हम यह स्वीकार न करें कि हिन्दुओं के आविष्कारों अथवा ज्ञान में मौलिकता के गुण विद्यमान नहीं थे और उन्होंने सब कुछ दूसरों से उधार ही लिया था तो हम इस बात से सहमत होंगे कि दूसरे राष्ट्रों की भांति हिन्दुओं ने भी कला विज्ञान की उच्चता प्राप्त की उसका विकास धीरे धीरे हुआ होगा। मस्तिष्क पर दासता की ये बेड़ियां निश्चित ही किसी बाद के समय में पड़ी होंगी और यह सार निकलना भी उचित है

१ प्रसिद्ध लेखक बोसेट ने कई ऐसे राष्ट्रों के पागलपन के बारे में बहुत कुछ कहा है जो अपनी उत्पत्ति सनातन से मानते हैं। मुख्यतः बेबीलोनिया मिश्र और सीथिया के लोगों ने अपने उच्च प्राचीनत्व पर अत्यन्त गर्व किया है। प्रथम तो वे हिन्दुओं के साथ साथ इस बात का गर्व करते हैं कि वे ४७३   वर्षों से नक्षत्रों का इतिहास देखते आये हैं। इस प्रकार प्रत्येक ने युग के ऊपर युग के ढेर लगा दिये हैं किन्तु इस कल्पित प्राचीनत्व की कोई आधार-शिला नहीं है और उनकी यह धारणायें स्वयं आधुनिक समय की आविष्कार हैं। (वोरिसिन यात्रा)।

(२) बबीलोनिया एशिया माइनर के उस प्रदेश का प्राचीन नाम है जो युफ्रेटिस नदी के दक्षिणी प्रदेश के आसपास था।

(३) बरोसस ने बबीलोन देश के राजाओं का इतिहास लिखा था और वह सिकन्दर के राज्य-काल में पैदा हुआ था।

कि विज्ञान और धर्म पर एकाधिकार एक साथ ही स्थापित किये गये होंगे। सूझ-बूझ की शक्ति और श्रम की प्रवृत्ति पर इस प्रकार के एकाधिकार का क्या प्रभाव पड़ा होगा? जहाँ ऐसा होता है ज्ञान अधिक समय तक स्थायी नहीं रह सकता वह अवश्य ही अवनत हो जायेगा। यदि हम उस समय का पता लगा सकते जब धर्म [२] सर्वसाधारण का 'व्यवसाय' न रह कर एक वंशपरम्परागत अधिकार बन गया (और ऐसा अवश्य हुआ था जिसका प्रमाण स्वयं वे वंशावलियां हैं) तो हम उस युग का अनुमान लगा सकते हैं जब कि हिन्दू-विज्ञान उन्नति के शिखर पर पहुँचा था।

इन सूर्य और चन्द्र वंशों के प्रारम्भिक काल में धर्माचार्य का पद विशेष कुटुम्बों का पृथक अधिकार नहीं था। यह एक साधारण वृत्ति थी वंशावलियां इस प्रकार के कई उदाहरण प्रस्तुत करती हैं। इन जातियों की कुछ शाखाओं ने किसी धार्मिक सम्प्रदाय अथवा गोत्र के प्रारम्भ करने पर अपना सैनिक जीवन समाप्त कर धार्मिक पुरोहित का कार्य प्रारम्भ कर लिया और फिर इन्हीं की सन्तानों ने पुनः सैनिक व्यवसाय प्रारम्भ कर लिया। इस प्रकार इक्ष्वाकु[३] के दस पुत्रों(५) में से तीन ने सांसारिक कार्यों को छोड़ कर धर्म-कार्य अपना लिया। इनमें कानीन(६) सर्व प्रथम व्यक्ति था जिसने अग्निहोत्र लिया और अग्नि की पूजा की। जबकि एक दूसरा पुत्र (७) व्यापार कार्य करने लगा। चन्द्र वंशी में पुरूरवा के छः पुत्रों में से चौथे का नाम रेह (८) था 'उसकी पन्द्रहवीं पीढ़ी में हारीत (९) उत्पन्न हुआ

२ ऐसा कहा जाता है कि ब्राह्मण धर्म भारत में बाहर से आया था किन्तु उसके भारत-प्रवेश के समय के सम्बन्ध मे कोई ठोस प्रमाण नहीं है। हम आसानी से यह मान सकते हैं कि वर्तमान पुस्तकों के तैयार होने के पूर्व धर्म के इन विभिन्न मत-मतान्तरों को सम्मिलित किया गया था और इससे पूर्व राजवंशी ही इस पद के अधिकारी होते थे। इन सम्प्रदायों की उत्पत्ति के बारे में प्रामाणिक लेखकों ने जानकारी दी है; उदाहरणार्थ श्री कोलब्रुक ने अपनी 'भारतीय जातियाँ' नामक ग्रन्थ में एक स्थान पर कहा है "द्विज कुल का एक मुखिया विष्णु के पक्ष द्वारा शाक द्वीप (४) से लाया गया और इसलिए जम्बू द्वीप में शाकद्वीपी ब्राह्मण प्रसिद्ध हुए।" शाक द्वीप से सीथिया समझा जाता है, जिसके विषय में आगे वर्णन किया जायेगा।

फरिश्ता ने भी इसी भांति लिखा है "कन्नौज के राजा महाराज के शासन में फारस से एक ब्राह्मण आया जिसने तन्त्रविद्या मूर्तिपूजा और नक्षत्र पूजा प्रारम्भ की"। इसलिये धर्म में नवीन मतों को प्रारम्भ करने के सम्बन्ध में प्रमाणों की कमी नहीं है।

३ परिशिष्ट में वंश वृक्ष नं १ देखें।

(४) यह घटना महाभारत के कुछ पश्चात की है। यहाँ 'गरुड़' विष्णु का न होकर कृष्ण का था और साम्ब के कुष्ट-निवारण हेतु शाक द्वीप से एक ब्राह्मण सूर्य-पूजा के लिये लाया गया था। ये ब्राह्मण ही "शाकद्वीपी ब्राह्मण" कहलाये। भारत में ब्राह्मण इससे बहुत पूर्व के हैं।

(५) दस पुत्र इक्ष्वाकु के नहीं अपितु वैवस्वत मनु के हुए थे। —श्रीमद्भागवत ९।१।११ १२।

(६) कानीन इक्ष्वाकु के पुत्रों में नहीं था किन्तु वैवस्वत मनु के सातवें पुत्र नरिष्यन्त का ग्यारहवां वंशधर था और इसका सुप्रसिद्ध नाम 'अग्निवेश्य' अथवा 'जातुकर्ण' था। —श्रीमद्भागवत ९।२।२१।

(७) परन्तु भागवत के अनुसार वैवस्वत मनु का पौत्र और दिष्ट का पुत्र नाभाग था। —श्रीमद्भागवत ९।२।२३।

(८) रेह नहीं 'रय'। —श्रीमद्भागवत ९।१५।१।

(९) हारीत रय का वंशज नहीं किन्तु अमर्ष और विजय का वंशज था। —श्री मद्भागवत ९।१५।३,४।

जो अपने आठ भ्राताओं सहित धर्म-कार्य में लग गया और ब्राह्मणों की एक शाखा कौशिक गोत्र(१०) की स्थापना की।'

ययाति की सन्तानों में चौबीसवें राजा मारद्वाज से एक प्रसिद्ध धार्मिक सम्प्रदाय प्रारम्भ हुआ जिसका नाम आज भी उसी के नाम पर चलता है और वे कई राजपूत कुलों के धर्म गुरु हैं।

छब्बीसवें राजा मन्यु के दो पुत्र धर्मरत हो गये और उन्होंने प्रसिद्ध सम्प्रदायों की स्थापना की। प्रथम महावीर जिसकी संतानें पुष्कर ब्राह्मण कहलाती हैं और दूसरा सरकृति जिसकी संतानें वेद-पाठी हुई। अजमीढ के वंश से धर्म के इन आचार्यों की शाखायें प्रशाखायें बनती चली गईं।

अत्यन्त प्राचीन समय में मिस्री और रोमन राजाओं की भांति सूर्य-वंश के राजा भी धार्मिक पुरोहित का काम और राजकीय शक्ति दोनों को स्वयं में निहित रखते थे वे चाहे ब्राह्मण धर्मावलम्बी हो अथवा बुद्ध धर्मावलम्बी(११)। श्री राम के पूर्व और पश्चात् उनके राजवंश में बहुत से राजा लोगों ने अपने जीवन का अन्तिम भाग तपस्वियों की भांति व्यतीत किया। अतएव प्राचीन मूर्तिकला एवं चित्रकला में सिर पर जटायें उतनी ही सुशोभित हैं जितने कि राज-मुकुट[४]।

बड़े बड़े सम्राट इन राजऋषियों और साधुओं को अपनी कन्यायें दिया करते थे। शक्तिशाली पांचालिक[५] की पुत्री अहिल्या सन्यासी गौतम ऋषि की पत्नि थी। जमदग्नि ऋषि ने माहिष्मती[६] के हैहय वंश के राजा सहस्रार्जुन[७] की पुत्री (१२) से विवाह किया था यह वंश यादव कुल की एक बड़ी शाखा थी।

---

४ आज भी मेवाड़ के राणा राजकीय कार्यों के साथ धार्मिक कर्तव्यों को पूरा करते हैं। जब राणा अपने कुल देवता के मन्दिर में दर्शन करने जाते हैं तो वह स्वयं पुजारी के समस्त कर्तव्य पूरा करते हैं। इस बात से अत्यन्त प्राचीन राजवंशों में पाये जाने वाले राजकीय और धार्मिक शक्तियों के सम्मिश्रण का आभास मिलता है।

५ सिन्ध के पूरब की पांच नदियों का देश, पंजाब (१२) के राजा।

६ नर्मदा नदी पर स्थित महेश्वर।

७ सहस्रार्जुन के सम्बन्ध में यह कथा प्रचलित है कि इस राजा ने अपने जामाता(१३) जमदग्नि ऋषि की गाय चुरा ली थी (रामायण में यह कथा दूसरे ढंग से कही गई है)। फिर परशुराम का अवतार हुआ और उन्होंने क्षत्रियों

---

(१०) कौशिक गोत्र पहिले से ही था। श्री मद्भागवत में (९।१६।३७) इतना और लिखा है 'इस प्रकार विश्वामित्र की सन्तानों द्वारा कौशिक गोत्र में कई भेद हो गये। तथा इस प्रकार (देवरात का यज्ञ मानने के कारण) उस गोत्र का दूसरा ही प्रवर हो गया।

(११) यहाँ टॉड महोदय का आशय सम्भवतः 'चन्द्र-वंश से है। उनका आशय "जैन धर्मावलम्बी' से भी हो सकता है। 'बुद्ध धर्म बहुत पीछे का है। इस गड़बड़ का मुख्य कारण यह है कि टॉड महोदय ने "जैन' "बुद्ध' एवं "चन्द्र वंशी' सब को ही बुद्ध लिख दिया है।

(१२) पंजाब का प्राचीन नाम पाञ्चाल अथवा पांचालिक नहीं था किन्तु पंचनद था (महाभारत सभापर्व अध्याय ३२, श्लोक ११)। पंचाल अन्तर्वेद के एक बड़े भाग का नाम था-(आप्य। अनुद्रवर्तिनी भागवस्ययोम्या। इमे अन्तर्वेदी भूपर्ण पंचाला') ।—(बाल-रामायण अङ्क १०)।

(१३) जमदग्नि ने रेणु ऋषि की कन्या रेणुका से विवाह किया था (श्री मद्भागवत ९।१५।१२)।

महान इतिहासकार हेरोडोटस ने लिखा है कि मिस्र देश में धर्म-गुरु ही राजसत्ता के अधिकारी होते थे क्योंकि उनका और योद्धाओं का ही जमीन पर अधिकार होता था और वल्कन(१४) के धार्मिक पादरी सेथोस ने विद्रोह करा कर योद्धा जाति को उसकी अधिकृत भूमि से अधिकारच्युत (बेदखल) कर दिया था।

भारतवर्ष में जमदग्नि ऋषि से लेकर मराठा जाति के पेशवाओं तक हम शासन सत्ता प्राप्त करने के लिए लड़ते हुए ब्राह्मणों के कई उदाहरण देखते हैं। उनका उद्देश्य सदैव शासन सत्ता और राजकीय आदर प्राप्त करना था जैसा कि विश्वामित्र⁸ और वशिष्ट मुनियों के समय में होता था। उस काल में मिथिला के शासक जनक उपरोक्त

७ क्षत्रिय जाति का भयानक संहार किया। यह कहानी एक रूपक ज्ञात होती है जिसमें पृथ्वी (पृथु) धर, की गाय के रूप में दिखाई गई है, होने वाले शासकों के अत्याचार और हिंसा को प्रकट किया गया है, और यह दिखाया गया है कि ब्राह्मणों ने उन क्षत्रिय शासकों से शासन सत्ता छीन ली थी। इस से यह भी प्रकट होता है कि ये लोग संख्या में कितने बढ़ गये थे।

मैं 'गो' शब्द से निकले हुए शब्दों की उत्पत्ति के विषय में कुछ लिखने का साहस करता हूँ जिससे कि आगे और लोग भी उसका अनुसन्धान करें।

यथा, ग्रिक भी Gain gea, ge—(धौरग = Dorg-) जो सब वस्तुएँ उत्पन्न करने वाली (गाओ अर्थात् पैदा करने वाली-gao genero) पृथ्वी है —जोन्स डिक्शनेरी।

गाला (Gala)—दूध ग्वाला—चरवाहा, संस्कृत में। सैल्टिकाय कलोई गैलेशियन्स या गाल्स और कॅल्ट्स ये सब चरवाहों की जातियां रही होंगी जिन्होंने यूरोप पर आक्रमण किया था।

८. वशिष्ट मुनि के पास एक शबला नामक गाय थी जिसके प्रताप से मुनि अपनी समस्त इच्छाओं की पूर्ति कर लेता था। उसकी सहायता से उसने मुनि राजा विश्वामित्र का ससैन्य आदर सत्कार किया। यह स्पष्ट है कि इस 'गाय' से मुनि के अधिकार में रहे देश के कुछ भू भाग का आशय लिया गया है (यह ध्यान में रखा जाय कि 'गो' 'भू' आदि का अर्थ 'पृथ्वी' और 'गाय' दोनों है)। निस्संदेह ही यह भू-भाग राजा विश्वामित्र के किसी अविवेकी पूर्वज द्वारा वशिष्ठ मुनि को दान में दे दिया गया था जिसको विश्वामित्र पुनर्ग्रहण करना चाहता था। उससे देवताओं और पितृ स्वर्गों के लिये नैवेद्य अग्निहोत्र तथा यज्ञ-कार्य चलते थे। यही "धर्मानुष्ठान की जड़ थी यही "शबला थी जिसके लिये राजा एक लाख गायें(१५) देने लगा था"; यह 'वह रत्न थी जिसका अधिकारी केवल राजा ही हो सकता था । किन्तु वशिष्ठ के प्रकाशकों को यह परिवर्तन पसन्द नहीं आया, और गाय शबला को रंभा कर उन्होंने असंख्य विदेशी सहायक सेनाएँ उत्पन्न कर लीं जिनकी सहायता से वशिष्ठ ने राजा की आज्ञा को अस्वीकार कर दिया। उनमें पहलवी (पारसी) राजा भयानक शक तथा तलवार एवं सुनहरे कवच धारी यवनों (यूनानियों) और कम्बोजियों(१६) आदि को उस प्रतापी गाय ने क्रम से प्रकट किया। इन सभी राजाओं की सेनाओं को विश्वामित्र ने नष्ट कर दिया; किन्तु अन्त में निरन्तर बढ़ती हुई मुनि की शक्ति ने विश्वामित्र को पराजित कर दिया।

वशिष्ठ की सहायतार्थ प्राचीन पारसी शक और यूनानी लोग आसाम और दक्षिण भारत के निवासी●

(१४) रोमन और यूनानी लोगों का एक देवता जो जुपीटर का पुत्र और अग्नि का अधिष्ठाता माना जाता है।

(१५) रामायण में एक करोड़ लिखा है (सर्ग ५२ श्लोक २१)।

(१६) भारत की वायव्य कोण की सीमा के पार हिन्दूकुश के पास का प्रदेश 'कम्बोज' कहलाता था।

मुनियों के प्रभुत्व को दर्शित करने के लिए विनयपूर्वक हाथ बांध कर उनको सम्बोधित करते थे।

किन्तु ब्राह्मणों के प्रति यह आदर भाव राजपूत राजाओं में अत्यन्त दुर्बल है। वे परम्परागत अधिकार के प्रति आज्ञाकारिता दिखाने के लिए बाहरी विनय प्रकट करते हैं परन्तु जब तक कि किसी प्रकार का भय अथवा स्वार्थ की इच्छा उत्पन्न न हो राजा लोग उनका भाटों से अधिक आदर नहीं करते।

गाधिपुर[१] के राजा विश्वामित्र और मुनि वशिष्ठ की कहानी जिसका रामायण[१] की प्रथम पुस्तक के कई भागों में वर्णन किया गया है रूपक के आवरण के नीचे छुपा ब्राह्मण वर्ग और सैनिक वर्ग के मध्य सत्ता की लड़ाई की कहानी है उससे उस सम्भावित काल की ओर संकेत होता है जब कि हिन्दू समाज की जातियां अपरिवर्तनशील हो चुकी थीं। उसके रूपक को हटा देने पर उपरोक्त कथा उस समय की ओर संकेत करती है जब कि वर्गों का विभाजन अभी अपूर्ण था यद्यपि संघर्ष की भीषण हिंसा को देखते हुए यह सार निकाला जा सकता है कि क्षत्रियों द्वारा ब्राह्मणत्व प्राप्त करने का यह अन्तिम प्रयत्न था।

विश्वामित्र कौशिक वंश की सन्तान गाधिपुर के राजा गाधि के पुत्र थे जो इक्ष्वाकु से चालीसवें राजा और

---

८. इस और हिन्दू धर्म की सीमा के बाहर की अन्य 'म्लेच्छ' जातियां सम्मिलित हुई थीं। हिन्दुओं में 'म्लेच्छ' शब्द का वही आशय लिया जाता है जो यूनानी और रोमन लोग बारबेरियन (Barbarian=असभ्य) शब्द से लेते हैं।

इस शक्तिशाली मुनि के द्वारा पराजित और अपमानित होकर राजा विश्वामित्र की दशा दन्तविहीन सर्प अथवा ग्रसित सूर्य के समान हो गई। वह अपने पुत्रों तथा सेना का नाश होने तथा पराक्रम एवं गर्व के भंजन होने से पंखविहीन पक्षी की नाईं निराधार हो गए। उन्होंने अपना राज्य पुत्र को देकर तप द्वारा "ब्राह्मणत्व प्राप्त करने का दृढ़ संकल्प किया जैसा कि अन्य राजा आपत्ति काल में किया करते थे।

विश्वामित्र पुष्कर के पवित्र स्थान में कन्द मूल फल खा कर रहने लगे और ब्राह्मणत्व को प्राप्त करने के लिए तपश्चर्या करने लगे। उन्होंने अपना चित्त स्थिर कर के कहा कि "मैं ब्राह्मण बनूंगा। ऐसा तप करने से उनकी आध्यात्म शक्ति इतनी बढ़ गई कि अंततः ब्राह्मण पद को छीनने के लिए समर्थ हुए। विश्वामित्र को जिसने तपोबल से ब्राह्मण बनने की ठान ली थी देव वाणी हुई कि वेद पढ़ने के अधिकारी वही हैं जो उनके तत्वों को जानते हैं तुम्हें यह उचित नहीं कि प्राचीन बंधी हुई मर्यादा को भंग करो।

पुराणों में उनके भ्रमण, तपस्या तथा तपस्या भंग के लिए जो जो साधन दिखाये गये थे उनका वृत्तान्त दिया गया है। उनकी तपस्या भंग करने के लिए अप्सराएं भेजी गईं स्वयं कामदेव की माता भी पहुंची। ब्राह्मणों का पक्ष लेकर देवराज इन्द्र ने कोकिल का रूप धारण किया और अप्सरा रम्भा ने विश्वामित्र के चारों ओर बहने वाली सुगन्धित मन्द मन्द वायु के साथ अपना सुर मिलाया और कामोत्तेजक चेष्टाओं का सहारा लिया। इन सब प्रलोभनों का उन पर कोई प्रभाव नहीं पड़ा और उन्होंने रम्भा को शिलाखण्ड हो जाने का शाप दिया। वे वासनाओं से पूर्ण रहित और अपने में ध्यान का लेश मात्र न रखकर तप में लगे रहे जिससे ब्राह्मण घबरा गए और उन्हें डर लगा कि कहीं उनकी परम पवित्रता उनके लिए हानिकारक न हो जाय और उन्हें "मनुष्य जाति के नास्तिक हो जाने" का डर लगा। देवताओं और उनके अधिष्ठाता ब्रह्मा को साकार हो कर उनको ब्राह्मण पद देना पड़ा और देवताओं के कहने से वशिष्ठ भी सहमत हो गये और उन्होंने विश्वामित्र से मित्रता कर ली।

९. कन्नौज जो मारवाड़ के वर्तमान राज-वंश की पुरानी राजधानी था।

१. देखो खण्ड क १ एवं मारकेम कृत इस महाकाव्य का अनुवाद।

राम से दो सौ वर्ष (१७) पूर्व के अयोध्या के राजा अम्बरीष के समकालीन(१७) थे, इस प्रकार यह घटना जिससे हम यह सार निकालते हैं कि जाति-प्रथा अपनी पूर्णता को प्राप्त कर रही थी, सम्भवतः ईसा से बारह सौ वर्ष (१८) पूर्व हुई थी।

यदि यह प्रमाणित किया जा सके कि सिकन्दर के दिनों में ये वंशावलियाँ विद्यमान थीं, तो यह बात बहुत ही मनोरंजक सिद्ध होगी। पुराणों में चन्द्र-वंश की उत्पत्ति के सम्बन्ध में दी गई कथा इस बात की साक्षी देती दिखाई देती है।

वृहद् महाकाव्य 'महाभारत' के रचयिता व्यास जी (हरि वंश[11] क) दिल्ली के सम्राट शान्तनु के पुत्र(१९) थे और वे एक मछुए की कन्या[12] योजनगंधा(२०) की कोख से उत्पन्न हुए थे अतएव वे अनौरस पुत्र थे। वे शान्तनु

---

११ हरि कुल।

१२ यह एक बड़े आश्चर्य की बात है कि हिन्दू कथा में उनके दो प्रसिद्ध लेखकों को जिन्हें कि उन्होंने पवित्र चरित्र का माना है, भारत की जंगली और संकर जाति की सन्तान बताया है। व्यास एक धीवर कन्या से उत्पन्न हुए और महाकाव्य रामायण के रचयिता वाल्मीकि आबू के निकट की भील जाति के एक डाकू थे। (वाल्मीकि का परिवर्तन बड़े आश्चर्यजनक ढंग से हुआ जब कि वह देवी के मन्दिर को लूटने में संलग्न थे)। कवि चन्द बरदाई ने किसी प्राचीन ग्रन्थ के आधार पर इस परिवर्तन का बड़े प्रभावशाली ढंग से वर्णन किया है।

---

(१७) 'विश्वामित्र' और 'अम्बरीष' की समसामयिकता को यदि मानें तो निम्न आपत्तियाँ आती हैं:—
'विश्वामित्र' राम को यज्ञ की रक्षार्थ राजा दशरथ से मांग कर ले गये। यह घटना रामायण में है। 'राम' और अम्बरीष में १८ पीढ़ियों का अन्तर है। स्वयं टॉड के वंश-वृक्ष में ही अम्बरीष ४० वाँ और राम ५८ वाँ राजा है। तब क्या एक राजा का राज्यकाल २००+१८=११ वर्ष मानें? जब कि टॉड ने (आगे पांचवे अध्याय में) स्वयं तथा अन्य कई विद्वानों ने २० वर्ष एक राजा का राज्यकाल माना है। अतः २ वर्ष पूर्व के स्थान पर ३६ वर्ष कम से कम होंगे और यदि उपरोक्त बातें स्वीकार करें तो विश्वामित्र की तब की आयु क्या थी?

(१८) महाभारत के सम्भावित समय के सम्बन्ध में तीन मत अधिक प्रचलित हैं:—
(क) ८ ० से १ ० ई पू। टॉड पार्जीटर आदि विद्वान इस मत के हैं।
(ख) १४० से १६० ई पू०। डॉ राधाकुमुद मुकर्जी वासुदेव शरण अग्रवाल आदि का मत है।
(ग) ३ ५२ वि पू। नारायण शास्त्री पं० भगवद्दत्त आदि विद्वान् इस मत के हैं।
यदि मध्य का मत भी मान लें तो १६०० वर्ष+१ ७५ द्वापर का कम से कम समय+उपयुक्त टिप्पणी नं० १७ के अनुसार राम से अम्बरीष का समय ३६० (१६० +६ ०+३६०)=२२६ होगा। अर्थात् २६०० वर्ष से कम का समय तो हो ही नहीं सकता।
टॉड की इस भूल के मुख्य दो कारण हैं। प्रथम वे राम और कृष्ण में अधिक काल भेद नहीं मानते हैं अतः १०० वर्ष का अन्तर पड़ जाता है। दूसरे वे महाभारत का सम्भावित समय ८ से १० ई पू मानते हैं जिससे ६ वर्ष का यह अधिक अन्तर और पड़ जाता है।

(१९) 'व्यास' अथवा 'वेदव्यास' शान्तनु के नहीं अपितु पराशर ऋषि के पुत्र थे।

(२०) पहले इसका नाम मत्स्यगंधा था। एक बार जब पराशर ऋषि नदी पार कर रहे थे तब नाव में ही उसका इन मुनि से समागम हो गया और मुनि के वरदान से ही उसका नाम 'योजनगन्धा' पड़ा। बाद में इसका विवाह हस्तिनापुर के राजा शान्तनु से हुआ।

के पुत्र और उत्तराधिकारी विचित्रवीर्य की पुत्रियों और स्वयं की मंत्रियों के धर्मपिता अथवा गुरु बने(२१)। विचित्रवीर्य के कोई पुत्र उत्पन्न नहीं हुआ। उसकी तीन कन्याओं में से एक का नाम पांडिया[११] था और चूंकि व्यास ही शान्तनु कुल में अकेला पुरुष थे उन्होंने अपनी धर्मपुत्री एवं मंत्री पांडिया को पत्नी बना लिया जिससे पांडु(२२) पैदा हुए जो बाद में इन्द्रप्रस्थ के सम्राट् बने।

---

११ इस नाम के पड़ने का कारण इस प्रकार दिया गया है उन तीन पुत्रियों में से एक दास स्त्री से उत्पन्न कन्या थी और उनको एक साथ परदे में रखने के कारण बाद में उसका पता लगाना कठिन हो गया। इस बात को मालूम करने का काम व्यास पर छोड़ा गया जिसने कन्याओं को उसके सम्मुख वस्त्र-विहीन होकर आने को कहा। सबसे बड़ी ने लज्जा से आँखें मूंद ली थी उससे हस्तिनापुर का अन्धा राजा धृतराष्ट्र उत्पन्न हुआ दूसरी ने उसी भावना से अपने शरीर पर मैल पोत लिया जिससे वह पांडिया कहलाई और उसका पुत्र पाण्डु हुआ तीसरी कन्या बिना लज्जा के चली आई वह अशुद्ध रक्तवाली दासी की पुत्री मान ली गई जिससे विदुर उत्पन्न हुआ (२२)

---

(२१) विचित्रवीर्य के कोई सन्तान ही नहीं हुई और वह निस्संतान ही मरा। अत धर्मपिता अथवा गुरु आदि बनने का प्रश्न ही नहीं होता।

(२२) ऐसी कोई कथा महाभारत में नहीं है।

(२३) विचित्रवीर्य के निस्संतान मरने तथा व्यास द्वारा आगे वंश चलाने के बारे में महाभारत में लिखी कथा का सारांश इस प्रकार है:—

विचित्रवीर्य की मृत्यु के पश्चात उसकी माता सत्यवती ['मत्स्यगंधा' फिर 'योजनगंधा'] ने भीष्म से आगे वंश चलाने के सम्बन्ध में बात की और भीष्म को विवाह करने के लिए कहा। परन्तु सत्यवती के विवाह पर ही भीष्म ने आजीवन ब्रह्मचारी रहने का प्रण किया था अत उन्होंने स्वीकार नहीं किया। तब विद्वानों की सम्मति से नियोग द्वारा पुत्र प्राप्त करके वंश चलाने का निश्चय किया गया अब प्रश्न यह आया कि नियोग किस से कराया जाय। नियोग के बारे में शास्त्रकारों का मत है कि नियोग करने वाला अपने वंश का हो। भीष्म जी नियोग के लिए भी तैयार न हुए, तब आखिर सत्यवती ने (कन्यावस्था में पराशर ऋषि द्वारा हुए) अपने पुत्र व्यास को बुलाया और (अन्याय संक्षिप्त महाभारतांक पृष्ठ ६८ के अनुसार) कहा "बेटा तुम्हारा भाई विचित्रवीर्य निस्सन्तान ही मर गया है। तुम उसके क्षेत्र में पुत्र उत्पन्न करो। व्यासजी ने यह स्वीकार किया।

विचित्रवीर्य के दो रानियाँ थीं। पहले व्यास सबसे पहले अम्बिका के शयनगृह में गये परन्तु उसने व्यास का कुरूप रंग देख कर अपनी लज्जावश आँखें मूंद ली अत उसका पुत्र धृतराष्ट्र अन्धा हुआ। अम्बालिका उन्हें देख कर पीली पड़ गई अत उसका पुत्र पाण्डु हुआ। सत्यवती इस प्रकार के पुत्रों से सन्तुष्ट न हुई अत उसने व्यास को पुन अम्बिका के पास भेजा। परन्तु इस बार उसने अपने स्थान पर एक दासी को भेज दिया जिस से विदुर हुए।

यहाँ यह लिखना उचित प्रतीत होगा कि यद्यपि आजकल नियोग की प्रथा नहीं रहने से व्यास जी के इस नियोग के प्रसंग से ही इसकी चर्चा करना है।

एरियन इस कथा को इस प्रकार कहता है' "इस (हरक्यूलीज)[14] के वृद्धावस्था में एक कन्या उत्पन्न हुई

---

१४ हरिवंशी राजाओं के लिये यह एक जाति वाचक शब्द है परन्तु एरियन ने इसका प्रयोग एक व्यक्ति विशेष के लिये किया है। महाभारत का एक भाग हरिकुल का इतिहास प्रकट करता है जिससे स्वयं व्यास उत्पन्न हुए थे।

एरियन थीब्स वासों(२४) और हिन्दू हरिकुलेशों(२५) में समानता देखता है और इसके लिये सिम्यूक्स के राजदूत मेगस्थनीज़ को एक प्रामाणिक लेखक के रूप में उद्धृत करता है, जो कहता है 'यह (हिन्दू) हरिकुलेश मुख्यत सूरसेनी प्रदेश के लोगों द्वारा पूजा जाता है जिसमें दो बड़े नगर मेथोरा(मथुरा) और क्लीसोबोरस स्थित हैं जो थीब्स वालों के हरक्यूलीज़ की भांति ही पोशाक पहनता है।

डोयोडोरस कुछ भिन्नता के साथ यही कहानी कहता है। उसका कथन है, हरिकुलेश भारतवर्ष में उत्पन्न हुआ था और यूनानियों की भांति उसको भी एक दंडधारी और सिंह का चर्म धारण करने वाला बताते हैं। वह अपूर्व बलशाली था उसने समुद्र और पृथ्वी को राक्षसों और जंगली पशुओं से मुक्त कर दिया था। उसके कई पुत्र और एक कन्या थी। ऐसा कहा जाता है कि उसने पालीबोथरा [पाटलीपुत्र] का निर्माण किया और उसने अपने राज्य को अपने पुत्रों एवं बलिक पुत्रों (बलि के पुत्रों) में विभाजित कर दिया था। उन्होंने कभी बस्तियां नहीं बसाईं किन्तु धीरे धीरे अधिकांश नगरों में सिकन्दर के समय तक जनपद राज्य स्थापित हो गये (यद्यपि कुछ का शासन राजतन्त्री था)।

प्राचीन हरिकुल वंश के अवशेष कितने मूल्यवान हैं ? यमुना के खण्डहरों के मध्य हरिकुलेश (बलदेव, शक्ति का देवता) की मूर्ति अपनी गदा और सिंह-चर्म को धारण किये हुए खड़ी हुई है और अब भी 'सूरसेनी' के लोगों द्वारा उसकी पूजा होती है। सूरसेनी नाम उस भू–भाग का पड़ गया था जो कृष्ण और बलदेव (भारत के एपोलो और हरक्यूलीज) के पितामह सूरसेन द्वारा स्थापित सूरपुरा अथवा मथुरा के आसपास बसा हुआ था। नाम दोनों पर लग सकता है यद्यपि बलदेव में शक्ति के देवता के गुण हैं। दोनों ही कुल के स्वामी अर्थात् 'हरिकुलेश' हैं जिससे कि यूनानियों ने मिला कर एक हरक्यूलीज बना लिया हो। क्या यह सम्भव नहीं है कि महाभारत के युद्ध के उपरान्त एक बस्ती पश्चिम की ओर स्थानान्तर हो गई हो ? अग्रियस (२६)। (हरिकुल वंश के पूर्वजों में अग्नि हुए हैं) की सन्तान हरक्लीडे के पुनरागमन के काल में इस प्रश्न का उत्तर स्पष्ट होगा। यह घटना ठीक महायुद्ध के लगभग एक शताब्दी पश्चात हुई थी।

यह दुर्भाग्य का विषय है कि सिकन्दर के इतिहासकार हिन्दुओं की रहस्यमय बातों का पता नहीं लगा सके। सिकन्दर के भारत में अल्प समय ठहरने और इस देश की भाषा उनके लिए अज्ञात होने के कारण उनके लिए यह सम्भव नहीं हुआ। वे हिन्दुओं की भाषा की अपनी भाषा से समानता जाने बिना हिन्दुओं की भाषा के अध्ययन में बहुत कम प्रगति कर सके होंगे।

---

(२४) थीब्स यूनान का एक प्राचीन एवं प्रसिद्ध नगर था।

(२५) हरक्यलीज यूनानियों का प्रसिद्ध अवतारिक वीर पुरुष था जो जुपिटर (इन्द्र) का पुत्र माना जाता है। हिन्दुस्तान के सम्बन्ध में लिखने वाले यूनानी लेखकों ने इस नाम का उपयोग शिव कृष्ण तथा बलदेव के लिए किया है। टॉड ने हरक्यलीज शब्द का हरि–कुल–ईश बना कर चन्द्रवंशीय राजाओं के लिए प्रयोग किया है किन्तु संस्कृत के किसी ग्रन्थ में इसका प्रयोग नहीं मिलता।

(२६) यूनान कथा के अनुसार यूनान के माइसेनी प्रदेश का राजा।

कन्या[१४] को कोई योग्य वर न मिलने के कारण उनसे स्वयं उस से विवाह कर लिया ताकि भारतवर्ष के राजसिंहासन के लिए सम्राट् उत्पन्न कर सके। उसका नाम पांडिया था और उसने उस प्रान्त का नाम जिस में वह जन्मी थी उसके नाम के अनुसार ही रख दिया।

इक्कीस पीढ़ियों(३१) तक अर्थात् ईसा से पूर्व ११२० से ६१० वर्षों(३२) तक उसकी सन्तानों ने शासन किया जब

---

१५ एरियन इन बातों में तुरन्त ही अपना निर्णय दे देता है और शीघ्र ही विश्वास करने को तत्पर नहीं होता। वह कहता है कि इस कहानी के विषय में मेरी राय यह है कि यदि 'हरक्यू लीज' ऐसा काम करने और सन्तान उत्पन्न करने के योग्य था तो वह ऐसा वृद्ध नहीं था जैसा कि ये लोग हमको विश्वास दिलाना चाहते हैं।"

सेंड्रोकोटस [Sandroocottus—चन्द्रगुप्त] को भी एरियन ने इसी वंश का लिखा है इसलिए ययाति के दूसरे पुत्र पुरु की वंशावली में उसको स्थान देने में हमें सकोच नहीं हो सकता, जहाँ से कि इस जाति का वंशीय नाम निकलता है जो अब नष्ट हो गई है, जैसा कि पुरु के ज्येष्ठ भ्राता का वंशीय नाम यदु निकला था। अतएव चन्द्रगुप्त यदि स्वयं पुरुवंशी नहीं है तो भी वह उस वंश से सम्बन्ध रखता है जिसमें जरासन्ध (भारत में लिखा हुआ एक वीर) और तेइसवीं पीढ़ी में रिपुंजय हुआ। जब कि ईसा से लगभग ६०० वर्ष पहले एक नये वंश ने जिसके नायक शुनक (२७) और शेषनाग (२८) थे पुरु के वंशजों से राज्य छीन लिया। इस राज्य को छीनने वाले घराने में मोरी जाति का चन्द्रगुप्त हुआ जो सिकन्दर के काल का सैंड्रोकोटस (२९) है। मोरीजाति शेषनाग तक्षक का नागवंश की शाखा है, जिसका अलंकार भाग छोड़कर यथावसर आगे वर्णन किया जायेगा। एरियन ने जिनको प्रासी(३०) लिखा है, वे पुरु के वंशज होंगे। उन लोगों का उत्पत्ति स्थान उनके इतिहासों में जो अब तक विद्यमान हैं प्रयाग माना जाता है। प्रयाग वर्तमान इलाहाबाद का प्राचीन नाम है और इरनबोअस अवश्य यमुना होगी। जहाँ वह गंगा से मिलती है वह हमको प्रासी लोगों की राजधानी माननी चाहिये।

---

(२७) यह मगध के बृहद्रथवंशीय राजा रिपुञ्जय का मन्त्री था। इसने रिपुञ्जय का वध करके अपने पुत्र प्रद्योत को राजा बनाया था। —(श्री विष्णु पुराण चतुर्थ अंश पृ० ३४८ गीता प्रेस)।

(२८) इसका शुद्ध नाम शिशुनाग है, जिसको टॉड ने शेषनाग समझ कर उसके वंश को तक्षक वंश मान लिया है।

(२९) (क) १८ जनवरी १७९३ ई० को सर्वप्रथम सर विलियम जोन्स ने यह सिद्ध करने की चेष्टा की थी कि यूनानीयों द्वारा लिखित सेंड्रोकोटस (Sandroocottus) ही चन्द्रगुप्त मौर्य है। फिर विल्फ० मैक्समूलर आदि ने इसकी पुष्टी की और इन्हीं के आधार पर टॉड महोदय ने यह लिखा है। अब भी कई विद्वान इसे मानते हैं।

(ख) श्री नारायण शास्त्री के मतानुसार यह चन्द्रगुप्त (द्वितीय) (उपनाम विक्रमादित्य' अथवा "समुद्र गुप्त") भी हो सकता है। पं० भगवद्दत्त के मतानुसार यह "चन्द्रकेतु" है।

(३०) यूनानी लोगों ने 'प्रासी' शब्द का उपयोग पुरु वंशीयों के लिए नहीं अपितु मध्यदेश के ७८ जनपद के निवासियों के लिए किया है। यह भी कुछ विद्वानों का मत है।

(३१) इस मत के अनुसार २१×२०=४२० वर्ष राज्य किया
(३२) इस मत के अनुसार ११२०–६१०=५१० वर्ष राज्य किया   } दोनों मतों में फर्क=११० वर्ष

के सरदारों ने उसी राज के एक सैनिक मंत्री[१६] को अपना राजा चुन लिया। सरदारों ने अन्तिम पांडव राजा के विरुद्ध उसके शासन-काल के प्रति उपेक्षा के कारण विद्रोह कर उसे सिंहासन से हटा कर मार डाला था। इससे एक नया राजवंश आरम्भ हुआ।

इसी प्रकार दो और राजवंशों के सैनिक मंत्रियों ने बलपूर्वक गद्दी छीन कर अपना राजवंश स्थापित किया। अन्त में विक्रमादित्य ने पांडवों के राज्य और युधिष्ठिर के संवत् को सदा के लिए समाप्त कर दिया।

इन्द्रप्रस्थ अब किसी सम्राट की राजधानी नहीं रहा। राजकीय शक्ति का केन्द्र भारत में उत्तर से दक्षिण चला गया था जब कि विक्रम की चौथी शताब्दी और कुछ लेखकों के अनुसार आठवी शताब्दी में राजपूतों के तंवर वंश ने युधिष्ठिर के राजसिंहासन को पुन: हस्तगत किया जो स्वयं को पांडवों का वंशज कहता था। इस प्रकार पुन: स्थापित उस प्राचीन राजधानी इन्द्रप्रस्थ को एक नया नाम देहली दिया गया और उसके संस्थापक अनंगपाल का राजवंश बारहवी शताब्दी तक शासन करता रहा जब कि इस वंश के राजा ने अपने दोहित्र[१७] पृथ्वीराज(२४) के लिए राजसिंहासन का परित्याग किया। पृथ्वीराज भारतवर्ष के अन्तिम राजपूत साम्राज्य का शासक था जिसकी पराजय और मृत्यु के पश्चात भारत में मुसलमानी शासन प्रारम्भ हो गया।

यह वंश परम्परा भी एक नाम-मात्र के राजा के साथ समाप्त हो गई है और अत्यन्त सुदूर पश्चिम से लौट कर आई एक प्राचीन बस्ती के लोग अब पाठान और तैमूर के राज सिंहासनों के पूर्णरूपेण मान्य विधाता बन गये हैं।

बुध और इला की सन्तानों द्वारा निर्मित इन्द्रप्रस्थ के स्मारकों का पांडवों के लोह स्तम्भ(२५) का "जिसकी

---

१६ फ्रांक्स (Franks) लोगों की प्राचीनतम जातियों के शक्तिशाली मंत्रियों की भांति।

१७. उसकी लड़की का पुत्र। यह प्रथम अथवा अकेला ही उदाहरण नहीं है कि जिसमें भारतवर्ष का पुत्र के क्रमानुयायी होने का नियम तोड़ा गया हो। अणहिलवाड़ा पट्टन के राजाओं के इतिहास में भी इसके दो उदाहरण (२३) विद्यमान हैं। इस प्रकार का दत्तक पुत्र जब अपने गोद लेने वाले पिता की पगड़ी बांधता है तो वह अपने उस पिता के गोत्र से अलग हो जाता है जिसके यहाँ उसने जन्म लिया था।

---

(२४) टॉड अणहिलवाड़ा के राज्य में दो बार भिन्न-भिन्न वंश के राजाओं का गोद आना लिखते हैं, परन्तु वहाँ एक बार भी ऐसा नहीं हुआ। प्रथम मूलराज सोलंकी ने चावड़ा वंश के अन्तिम राजा और अपने मामा सामन्तसिंह को मारकर उसका राज्य छीना था। रासमाला (हिन्दी) प्रथम भाग–पूर्वार्द्ध पृ० ८३-८४।

दूसरे सिद्धराज जयसिंह सोलंकी का उत्तराधिकारी कुमारपाल 'चौहान' नहीं था अपितु सिद्धराज जयसिंह के दादा भीमदेव प्रथम का वंशज था। इस सम्बन्धी विशेष विवरण के हेतु देखें रासमाला (हिन्दी) प्रथम भाग–पूर्वार्द्ध पृ २०१-२ ४ उत्तरार्द्ध पृ० ११४।२१

(२४) पृथ्वीराज न तो अनंगपाल का दोहिता था और न अनंगपाल ने इसे देहली का राज्य दिया था। अजमेर के चौहान राजा बीसलदेव (विग्रहराज) ने विक्रम संवत १२२० के लगभग तंवरों से राज्य छीन लिया था तभी से उस पर चौहानों का अधिकार था। (टा रा हि० का की पृ ३४ टि)

(२५) देहली का प्रसिद्ध लोह स्तम्भ जो शहर से दूर कुतुब मीनार के अहाते में खड़ा है पाण्डवों का बनाया हुआ नहीं है। इसके ऊपर खुदे हुए लेख के अनुसार गुप्त वंश के सम्राट चन्द्र गुप्त विक्रमादित्य ने इसको बनवा कर किसी विष्णुपद पहाड़ी पर विष्णु मन्दिर के आगे खड़ा किया था जहाँ से तंवरों ने लाकर वर्तमान स्थान पर गाड़ दिया था। इसकी गहराई के सम्बन्ध में अनेक बातें कही जाती हैं किन्तु खोदकर देखने पर निश्चय हुआ कि यह जमीन के भीतर केवल १ फुट ८ इन्च है और बाहर २२ फुट।

नींव का निम्न भाग नीचे नरक[18] में स्थित है। अज्ञात अक्षरों द्वारा अंकित विजय स्तम्भों(२७) का प्राचीनतम समय से बसते आए नगरों के विशाल खण्डहरों का जिनका क्षेत्र आज भी विश्व के सब से बड़े नगर से अधिक विस्तृत है और उनके बीच शीर्ण महलों एवं दुर्गों[19] का जिनके नाम लुप्त हो चुके हैं तथा जो शक्ति और सम्मान की क्षणिकता पर विचार करने के लिए सर्वोत्तम उदाहरण हैं इन सब का ब्रिटेन उत्तराधिकारी बन गया है। इस साम्राज्य का स्वामी बन कर ब्रिटेन आगामी पीढ़ी के लिए क्या स्मारक चिन्ह छोड़ जायेगा? एक भी नहीं! सिवाय भारतवर्ष की राष्ट्रीय उन्नति रूपी स्मारक चिन्ह के जो अधिक समय तक जीवित रहेगा। हमारे हाथों में बहुत कुछ है बहुत कुछ दे दिया गया है और भावी सन्ततियां उसका फल प्राप्त करेंगी।

---

१७ पाण्डवों के लोहस्तम्भ का वर्णन कवि चन्द ने किया है। तंवर वंश के एक धर्मद्रोही राजा ने उसकी नींव की गहराई के सम्बन्ध की जनश्रुति की सच्चाई की जांच करने के लिए उसको खुदवाया तो पृथ्वी के केन्द्र से रक्त बह कर निकलने लगा स्तम्भ ढीला (ढिल्ली) हो गया। इस अधम कार्य से उस वंश का सौभाग्य भी ढीला पड़ गया। यही देहली (२६) नाम का मूल कारण है।

१८. मुझे सन्देह है कि शाहपुर के बारे में लोग अब भी जानते हैं या नहीं। मुझे इसके विस्तार का पता एक दुर्ग के खण्डहर से लगा जो हुमायूं के मकबरे और कुतुबमीनार के मध्य में है। मैं सन् १८ १ ई में चार महीने तक अवध के वर्तमान शाह के पूर्वज सफदरजंग के मकबरे में रहा था जो देहली की बस्ती से कई मील दूर इन्द्रप्रस्थ के खण्डहरों में है जो कि वहां से देहली तक फैले हुए हैं। मैं इस एकान्त स्थान में अपने मित्र लेफ्टिनेंट मेकार्टनी के साथ गया था जो अब जीवित नहीं हैं और जिनके नाम को बड़ी प्रसिद्धि और प्रतिष्ठा है। यमुना के सिरे अर्थात् सिवालक पर्वत की श्रेणी से जहां पर यह नदी पहाड़ों से निकल कर मैदानों में प्रवेश करती है निकलने वाली नहरों की पैमाइश करने के लिए हम दोनों नियत हुए थे। ये नहरें यमुना से दोनों ओर जल लेती हैं और फिर यमुना में ही मिल जाती हैं एक देहली नगर से और दूसरी सामने की ओर से।

---

(२६) इस नगर का प्राचीन नाम ढिल्लिका था (देशोस्ति हरियानाख्यः पृथिव्यां स्वर्ग सन्निभः। ढिल्लिकाख्या पुरी तत्र तोमरैरस्ति निर्मिता ॥ (देहली के म्यूजियम में रक्खे हुए वि० सं० १३८४ के लेख में) (प्रतोल्यां च वलभ्यां च येन विश्रामितं यशः। ढिल्लिका ग्रहणं श्रांत— —) चौहान राजा सोमेश्वर के समय के बीजोल्या (मेवाड़) के चट्टान पर के लेख से) जिसको फारसी अक्षरों में लिखने से देहली पढ़ा जाने लगा। (टॉ रा हि० भ पृ० ५४ टि०)

(२७) टॉड जिन स्तम्भों का उल्लेख कर रहे हैं वे विजय-स्तम्भ न होकर धर्म-स्तम्भ हैं। इन पाषाण के दो स्तम्भों पर मौर्य राजा अशोक के धर्मादेश खुदे हुए हैं।

★

अध्याय ३

आगे की वंशावलियां—सर जोन्स बेन्टले कैप्टेन विल्फर्ड और ग्रन्थकर्ता की सूचियों की तुलना घटनाकालों की समानतायें

व्यास जी ने वैवस्वत मनु से प्रारम्भ कर रामचन्द्र तक सूर्यवंश के सत्तावन(१) राजाओं के नाम दिये हैं और उसी काल की चन्द्रवंश के राजाओं की जितनी भी वंशावलियां मैंने देखी हैं उनमें अठावन से अधिक राजा किसी में नहीं मिलते। *मिश्र देश के धर्म गुरुओं द्वारा दी गई संख्या से यह बहुत ही भिन्न है।* प्रसिद्ध इतिहासज्ञ हेरोडोटस के मतानुसार, उन्होंने प्रथम राजा से लगा कर उस काल तक तीन सौ तीस[1] राजाओं की नामावली दी है और उनका आदि पुरुष भी सूर्य[2] से उत्पन्न मेनेस था।

इक्ष्वाकु मनु का पुत्र था और वह प्रथम राजा था जिसने सबसे पहले पूरब की ओर प्रस्थान किया और अयोध्या बसाई।

बुध ने चन्द्र वंश की स्थापना की किन्तु यह स्पष्ट रूप से पता नहीं लगता कि किसने उस वंश की प्रथम राजधानी प्रयाग[3] नगरी बसाई यद्यपि हम कई प्रमाणों के आधार पर सार रूप से यह कह सकते हैं कि बुध की चौथी सन्तान पुरु ने प्रयाग को बसाया था।

इक्ष्वाकु से राम तक सत्तावन राजाओं ने अयोध्या में राज्य किया। ययाति के पुत्रों से निकली हुई चन्द्र-वंश की शाखाएं छोटी-बड़ी हो गई हैं। यदु[4] से निकली चन्द्र-वंश की शाखाओं में ययाति से कृष्ण और उनके मामा कंस तक सत्तावन और उन्सठ (५९) राजा प्राप्त होते हैं जब कि उसी पूर्वज ययाति से निकली भिन्न-भिन्न शाखाओं में

---

१ हेरोडोटस मिल्पोमेनी प्रकरण १४ पृष्ठ २ ।

२ मिश्रवासी भी मिश्र देश के राज्य का प्रथम संस्थापक सूर्य को ही मानते हैं।

३ जैसलमेर से प्राप्त प्राचीन इतिहास सम्बन्धी ग्रन्थ महाभारत युद्ध के पूर्व के कालों में चन्द्रवंश की राजधानियां क्रमशः प्रयाग मथुरा कुशस्थली और द्वारिका बताते हैं। इनकी बीस पीढ़ियों पश्चात् राजा हस्ती ने हस्तिनापुर बसाया था जिससे तीन बड़ी शाखायें अजमीढ़ द्विमीढ़ और पुरमीढ़ विभक्त हुईं जिसके कारण यदुवंश अत्यन्त विस्तृत हो गया।

४ देखिये वंश-वृक्ष १ (परिशिष्ट में)।

---

(१) श्री हनुमान शर्मा ने 'जयपुर के इतिहास' में विशेष संशोधित सूची दी है। उसमें वैवस्वत मनु से रामचन्द्र तक ६३ नाम दिये हैं। डॉ रांगेय राघव ने 'भारतीय परम्परा और इतिहास' में ६५ नाम दिये हैं।

उत्पन्न तथा कृष्ण और कंस के समकालीन युधिष्ठिर [५] शल्य[६] जरासन्ध[७] और बृहद्रथ[८] तक क्रमश: इक्यावन छियालिस और सैंतालीस पीढ़ियां होती हैं। (३)

सूर्य-वंशी शाखाओं और चन्द्र-वंश की बहु शाखाओं के मध्य बड़ी भिन्नता मिलती है किन्तु जितनी वंशावलियां मैंने देखी हैं उनमें यही सब से अधिक पूर्ण है। सर विलियम जोन्स की नामावलियों में सूर्य-वंश के छप्पन और चन्द्र-वंश के (बुध से युधिष्ठिर तक) छियालीस राजा दिये गये हैं जो उपर्युक्त तालिका की तुलना में एक-एक कम हैं और वे कृष्ण वाली महत्त्वपूर्ण वंश शाखा नहीं दे पाये हैं। भिन्न भिन्न सूत्रों से प्राप्त की गई मेरी और सर जोन्स की नामावलियों में इतनी समानता इस बात की द्योतक है कि उनका कोई सामान्य विश्वसनीय मूल ग्रन्थ विद्यमान था।

बेण्टले[९] की सूर्य-वंश और चन्द्र-वंश की नामावलियां उपर्युक्त सर जोन्स की नामावलियों के समान छप्पन और छियालिस राजाओं की सूची देती हैं। किन्तु निकट तुलना करने पर यह लगता है कि या तो उन्होंने प्रतिलिपि की है अथवा उसी मूल ग्रन्थ के आधार पर तैयार की है और फिर बाद में सम्भावित अनुमान लगा कर नामों को ऊंचा नीचा रख दिया है किन्तु वे ऐतिहासिक दृष्टि से विश्वासयोग्य सिद्ध नहीं होंगे।

कर्नल विल्फर्ड[१] की सूर्य-वंश की नामावली उपयोगी नहीं है किन्तु उसकी चन्द्र-वंश के पुरु और यदु राजवंशों की नामावलियां अत्यन्त उत्तम हैं और पुरु के वंश की जरासन्ध से आरम्भ कर चन्द्रगुप्त तक की दी गई नामावली ही सब से शुद्ध है।

आश्चर्यजनक बात यह है कि विल्फर्ड ने सर विलियम जोन्स के कालानुक्रम का उपयोग नहीं किया। सम्भवत: वे राम को कृष्ण का समकालीन(४) बताने से झिझक गये क्योंकि राम का काल यदुवंशियों के महाभारत के युद्ध से चार पीढ़ियों पूर्व (४) का काल माना गया है।

बेण्टले की विधि अधिक उपयुक्त है उनका कहना है कि चन्द्र-वंश में जनमेजय और प्राचीनवात के मध्य ग्यारह राजा छूट गये हैं। किन्तु इसके लिए कोई प्रामाणिक ग्रन्थ नहीं है इसलिए तालिकाओं में सूर्य-वंश के साथ-साथ चन्द्र-वंश के राजाओं को विभक्त कर दिया गया है जहाँ जहाँ काल की समानता और सम्बन्ध दृष्टिगत होते हैं उसकी व्यवस्था तदनुसार ही कर दी गई है। इस विधि से अनुमान का सहारा नहीं लेना पड़ा है और वंशावलियां स्वत: ही स्पष्ट कर देती हैं।

---

५. दिल्ली अथवा इन्द्रप्रस्थ का।
६. शल्य सिन्धु नदी पर स्थित आरोर ? का संस्थापक जिसका पता सौभाग्य से मैंने लगाया। अबुलफज़ल ने शल्य' को 'सिहर' कहा है।
७. बिहार का जरासन्ध।
८. बृहद्रथ का हाल अब तक ज्ञात नहीं हुआ।
९. एशियाटिक रिसर्चेज खण्ड ५ पृ १४१।
१. वही खण्ड ५ पृ २४१।

---

(१) देखिये पृ० १७ (राजस्थान का भूगोल) पर टिप्पणी सं० ४।

(३) टॉड की यह बात आगे पढ़ने से उन्हीं के लिखे अनुसार गलत प्रमाणित होती है तथा उनके लिखे वंश-वृक्ष के भी विरुद्ध पड़ती है।

(४) यहां पर समसामयिकता पर विचार करने से स्थिति स्पष्ट हो जाती है। महाभारत के युद्ध में सूर्यवंशी बृहद्बल को 'अभिमन्यु' ने मारा था। 'राम' और 'बृहद्बल' के मध्य २८ से ३० तक नाम भिन्न विद्वानों ने दिये हैं। टॉड ने भी अपने वंश-वृक्ष सं० २ में २६ नाम दिये हैं। तब 'राम और कृष्ण' समकालीन कैसे हो सकते हैं ?

चन्द्र-वंश की उस प्रमुख शाखा की जोन्स और विल्फर्ड की नामावलियों में बहुत कम भिन्नता है, जिसमें कि पुरु इसी अजमीढ़ कुरु शान्तनु और युधिष्ठिर जैसे अत्यन्त महत्त्वपूर्ण राजा हुए हैं। समानता इतनी अधिक है कि दोनों का आधार एक ही मूल ग्रन्थ को माना जा सकता है किन्तु अधिक निकट से परीक्षा करने पर पता लगता है कि विल्फर्ड के पास अधिक पूर्ण सामग्री विद्यमान थी क्योंकि उसने हस्ती और कुरु की सन्तानों की नई शाखायें दी हैं। अन्त में उसने एक नाम भीमसेन भी दिया है जो मेरी नामावलियों में है किन्तु सर जोन्स की नामावली में नहीं है और भीमसेन के तुरन्त बाद में दोनों नामावलियों में दिलीप का नाम आता है जो मेरी भागवत की प्रति में नहीं है किन्तु अग्नि पुराण में है। यह बात सामग्री के साधनों की भिन्नता प्रकट करती है और अत्यन्त संतोषप्रद है क्योंकि ये ग्रंथ अत्यन्त प्राचीन काल के हैं। मेरी नामावली में पुरु से उन्नीसवां "वन्तु" नाम है जो जोन्स और विल्फर्ड की सूचियों में नहीं है। फिर विल्फर्ड की नामावली में हस्ती से पूर्व 'सहोत्र' नाम दिया गया है जो जोन्स की नामावली में नहीं है।[११]

पुनः कन्तु को कुरु का उत्तराधिकारी बताया गया है जब कि पुराण (जिससे कि मैंने उद्धरण लिए हैं) परीक्षित (४) को उसका उत्तराधिकारी बताता है जो कि कन्तु के पुत्र को गोद लेता है। यह पुत्र औरस था जिसका नाम तीनों में मिलता है। अन्य भिन्नतायें केवल वर्ण विन्यास सम्बन्धी हैं।

मेरी शाखाओं से सर विलियम जोन्स की वंशावलियों की तुलना करने पर मौलिक प्रमाणिकता के सम्बन्ध में एक ही प्रकार का सन्तोषजनक परिणाम निकलेगा। मैंने विलियम जोन्स की वंशावली इसलिए कहा है चूंकि उसके बराबर अन्य कोई उत्तम सूची नहीं है। हमारी वंशावलीयों में प्रथम भिन्नता इक्ष्वाकु की चौथी पीढ़ी (६) पर है। मेरी वंशावली में अन–पृथु (६) है जिसके स्थान पर जोन्स की वंशावली में दो नाम हैं (Aneas) अन्यास (६) और पृथु (६) इसके पश्चात अठारहवें राजा पुरुकुत्स पर भिन्नता केवल वर्ण-विन्यास सम्बन्धी है। त्रिशंकु (७) मेरी वंशावली में तैंतीसवां और जोन्स की वंशावली में छब्बीसवां नाम है। एक नाम का अन्तर तो ऊपर बता दिया गया है किन्तु मेरी वंशावली में दो नाम (Irasadya) इररावस (८) और (Hyaswa) हयाश्व (९) नहीं हैं। इसके अतिरिक्त जो नाम दोनों सूचियों में समान रूप से मिलते हैं उनके वर्ण विन्यास में भी बहुत भिन्नता है। पुनः छप्पनवें राजा और बिहार चम्पापुर के संस्थापक चम्प के क्रमानुयायि के सम्बन्ध में हमारे मध्य बहुत भिन्नता है। जोन्स के अनुसार सुदेव उत्तराधिकारी बनता है और उसके पश्चात् विजय किन्तु मेरे ग्रन्थों के अनुसार उपर्युक्त दोनों चम्प के बेटे थे और उसका छोटा पुत्र विजय उत्तराधिकारी बना क्योंकि बड़े पुत्र सुदेव ने सन्यास

११ परन्तु मैंने उसको अग्नि पुराण में लिखा पाया है।

(४) यह पहले का है, अभिमन्यु का पुत्र नहीं। डॉ० रांगेय राघव ने इसे ७२ वां राजा बताया है।

(६) जयपुर के इतिहास विष्णुपुराण रांगेय राघव एवं पद्मपुराण के अनुसार ४वां केवल पृथु है, तथा चौथा अनेना अनेनस या सुयोधन है। यहाँ जोन्स की वंशावली ठीक है।

(७) जिस मूल प्रति से अनुवाद किया गया है उसमें यही नाम दिया गया है। परन्तु इसमें एक और अनुवाद में [=त्रिशंकु] भी इसने को मिला है। वंश-वृक्ष में टॉड ने 'त्रिशुंक' लिखा है। आगे पृष्ठ ७५ पर त्रिशंकु के पुत्र सत्यवादी राजा हरिश्चन्द्र को चौबीसवां राजा बताया है। डॉ रांगेय-राघव ने "सत्यव्रत–त्रिशंकु' लिखा है और ३२ वां राजा बताया है। जयपुर के इतिहास में केवल "सत्यव्रत' लिखा है और चौबीसवां राजा बताया है। 'विष्णु पुराण' (४।३।२१) में यह पाठ है। 'सत्य-व्रत' जो पीछे त्रिशंकु कहलाया। (८) इरावसु। (९) हर्यश्व।

ग्रहण कर लिया था। तैंतीसवां केशी (१०) और छत्तीसवां दिलीप जोन्स की सूची में नहीं है किन्तु इन दोनों के अतिरिक्त एक अधिक महत्त्वपूर्ण व्यक्ति जोन्स की नामावली में लुप्त है जो शृंखला की एक बड़ी कड़ी है और जिससे प्राचीनतम इतिहास में एक उत्तम समकालीनता का पता लगता है। वह चालीसवां राजा अम्बरीष (११) था जो गाजीपुर और कन्नौज के संस्थापक गाधी का समकालीन(११) था। (मेरी वंशावली में ४४ ४५ ५४ वें नाम) नल मुकुर और दिलीप जोन्स की सूची में नहीं लिये गये हैं।

इन वृहद वंशों के वंशानुक्रमों का यह तुलनात्मक विश्लेषण सन्तोषप्रदनक (१२) माना जाना चाहिये। मैंने जो नाम लिये हैं वे एक ऐसे राजा (उदयपुर के राणा) के पुस्तकालय में प्राप्त पवित्र वंशावलियों में से लिये गये हैं जो स्वयं को उनमें से एक वंश से उत्पन्न बताता है और इसलिये उनके दोष पूर्ण होने की कम सम्भावना है। ऐसे राजा बहुत कम दृष्टिगत होंगे जो अपनी वंशावली को याद रखते हों। मेवाड़ के राणा में अपनी वंशावली कण्ठस्थ रखने की एक विशेषता है। पेशेवर वंशज भाट लोगों ने उनको अवश्य कंठस्थ किया होगा और चारण लोग अवश्य ही उस किस्म के अच्छे ज्ञाता होंगे।

प्रथम सूची अयोध्या और मिथिला देश अथवा तिरहुत के सूर्य-वंशी राजाओं के दो राज-वंशों की नामावलियां प्रस्तुत करती हैं। दूसरे राज-वंश की नामावली मुझे अन्यत्र देखने को नहीं मिली है। इसमें चन्द्र-वंश के चार बड़े और तीन छोटे राजवंशों की नामावलियां भी दी गई हैं। तत्पश्चात जैसलमेर के भाटी राजवंश के ऐतिहासिक लेखों से प्राप्त यदुवंश की आठवीं नामावली भी जोड़ी गई है।

प्राचीन जातियों के वंश इतिहास के इस विराम स्थल को त्यागने के पूर्व जहां कि राम कृष्ण और युधिष्ठिर के विख्यात नामों के साथ भारत का तृतीय युग समाप्त होता है और जहां से उनकी संतानें वर्तमान कलियुग अथवा लौह युग का प्रारम्भ करती हैं, मैं कुछ समकालीनता प्रकट करने वाली बातों पर दृष्टिपात करूंगा जिनको विभिन्न प्रामाणिक ग्रन्थकार स्वीकार करते हैं।

इतने प्राचीन कालों के सम्बन्ध में जानकारी प्राप्त करने के लिए लगभग सत्य लगने वाली बातों का सहारा लेना ही पड़ता है। रामायण और महाभारत के आधार पर ही मैं इन समकालीनताओं का पता लगाने की चेष्टा करता हूं।

प्रथम समकालीनता सुप्रसिद्ध सूर्य-वंशी त्रिशंकु के पुत्र हरिश्चन्द्र से प्रारम्भ होती है जिसकी कष्टव्यापिता की कथाएं आज भी प्रचलित हैं। वह चौंतीसवां ¹¹ राजा है और उसे परशुराम (१३)का समकालीन बताया गया है।

---

१२ स्कन्द पुराण का सह्याद्री खण्ड।

---

(१०) 'केशी' राजा नहीं था। यह नाम सगर की स्त्री का था जिससे असमंजस उत्पन्न हुआ था।

(११) इसमें दूसरे अध्याय में पृ० ४८ पर हमारी टिप्पणी सं० १० यहाँ गाधी का समकालीन बताया है और यहाँ (टिप्पणी सं० १० में) विश्वामित्र को।

(१२) टिप्पणियों के देखने से यह स्पष्ट है कि अभी बहुत शोध की आवश्यकता है।

(१३) इस समकालीनता में बड़ी उलझन है। उदाहरणार्थ परशुराम का तो सहस्रार्जुन का वध परशुराम करता है। फिर दशरथ-पुत्र राम से भी परशुराम का भारी विवाद होता है, यहाँ त्रेतायुग आ गया। फिर परशुराम 'महाभारत' में भीष्म से युद्ध करता है यह 'द्वापर' आ गया। इस सम्बन्ध में हमें दो मत देखने को मिले हैं:—

जिसने नर्मदा पर स्थित माहिष्मती के हैहय वंश के राजा सहस्रार्जुन का वध किया था। यह रामायण द्वारा प्रमाणित है जिसमें सैनिक (क्षत्रिय) जाति के विनाश और परशुराम के नेतृत्व में ब्राह्मणों द्वारा शासन-सत्ता हस्तगत करने की चेष्टा का विस्तृत वृत्तान्त दिया गया है। इस घटना से उस युग की ओर संकेत होता है जब कि क्षत्रिय जाति ने 'राज्य-छत्र गवा दिया' और जैसा कि ब्राह्मण उपहास करते हुए कहते हैं क्षत्रियों ने रक्त की शुद्धता खो दी। किन्तु इस अन्तिम कथ का उनके ही ग्रन्थ खण्डन करते हैं जैसा कि आगामी समकालीन घटनाएं प्रकट करेंगी।

यही समकालीनता हम सूर्य-वंश के बत्तीसवें राजा सगर के काल में देखते हैं जो कि सहस्रार्जुन[11] से छठी पीढ़ी(१५) के चन्द्र-वंश के राजा तालजंघ(१५) का समकालीन था। सहस्रार्जुन के पांच पुत्र परशुराम द्वारा किये क्षत्रिय वंश के संहार से बच गये थे जिनके नाम 'भविष्य' में दिये गये हैं।

सूर्य और चन्द्र वंश की इन सभी विरोधी जातियों के मध्य युद्ध निरन्तर रूप से चलते रहे जिनका वृत्तान्त पुराणों और रामायण में दिया गया है। 'भविष्य' में सगर और तालजंघ के मध्य हुए इसी प्रकार के युद्ध का वृत्तान्त मिलता है जो उनके पूर्वजों के मध्य हुए युद्ध के समान ही था और इसमें भी हैहय वंश की उतनी ही करारी हार हुई। किन्तु परशुराम की मृत्यु के पश्चात् हैहय वंश के राजाओं ने अपनी खोई हुई शक्ति पुनः प्राप्त कर ली थी यह इस बात

११ भविष्य पुराण में इस राजा को एक चक्रवर्ती सम्राट् बताया गया है। सहस्रार्जुन ने तक्षक तुरुष्क (१४) अथवा नागकुल के कारकोटक को जीता एवं नर्मदा पर स्थित उसके राज्य से निकाल दिये जाने पर उसने उत्तरी भारत में हेम नगर बसाया। इस राजा के विषय में अभी तक प्रचलित जनश्रुतियों में उसे 'सहस्रबाहु' कहा जाता है जो उसकी असंख्य सन्तानों का प्रतीक है।

'तक्षक' अथवा नाग कुल के विषय में हम बाद में विशेष रूप से बतायेंगे। प्राचीन काल में पशुओं नक्षत्रों और अन्य निर्जीव वस्तुओं के नाम का विभिन्न जातियों को संकेत करने के लिए उपयोग में लेते थे। धर्म पुस्तक बाइबल में मिस्र असीरिया और मेसिडोनिया के राजाओं का वर्णन करने के लिए मक्खी मधुमक्खी भेड़ा आदि के नाम लिये गये हैं। हिन्दू पुराणों में सर्प मत्स्य वानर आदि का उपयोग किया गया है।

तक्षक वंश उच्च एशिया की सबसे प्राचीन और अत्यन्त विस्तृत जातियों में था जिसके बारे में अन्यत्र कहा जायेगा।

रामायण में यह कहा गया है कि यज्ञ (अश्वमेध) का घोड़ा एक सर्प (तक्षक) द्वारा चुरा लिया गया था जो अनन्त का रूप धर कर आया था।

(क) श्री भगवद्दत्त ने (भारतवर्ष का बृहद इतिहास भाग १) यथासाध्य यह प्रमाणित किया है कि ऋषि दीर्घजीवी होते थे।

(ख) डॉ० रांगेय राघव ने (प्राचीन भारतीय परम्परा और इतिहास तथा अन्धेरा रास्ता में) यह सिद्ध करने की चेष्टा की है कि यह एक जाति थी जो परशु धारण करती थी।

(ग) इसके सम्बन्ध में एक बात यह भी विचारणीय है कि कहीं यह एक 'पद' तो नहीं था। उदाहरणार्थ जगद्गुरु 'शंकराचार्य' की गद्दी पर जब चुनाव करके किसी विद्वान् को बैठाया जाता है तो उसका नाम 'शंकराचार्य' ही हो जाता है और उसका प्रथम नाम लोग लगभग भूल जाते हैं। रासमाला (हिन्दी) प्रथम भाग-पूर्वार्द्ध पृ० १८८ टिप्पणी सं० १ को देखने से ऐसा ज्ञात होता है।

(१४) तुरुष्क (तुर्क) वंश जिसका कुल वर्णन 'राजतरंगिणी' नामक पुस्तक में दिया गया है, तक्षक वंश से भिन्न था।

(१५) टॉड के वंश-वृक्ष के अनुसार तालजंघ आठवीं पीढ़ी में होता है।

से स्पष्ट हो जाता है कि उन्होंने सूर्य-वंशियों से पूरा बदला लिया और सगर के पिता[14] को अयोध्या की राजधानी से निष्कासित कर दिया था। ऐसा विदित होता है कि सगर और तालजंघ हस्तिनापुर के राजा हस्ती एवं अंग देश[15] व अंग जाति के संस्थापक तथा बुध के वंशज राजा अंग के समकालीन थे।

रामायण में एक अन्य समकालीनता का उदाहरण प्राप्त होता है सूर्य-वंश का चालीसवां और अयोध्या का राजा अम्बरीष कन्नौज के संस्थापक गाधी(१८) और अंग देश के राजा लोमपाद का समकालीन था।

अन्तिम समकालीनता कृष्ण और युधिष्ठिर की है जिनके साथ कि द्वापर युग समाप्त होता है और लोह (कल) युग अथवा कलियुग प्रारम्भ होता है। किन्तु यह समकालीनता चन्द्र-वंश की ही है। हमारे पास ऐसा कोई मार्ग-दर्शक ग्रन्थ नहीं है जिससे कि सूर्य-वंश के राम और चन्द्र-वंश के कृष्ण के जीवन-कालों में अन्तर दिखाया(१९) जा सके।

इस प्रकार क्रोष्टा के वंश में उनसठवां(२०) राजा मथुरा-नरेश कंस(२०) होता है और बुध के अट्ठावनवें कृष्ण(२१) होते हैं जब कि पुरु के वंश में अजमीढ और देवमीढ से उतरते हुए शल्य जरासन्ध और युधिष्ठिर

१४ हैहय तालजंघ और मिथुविन्ध्या राजाओं ने सगर के पिता असित को अयोध्या से निष्कासित कर दिया था। असित भागकर हिमालय पर्वतों में चला गया जहाँ उसकी मृत्यु के उपरान्त उसकी एक गर्भवती रानी से सगर उत्पन्न हुआ(१)। मधुर चन्द्र-वंश द्वारा सूर्य-वंश के विनाश को बचाने के लिए परशुराम ने शस्त्र धारण किए(१६)। इससे यह स्पष्ट होता है कि सूर्य-वंश में ब्राह्मण धर्म प्रचलित था। जब कि चन्द्र-वंश में अभी भी उसके पूर्वज बुध का धर्म माना जाता था। इसी कारण (बुध अथवा चन्द्र-वंश की सन्तान) राजा विश्वामित्र के विरुद्ध सूर्य-वंश के मुनियों ने शक्ति लगाई थी जब कि विश्वामित्र ने ब्राह्मणत्व प्राप्ति की चेष्टा की थी। चन्द्र-वंश की सन्तान कृष्ण एक नवीन सम्प्रदाय प्रारम्भ करने से पूर्व बुध की अर्चना करते थे यह अविश्वसनीय बात नहीं हो सकती।

१५. अङ्गदेश(१७) अंग देश अथवा उस देश तिब्बत से मिला हुआ है। यहाँ के निवासी स्वयं को हूंगी कहते हैं जो चीनी लेखकों द्वारा वर्णित होयंग्नू मालूम पड़ते हैं और यूरोप तथा भारत के हूण लगते हैं, जिससे यह सिद्ध होता है तातारी जाति चन्द्र और बुध की सन्तति ही है।

(१) रामायण का केरे (carey) कृत अनुवाद काण्ड १ अध्याय ४१।

(१६) परशुराम के पिता जमदग्नि को सहस्रार्जुन के पुत्रों ने मारा था इसलिये परशुराम ने क्षत्रिय मात्र का विनाश करने के लिये शस्त्र उठाया था न कि सूर्य-वंश की सहायता के लिये।

(१७) गंगा के दाहिने तट पर का तथा बंगाल के पश्चिमी भाग का एक प्रदेश जिसकी राजधानी 'चम्पा' अथवा 'चम्पापुरी' गंगा तट पर भागलपुर के निकट बसी हुई थी। टॉड का उसको तिब्बत के निकट बताना तथा उसके आधार पर हूणों के विषय में अनुमान करना दोनों ही गलत हैं।

(१८) देखें इसी अध्याय में पृ० ५७ पर हमारी टिप्पणी सं० ११। (विशेष) गाधी विश्वामित्र का पिता था।

(१९) देखें इसी अध्याय में पृ० ५५ पर हमारी टिप्पणी सं० ४।

(२) क्रोष्टा' से 'कंस' सत्तासी वां [८७] राजा होता है—'पे र्जीटर इण्डियन हिस्टारिकल ट्रेडीशन्स

(२१) बुध' से 'कृष्ण' तिरानवें [९३]वें राजा होते हैं। ('पार्जीटर')

क्रमशः इम्बकन में विरपनमें, और चौकनमें राजा होते हैं।(२२)

महाभारत के युद्ध में भाग लेने वाला तथा उसके बाद जीवित बच रहने वाला अन्तिम वंश का राजा प्रभुसेन बुध से वरेपन वां राजा था। (२२)

इस प्रकार सम्पूर्ण का औसत लेने पर हम बुध से कृष्ण और युधिष्ठिर तक पचपन पीढ़ियाँ(२३) होना मान सकते हैं और प्रत्येक राजा के शासन के लिये बीस वर्ष औसत स्वीकार कर सकते हैं जो कुल मिलाकर ग्यारह सौ वर्ष(२४) का हुआ। इस काल को इसके बाद से लगाकर विक्रमादित्य के काल तक जो कि ईसा से छप्पन वर्ष पूर्व शासन करता था जोड़ देने पर, मेरे मतानुसार ये दो प्रसिद्ध जातियाँ चन्द्र–वंश और सूर्य–वंश भारत में ईसा से लगभग २२५६ वर्ष(२५) पूर्व आकर बसी थी जब कि लगभग उसी समय अथवा कुछ समय पश्चात्, मिस्र, असीरिया और चीन[१९] में भी राज्यों की स्थापना हुई ऐसा माना जाता है। यह उस महान् घटना जलप्रलय के लगभग डेढ़ शताब्दी बाद हुआ होना चाहिये।

यद्यपि अग्नि पुराण में यह कहा गया है कि सूर्यवंश की सन्तानें ही सर्व–प्रथम मध्य एशिया (२६) से आकर भारत में बसी, जिसका प्रथम पुरुष इक्ष्वाकु था जिस पर भी चन्द्र–वंश के आदि पुरुष बुध (२७) को हम उसका समकालीन बताने को बाध्य हैं, जिसके सम्बन्ध में यह कहा गया है कि वह किसी सुदूर प्रदेश (२७) से आया था और इक्ष्वाकु की बहन इला से उसका विवाह हुआ था।

इसके पूर्व कि हम चन्द्र–वंश की श्रृंखला को आगे बढ़ाने वाले कृष्ण और अर्जुन के वंशजों अथवा सूर्य–वंश की वृद्धि करने वाले राम के पुत्र लव और कुश के वंशजों के सम्बन्ध में कुछ कहें हम आगामी अध्याय में उनके पूर्वजों द्वारा स्थापित प्रमुख राज्यों के सम्बन्ध में कुछ विचार करने का साहस करेंगे (२८)।

(१९) मिस्र वालों ने मिस्रायम की प्राचीनता में ईसा से २१८८ वर्ष पूर्व; असीरिया में ईसा से २ ५९ वर्ष पूर्व और चीन में ईसा से २२०७ वर्ष पूर्व।

(२२) उपर्युक्त टिप्पणी संख्या २ २१ की स्थिति सब पर लागू है क्योंकि सबका समय एक–सा है तथा सब में सम्बन्ध है।

(२३) अधिकतर विद्वान मनु से महाभारत तक ५५ पीढ़ियाँ मानते हैं।

(२४) ५५×२०=११ ० वर्ष

(२५) महाभारत युद्ध के सम्भावित समय के सम्बन्ध में इसके दूसरे अध्याय में पृ० ५८ पर हमारी टिप्पणी सं १८। इसके अनुसार ११ वर्ष+ ११०० वर्ष (महाभारत से मनु तक पाँचवें अध्याय में पृ ७१ पर हमारी टिप्पणी सं० २ के अनुसार)= ३५०० वर्ष।

(२६) सूर्य–वंशियों का मध्य एशिया से आना अग्नि पुराण में कहीं नहीं पाया जाता।

(२७) बुध सुदूर प्रदेश से नहीं आया था अपितु 'तारा' से 'चन्द्रमा' का पुत्र था। (श्रीमद्भागवत ९।१४।१४)

(२८) इस अध्याय में तथा (टॉड द्वारा निर्मित) वंशावली (परिशिष्ट संख्या १) में बहुत भिन्नता है। कुछ चर्चा तो हमने अध्यायों में यथास्थान कर दी है; शेष वंश–वृक्ष में आगे करेंगे।

★

अध्याय ४

विभिन्न जातियों द्वारा भारतवर्ष में राज्यों और नगरों की स्थापना।

सूर्य-वंशियों द्वारा स्थापित प्रथम नगर अयोध्या[1] था। अन्य राजधानियों की भांति उसका उत्थान भी धीरे धीरे हुआ होगा तथापि समस्त अतिशयोक्ति के होते हुए भी राम से पूर्व बहुत पहले ही उसने अपने विशाल वैभव को प्राप्त कर लिया होगा। उसका स्थान आज भी अवध के नाम से सुप्रसिद्ध है जो मुगल साम्राज्य के नाम-मात्र के वज़ीर के अधीन प्रान्त का भी नाम है। पच्चीस वर्ष पूर्व तक यह प्रदेश सूर्य-वंश के प्राचीन राज्य कौशल की सीमाएं बनाता था। एशिया की समस्त प्राचीन राजधानियों का अत्यन्त विशाल होना बताया जाता है और अयोध्या तो अत्यधिक बड़ी नगरी थी। जनश्रुति के अनुसार तो वर्तमान राजधानी लखनऊ प्राचीन अयोध्या का नगरोपान्त मात्र था और राम ने अपने भ्राता लक्ष्मण पर प्रसन्न होकर उसका यह नाम रख दिया था।

अयोध्या की समकालीन मिथिला[2] नगरी थी जो उसी नाम के प्रदेश की राजधानी थी और इक्ष्वाकु के पौत्र मिथिल द्वारा बसाई गई थी।

---

१ वाल्मीकि ने अयोध्या का इतना अतिरंजित चित्र खींचा है जो केवल कल्पना में ही स्थिर माना जा सकता है और इस कलयुग में उसकी बसी बनावट और शोभा का मिलना दुष्कर है। "सरयू के तट पर कौशल नामक का एक बड़ा देश है, जिसके अन्तर्गत बारह योजन (अड़तालीस मील) के विस्तार में मनु की बसाई हुई अयोध्या नगरी है जिसके मार्ग सुयोजित ढंग से बने हुए हैं और भली भांति छिड़के हुए हैं। यह नगरी व्यापारियों से परि-पूर्ण सुन्दर वाटिकाओं से शोभायमान विशाल दरवाजों तथा बेहतरीन ऊँचे दालानों से सुशोभित अस्त्र-शस्त्र से सम्पन्न रथों गजों और अश्वों से परिपूर्ण एवं विदेशी राजदूतों से सदा भरी रहती है। यह नगरी ऐसे राजगृहों से विभूषित है जिन पर पर्वत शृंगों के सदृश गुम्बज बने हुए हैं। सब मकान एक सी ऊँचाई के हैं जिनमें वीणा बांसुरी और पखावज की मनोहर वाद्यध्वनि गूंजती रहती है। नगर के चारों ओर गहरी खाई खुदी हुई है और धनुर्धारी सैनिक नगरी की रक्षा किया करते हैं। महाराजा दशरथ इस नगरी के राजा हैं। यहां कोई नास्तिक नहीं है। सब पुरुष अपनी-अपनी स्त्रियों से स्नेह रखते हैं। स्त्रियां पतिव्रता और पति की आज्ञाकारिणी सुन्दर, विख्यात मधुरभाषिणी विवेकी एवं धर्मिष्ठा हैं तथा उत्तम अलंकारों और वस्त्रों से विभूषित रहती हैं। पुरवासी सत्यवादी अतिथिसत्कारी एवं गुरुजनों द्विजों और देवताओं का आदर करने वाले हैं।

"यहां आठ राजमन्त्री हैं जो उत्तम शास्त्र मर्मज्ञ तथा राज्य के उपकारी हैं। वे जितेन्द्रिय निर्लोभी लज्जाशील गुणयुक्त धर्मवान एवं तपस्वी हैं अपने कार्य तथा देश व्यवहार में बड़े निपुण धैर्य एवं धर्म पर ध्यान रखने वाले निरभिमानी स्वच्छ वस्त्र धारण करने वाले गर्हित विषयों में कभी भी विश्राम करने वाले तथा पूर्ण राजभक्त हैं।

२. मिथिला बंगाल में स्थित वर्तमान तिरहुत।

मिथला के पुत्र जनक [३] के नाम ने उसके संस्थापक के नाम को लुप्त कर दिया और जनक का नाम ही सूर्य-वंश की इस शाखा का पैतृक नाम हो गया।

इस प्राचीन युग में सूर्यवंशी राज्यों की ये दो राजधानियां थीं जिनका वर्णन मिलता है, यद्यपि छोटी छोटी और भी कई थीं जैसे रोहतास चम्पापुर आदि जो राम से पूर्व बस चुकी थीं।

बुध के चन्द्र-वंश की असंख्य शाखाओं ने कई राज्य स्थापित किये। प्रयाग की प्राचीनता के विषय में आख्यायिक कहा गया है किन्तु चन्द्र-वंश की प्रथम राजधानी हैहयवंश के सम्राट् सहस्रार्जुन द्वारा ही स्थापित की गई लगती है। यह राजधानी नर्मदा नदी पर स्थित माहिष्मती थी जो अब तक महेश्वर [४] में विद्यमान है। चन्द्र-वंश और अयोध्या के सूर्य-वंशी राजाओं के मध्य हुए संघर्ष का वर्णन ऊपर कर दिया गया है जिसमें कि सूर्य-वंशियों की सहायता (२) के लिये ब्राह्मणों ने शस्त्र उठाये और सहस्रार्जुन को महिष्मती (३) से निष्कासित कर दिया था। इस प्राचीन हैहयवंश [५] की एक छोटी शाखा आज भी नर्मदा के किनारे, सोहागपुर की घाटी के ठीक ऊपर बघेलखंड में विद्यमान है, जो अपनी प्राचीन वंशपरम्परा से परिचित है। यद्यपि उनकी संख्या बहुत कम है किन्तु वे अपनी वीरता के लिए प्रसिद्ध [६] हैं।

कृष्ण की राजधानी कुशस्थली द्वारका प्रयाग सूरपुर, अथवा मथुरा से पूर्व स्थापित हुई थी। भागवत में यह दृष्टान्त मिलता है कि यह नगरी सूर्य-वंश के राजा इक्ष्वाकु के भ्राता आनर्त (५) द्वारा स्थापित की गई थी किन्तु इस बात का कोई उल्लेख नहीं मिलता कि यदुवंशियों ने उस पर कब और कैसे अधिपत्य कर लिया।

यदु-वंश की जैसलमेर शाखा के प्राचीन ऐतिहासिक लेख प्रयाग की स्थापना सर्वप्रथम बताते हैं, उसके उपरान्त मथुरा और सब से अन्तिम द्वारिका की स्थापना बताते हैं। ये समस्त नगर इतने प्रसिद्ध हैं कि उनका वर्णन आवश्यक प्रतीत नहीं होता मुख्यतः प्रयाग का जो गंगा यमुना के संगम पर बसा हुआ है। प्रयाग के राजा पुरु [७] के

---

३ कुशध्वज (१) सीता के पिता जिनको जनक भी कहा जाता है। यह नाम इस वंश में बहुत सामान्य था। 'सुवर्ण-रोम' अथवा 'स्वर्ण केश धारण करने वाले' राजा से तीसरे राजा ने यह नाम ग्रहण किया था।

४ यह 'सहस्रबाहु की बस्ती' के नाम से अधिक प्रसिद्ध है।

५. बुध के वंश की हैहय शाखा का सम्बन्ध चीनी जाति से जोड़ा जा सकता है, जिससे कि चीन के सब प्रथम राजा उत्पन्न (४) हुए थे।

६. हाल ही में इनके वीरत्व के बारे में अनेक विलक्षण प्रमाण मेरे सुनने में आए हैं।

७. चन्द्र-वंश की इस शाखा का पैतृक नाम पुरु (६) हो गया। सिकन्दर के इतिहासकारों ने इसी को 'पोरस' (६) लिखा है। मथुरा के सूरसेन के वंशज समस्त पुरुवंशी (६) ही थे जिनको मेगस्थनीज़ ने 'प्रासी' कहा है। इलाहाबाद का हिन्दू नाम अब तक प्रयाग है जिसका उच्चारण ग्राम भी करते हैं।

---

(१) सीता के पिता जनक का दूसरा नाम 'सीरध्वज' था 'कुशध्वज' उसका छोटा भाई था।
(२) देखिये तीसरे प्रकरण में पृ० ४८ पर हमारी टिप्पणी सं० १४।
(३) माहिष्मती पुरी—(संक्षिप्त पद्म पुराणाङ्क' गीता-प्रेस गोरखपुर पृ० ७२।)
(४) यहाँ टॉड हैहय शाखा से चीन के सर्व प्रथम राजा को उत्पन्न मानते हैं आगे छठ अध्याय में 'हय' का 'हय' मान कर यदुवंश से चीनियों को 'हयु वंश' की सन्तान मानते हैं।
(५) आनर्त इक्ष्वाकु का भाई नहीं था उसके भाई शर्याति का पुत्र था। कुशस्थली (द्वारिका) उसने नहीं उसके पुत्र रेवत ने बसाई थी।
(६) टिप्पणी भाग पृष्ठ ११ पर नं० १ ही देखिए।

हस्तिनापुर नगर को चन्द्र-वंश के सुप्रसिद्ध राजा हस्ती ने स्थापित किया था। हरिद्वार [12] से चालीस मील दक्षिण में गंगा नदी पर इस नगर का नाम अब भी मिलता है जहाँ कि गंगा नदी शिवालक पर्वतों से निकल कर भारत के मैदानी भाग में प्रवेश करती है। यह शक्तिशाली नदी हिमालय के जलप्रपातों से बह कर विशाल जलसमूह को लेती हुई तथा कई सहायक नदियों से मिलती हुई कभी कभी भयानक विनाश का दृश्य उत्पन्न कर देती है। ऐसा ज्ञात होता है कि एक रात्रि में तीस फुट की समकोण ऊँचाई तक उठ कर गंगा का पानी इतना प्रबल वेग धारण कर लेता है कि मार्ग में आने वाली समस्त वस्तुओं को मटियामेट कर देता है और ऐसी ही किसी घटना के समय हस्ती की राजधानी हस्तिनापुर का विध्वंस [13] हो गया होगा।

हस्तिनापुर महाभारत युद्ध के पीछे बहुत काल तक विद्यमान था। यह आश्चर्य की बात है कि सिकन्दर के इतिहासकारों ने उसका वर्णन नहीं किया। जब कि सिकन्दर ने सम्भवतः उक्त युद्ध से लगभग आठ शताब्दियों पश्चात भारत पर आक्रमण किया था। पुरु वंश के राजाओं का यह निवासस्थान था सिकन्दर के विरोधी पौरस नाम के दो राजाओं

---

११ कैसे सन्तोषजनक रही क्योंकि एक तो मैंने यूनानियों द्वारा वर्णित 'सूरसेनी' का पता लगाया दूसरे एक कम ख्याति वाले राजा एपोलोडोटस का एक पदक मुझ को मिला, जो कि लड़ता हुआ सिन्ध के मुहाने तक आ पहुँचा था और सम्भवतः यमुना नदियों के मध्य तक पहुँच गया था। बेयर ने बक्ट्रिया के राजाओं की वंशावली में उसको सम्मिलित नहीं किया है किन्तु उस राजवंश के बारे में हमारा ज्ञान अपूर्ण है। भागवत पुराण में कहा है कि बाह्लिक देश (११) अथवा बेक्ट्रिया में तेरह यवन (११) अथवा ग्रायोनियम राजाओं ने राज्य किया था जिनमें कि एक राजा पुष्पमित्र (११) दुर्मित्र (११) हुआ था। किन्तु वह अपने पिता का उत्तराधिकारी नहीं बन सका क्योंकि इस बीच मिनान्डर (१२) शासक हो गया। इस अन्तिम विजेता का भी मुझे 'सूरसेनी' में एक पदक मिला है जो विजय की स्मृति में बनाया गया था क्योंकि इसमें स्वर्गीय शान्ति के परों वाले दूत कार्यरत हैं जिसके हाथ में ताड़ वृक्ष की एक शाखा है। ये दोनों बेक्ट्रियन इतिहास के रिक्तस्थान की पूर्ति करेंगे, चूँकि मिनेण्डर उनके लिए बहुत विख्यात है। यदि एरियन न होता तो एपोलोडोटस लुप्त हो गया होता जो कि भड़ौंच जिसे संस्कृत में भृगु कच्छ और यूनानी में बरगाज कहते हैं में एक व्यापारी प्रतिनिधि था जिसने "पेरीप्लस आफ दी एरीथ्रियन सी" नामक ग्रन्थ दूसरी शताब्दी में लिखा।

एरियन की सूचना के बिना मेरे एपोलोडोटस का मुख्य आधार खो गया होता। मेरे यूरोप में आने के पश्चात् बुखारा में प्राप्त डिमिट्रियस के पदक के विद्यमान होने का भी मुझे पता लगा है जिस पर सेंटपीटर्सबर्ग के एक विद्वान ने निबन्ध लिखा है।

१२ हरि' का द्वार जहाँ उनका त्रिशूल विद्यमान है।

१३ विल्फर्ड का कथन है कि इस घटना का वर्णन दो पुराणों में मिलता है। उनके अनुसार महाभारत युद्ध के पश्चात छठी अथवा आठवीं पीढ़ी में हस्तिनापुर का विध्वंस हुआ। जो भी वोमाव गये हैं उन्होंने उस स्थान को देखा होगा जहाँ कि गंगा और यमुना ने अपना बहाव मार्ग बदला है।

---

(११) श्रीमद्भागवत १२।१।३४ में तेरह बाह्लिक राजाओं का होना लिखा है।

(क) श्रीमद्भागवत १२।१।३४ के अनुसार "इनके पश्चात् पुष्पमित्र नामक क्षत्रिय और उसका पुत्र दुर्मित्र पृथ्वी का भोग करेंगे'।

(ख) इससे पूर्व केवल आठ यवन राजाओं का होना लिखा है (श्रीमद्भागवत १२।१।३)।

(१२) मिनेण्डर उपयुक्त डिमिट्रियस (डेमिट्रियस) का समकालीन नहीं था वह उसके बहुत पश्चात् हुआ था।

में से एक यहीं रहता था जो सम्भवतः चन्द्रगुप्त का पुत्र नरूसार (१२) हो जिसको सिकन्दर के इतिहासकारों ने अबिसरस (१३) और सेन्ड्रोकोटस (१४) लिखा है। ग्रीक लेखकों द्वारा वर्णित दो पोरस राजाओं में से एक तो पुरु वंशियों के इस प्राचीन केन्द्र (१५) में ही रहता था दूसरे का स्थान पंजाब की सीमा पर था। इससे यह प्रतिपादित होता है कि सिकन्दर के समय के दोनों पोरस नामक राजा चन्द्र-वंश की सन्तान थे और इससे मेवाड़ के राजाओं [१४] को पोरस का वंशज बताने वाले लेखकों [१५] की बात का खंडन होता है।

हस्ती से तीन विशाल वंश-शाखायें निकलीं, अजमीढ देवमीढ और पुरमीढ। अन्तिम दो तो हमारी दृष्टि से लुप्त हैं किंतु अजमीढ की सन्तानें भारतवर्ष के समस्त उत्तरी भागों पंजाब और सिंध के दूसरी ओर तक फैल गई था यह काल सम्भवतः ईसा से सोलह सौ वर्ष से पूर्व (१६) का था।

अजमीढ [१६] के पश्चात चौथी पीढ़ी में बाजस्व नामक राजा हुआ जिसने सिन्धु की ओर के भूभाग पर अधिपत्य किया और उसके पांच पुत्रों ने पांच नदियों वाले भाग पंजाब को पांचाल (१८) नाम दिया। कनिष्ठ मा?

---

१४ यदि इस सम्बन्ध में अन्य इड़ प्रमाण दिये जाय तो मेवाड़ के राजवंश की प्राचीनता को इसके विरुद्ध किसी भी भांति एक निर्णायक तर्क नहीं माना जा सकता। किन्तु उसी समय सूर्य-वंश को चन्द्र-वंश तथा सिन्ध के पश्चिम से भारत में प्रवेश करने वाली नवीन जातियों ने कालान्तर में उन्हें पूर्णतया स्थानच्युत कर दिया था।

१५ सर टामस रो सर टामस हर्बर्ट (प्रौरिन्टियल ??) राजपूत हौस्टडीन डेला वले तथा अपने संग्रह में वर्णित इन्हीं लेखकों से उद्धृत कर लिखने वाले व अलवीले बेयर ग्रोग्स ??? आदि।

१६ अजमीढ को उसकी पत्नी नीला (१६) द्वारा पांच पुत्र (१७) हुए, जिन्होंने अपनी वंश शाखाएं सिन्ध नदी के दोनों ओर फैलाईं। तीन के सम्बन्ध में पुराण मौन हैं जिसका अर्थ यह हुआ कि वे कहीं दूर देशों में चले गये। यह सम्भव है कि वे मेडेस वंश के जन्म-दाता रहे हों? मेडस लोग आदि पुरुष मनु के तीसरे पुत्र ययाति की संतान हैं। और मेडस शाखा का संस्थापक 'मेडाई' यवन के वंश का था। बाजस्व शाखा का पैतृक नाम अजमीढ 'अजा' अर्थात् बकरे के नाम पर है। धर्म-पुस्तक बाइबिल में मसीरियन मीडी को बकरे के नाम से प्रदर्शित किया गया है।

(१२) अबिसरस' चन्द्रगुप्त का पुत्र नहीं था। अपितु कश्मीर की ओर के अभिसार देश (झेलम और चन्द्र-भागा नदी के मध्य के प्रदेश) का आदि राजा होना चाहिये क्योंकि इस समय तो चन्द्रगुप्त स्वयं भी राजा नहीं बन पाया था।

(१३) इसे दूसरे अध्याय में पृ० ४१ पर हमारी टिप्पणी संख्या २६।

(१५) सिकन्दर के इतिहास-लेखकों ने पोरस नाम के जिन दो राजाओं का वर्णन किया है उनमें से एक भी हस्तिनापुर का शासक नहीं था। सिकन्दर से युद्ध करने वाले पोरस का राज्य झेलम और चिनाब का मध्य-वर्ती देश था और दूसरा पोरस चिनाब और रावि के मध्य के (गोंडलबार) प्रदेश का स्वामी था।

(१६) समय बहुत पूर्व का है। विस्तृत चर्चा आगे पांचवें अध्याय में होगी।

(१७) अजमीढ की 'नलिनी' नाम की भार्या थी। उनके नील नामक एक पुत्र हुआ। ॥२६॥ नील के शान्ति शान्ति के सुशान्ति सुशान्ति के पुरञ्जय पुरञ्जयके ऋक्ष और ऋक्ष के हर्यश्व नामक पुत्र हुआ। ।२७-२८॥ हर्यश्व के मुद्गल सृञ्जय बृहदिषु यवीनर और काम्पिल्य नामक पाँच पुत्र हुए।

(१८) पिता ने कहा था कि मेरे ये पुत्र मेरे आश्रित पाँचों देशों की रक्षा करने में समर्थ हैं इसलिए ये पाञ्चाल कहलाये ।।२६।। [श्री विष्णु पुराण चतुर्थ अंश श्लोक ५६ से ५६।]

कम्पिल द्वारा स्थापित राजधानी का नाम कम्पिल नगर पड़ा [१७]।

अजमीढ़ की दूसरी पत्नी केशिनी से उत्पन्न सन्तानों ने एक दूसरा राज्य और राजवंश स्थापित किया जो उत्तर भारत के गौरवपूर्ण इतिहास में अत्यन्त प्रसिद्ध है। यह कुशिक राज-वंश है।

कुश के चार पुत्र थे उनमें से दो कुशनाभ और कुशाम्ब दन्तकथाओं में बहुत प्रसिद्ध हैं और उनके द्वारा स्थापित नगर आज भी विद्यमान है। कुशनाभ ने गंगा के किनारे महोदया नगरी बसाई जिसका नाम बाद में कान्यकुब्ज अथवा कन्नौज पड़ गया जिसकी प्रसिद्धि मुसलमान आक्रमणकारी शहाबुद्दीन के ११९३ ई० के आक्रमण तक थी। इस आक्रमणकारी ने उस अत्यन्त विशाल नगर को नष्ट भ्रष्ट कर दिया। उसको प्रायः गाधीपुर भी कहा गया है। पूर्व में नगरों को अनेक नाम देने की प्रथा ने इतिहास को अत्यन्त हानी पहुँचाई है। अबुलफजल ने हिन्दू लेखकों से कन्नौज का वर्णन लिया है और यदि ऐसे विषयों पर दिल्ली सम्राट् पृथ्वीराज के भाट कवि चन्द के लेख को प्रमाणिक मानें तो उससे बहुत कुछ सामग्री प्राप्त होती है। फरिश्ता ने लिखा है कि अपने प्राचीन दिनों में कन्नौज का घेरा पच्चीस कोस था और केवल पान की सुपारी बेचने के लिये ही उसमें तीस हजार दुकानें थीं और नगर की यह स्थिति छठी शताब्दी में थी जब कि पांचवीं शताब्दी (१९) के अन्तिम समय से राठौड़ वंश उस पर शासन करता आया था। यह राजवंश बारहवीं शताब्दी में राजा जयचन्द (१९क) के साथ साथ समाप्त हो गया।

कुशाम्ब ने भी अपने नाम पर कौशम्बी [१८] नामक नगर बसाया था। यह नाम ग्यारहवीं शताब्दी में विद्यमान था और यदि कन्नौज से दक्षिण की ओर गंगा के किनारे पर पता लगाया जाय तो उसके खण्डहर सम्भवतः अभी भी प्राप्त हो जायेंगे।

दूसरे दो पुत्रों ने धर्मारण्य और वसुमती नामक दो राजधानियाँ स्थापित कीं किन्तु उन में से किसी का भी सही ज्ञान उपलब्ध नहीं है।

कुरु के दो पुत्र थे। सुधनु और परीक्षित। प्रथम के वंशजों की जरासन्ध के साथ समाप्ति हो गई जिसकी राजधानी बिहार प्रान्त में गंगा नदी के तट पर राजगृह (२१) वर्तमान राजमहल (२१) थी। परीक्षित की सन्तानों में शान्तनु और बाह्लीक सम्राट् उत्पन्न हुए, प्रथम के वंश में महाभारत युद्ध में आपस में लड़ने वाले युधिष्ठिर और दुर्योधन उत्पन्न हुए और दूसरे से बाह्लीक पुत्र उत्पन्न हुए।

---

१७. इस वंश में पांच पाण्डव भ्राताओं की पत्नी द्रोपदी का जन्म हुआ था। यह प्रथा सीथियन लोगों में विशिष्ट रूप से प्राप्त होती है।

१८. गंगा पर कड़ा नामक स्थान में एक शिलालेख प्राप्त हुआ है जिसमें यशपाल कौशाम्बी देश का राजा बताया गया है। विल्फर्ड ने पौराणिक भूगोल-सम्बन्धी निबन्ध में कौशाम्बी (?) को इलाहाबाद के निकट बताया गया है। (एशियाटिक रिसर्चेज खण्ड ९,१४)।

---

(१९) कन्नौज पर राठौड़ वंश का अधिकार ईसा की ८वीं शताब्दी में था। [रासमाला (हिन्दी) प्रथम भाग (पूर्वार्द्ध) पृ ४९]। ईसा की चौथी अथवा पांचवीं शताब्दी में इस नगर पर गुप्त वंश का अधिकार था। [गुप्त साम्राज्य का इतिहास प ८२ का मान चित्र।]

(१९क) जयचन्द वस्तुतः गाहड़वाल था राठौड़ नहीं। विस्तृत विवरण हेतु देखें—ओझा जी कृत राजपूताने का इतिहास जोधपुर प्रथम खण्ड पृ ३५ १४४ रेऊ जी ने गाहड़वालों को राठौड़ों की एक शाखा माना है देखें—Glories of Marwar & the Glorious Rathores P VIII p p. 38–47

(२०) इलाहाबाद से ३ मील उत्तर में यह नगर था। यह स्थान अब 'कोसम' नाम से प्रसिद्ध है।

(२१) राजगृह (बिहार में स्थित आधुनिक राजगिर) का नाम राजमहल नहीं है। राजमहल नामक नगर वर्तमान बिहार प्रदेश के संथाल परगने (जिला) में है।

कुरु के राजसिंहासन का उत्तराधिकारी दुर्योधन प्राचीन राजधानी हस्तिनापुर में राज्य करता था जब कि छोटी पांडव शाखा के युधिष्ठिर ने यमुना नदी के तट पर इन्द्रप्रस्थ नगर स्थापित किया जिसका नाम आठवीं शताब्दी में बदल कर देहली हो गया।

बाल्हीक पुत्रों ने दो राज्य स्थापित किये गंगा के निचले भाग में पालीबोथरा और शल्य द्वारा स्थापित सिन्धु के पूर्वी किनारे पर आरोर[२१]।

२१ आरोर अथवा आलोर अत्यन्त प्राचीन काल में सिन्ध की राजधानी थी। बखर के निकट सिन्धु नदी की एक शाखा पर स्थित पुल ही सिकन्दर की राजधानी सोपड़ी का एक-मात्र अवशेष है। परमार-वंश की सोढ़ा शाखा ने इस भूभाग पर अत्यन्त प्राचीन काल से शासन किया है और अभी कुछ ही काल पूर्व तक उनके वंशज अमरकुमरा और अमरकोट के स्वामी थे। इसी प्रदेश में आरोर नगर था।

शल्य और उसकी राजधानी अबुलफज़ल को ज्ञात थी परन्तु वह इसके स्थान से अपरिचित था जिसको उसने देबिल या देवल लिखा है वह इस समय बत्ता कहलाता है। एक पश्चिमी इतिहास लेखक ने उसका वर्णन इस प्रकार किया है "प्राचीन काल में सिहरिस (शल्य) नामक एक राजा था जिसकी राजधानी आलोर थी और उत्तर में काश्मीर एवं दक्षिण में समुद्र तक का उसका राज्य फैला हुआ था।

शल्य (२२) अथवा सिहर (२२) उस देश का और सेहराई (२२) वहाँ के राजाओं तथा वहाँ के निवासियों का उपनाम पड़ गया।

ऐसा प्रतीत होता है कि आलोर सिगर्डिस राज्य की राजधानी था जिसको बक्ट्रिया के मिनेण्डर ने विजय किया था। अरब देश निवासी भूगोल-वेत्ता इब्नहौकल ने इसका वर्णन किया है परन्तु लिखने में एक नुक्ता अधिक लग जाने से आरोर के स्थान पर अजोर या अरोर हो गया। यही नाम सर डब्ल्यू औसले के अनुवाद में है।

ख्याति-प्राप्त डी एन्विल ने भी इसका वर्णन किया है परन्तु उसका स्थान न जानने से उसने अबुल फिदा के लेख को उद्धृत करते हुए लिखा है कि वैभव में आलोर मुल्तान के बराबर था।

हिन्दुस्तान के उत्तरी भाग की कई प्राचीन राजधानियों का अनुसंधान-कर्ताओं में कहा जा सकता है; यमुना पर भारतों की राजधानी सूरपुर सिन्धु के तट पर सोढ़ों की राजधानी आलोर, परिहारों की राजधानी मन्दोदरी (२३) [मंडोर] अरावली पर्वत की तलहटी में अमरावती और गुजरात में बाल्हीकरायों की राजधानी बल्लभीपुर जिसको अरब के यात्रियों ने बलहारा (२४) कहा है।

यह सम्भव है कि सौराष्ट्र के बल्ला (२५) राजपूतों ने बल्लभीपुर का नामकरण किया हो जो बाल्हीक वंशीय राजा शल्य की सन्तान रहे हों। भाट अभी भी उन्हें बल्ला मुल्तान के 'राव' की उपाधि देते हैं (बल्ला और ※

(२२) उस देश का राजाओं का तथा वहाँ के निवासियों का 'शल्य' अथवा सेहरिस [जिसका शुद्ध नाम श्रीरूप होना चाहिये] से कोई सम्बन्ध नहीं पाया जाता। सहरा' अरबी में जंगल को कहते हैं और उसी से महराष्ट्र की उत्पत्ति हुई है।

(२३) इस नगर का संस्कृत नाम 'मांडव्य पुर' है, न कि 'मन्दोद्री'। इसे अब 'मंडोर' कहते हैं।

(२४) अरब के यात्रियों ने 'बलहरा' शब्द बल्लभीपुर के राजाओं के लिए नहीं अपितु दक्षिण के राठोड़ों के लिये प्रयुक्त किया है। यह शब्द बल्लभराय का भ्रष्ट स्वरूप है, जो उनकी पदवी ही थी। अरबों ने स्पष्ट लिखा है कि उनकी राजधानी मानकेर [मान्य खेट] थी और उनके देश की भाषा कन्नड़ थी।

(२५) टॉड शल्य-वंशी बल्ला [बाल्हीक] राजपूतों से बल्लभीपुर का नाम पड़ना मानते हैं किन्तु शल्यवंशी राजपूत चन्द्र-वंशी हैं और बल्लभी वाले सूर्य-वंशी माने जाते हैं।

ययाति के वंश—वृक्ष की एक बड़ी शाखा उरु अथवा उर्वसु, जिसको कई लेखकों ने तुर्वसु लिखा है, का वर्णन अभी तक नहीं किया गया है।

उरु एक राज-वंश का मूल पुरुष था जिसके राजाओं ने कई साम्राज्य स्थापित किये।

उरु से आठवें राजा विरत के आठ पुत्र हुए उनमें से मुख्यतः दो की बड़ी वंश शाखायें द्रुह्यु और बभ्रु प्रस्फुटित हुई।

द्रुह्यु से उत्तर में एक राज–वंश स्थापित हुआ। कहते हैं कि आर (आरब्ध) और उसके पुत्र गांधार ने एक राज्य स्थापित किया था। प्रचेत के विषय में कहा जाता है कि वह म्लेच्छ देश का राजा हो गया।

यह वंश दुष्यन्त के साथ समाप्त हो गया (२७) जो सुप्रसिद्ध शकुन्तला का पिता (२६) था और जो भरत से ब्याही (२६) गई थी। ऐसा कहा जाता है कि किसी ऋषि ने स्वयं को अपमानित किये जाने पर अप्रसन्न होकर उस वंश को अत्यन्त कठिनाइयों में डाल दिया।

दुष्यन्त के चार पुत्रों ने (२७) कालिंजर केरल पंड और चौल राज्य अपने ही नाम पर स्थापित किये।

'कालिंजर' बुन्देलखण्ड में एक प्रसिद्ध दुर्ग है वह अपनी प्राचीनता के लिए इतना प्रसिद्ध है कि उस पर लोगों का बहुत ध्यान गया है।

दूसरे पुत्र केरल के सम्बन्ध में इतना ही ज्ञात है कि वह बारहवीं शताब्दी में छत्तीस राजवंशों में से एक वंश उसका भी था किन्तु उसकी राजधानी का पता नहीं है।

पाड द्वारा स्थापित राज्य मालाबार के किनारे वाले भूभाग पर हो सकता है जिसको हिन्दू पांड्य मण्डल कहते हैं और पश्चिम के भूगोल शास्त्रियों को जो पाण्ड्य के नाम से ज्ञात है और सम्भवतः तंजोर जिसकी वर्तमान राजधानी है।

चौल [१] सौराष्ट्र प्रायद्वीप में है और बगदाद की ओर समुद्र के किनारे पर अब तक उसका वही नाम है।

बभ्रु से उत्पन्न अन्य वंश शाखा भी प्रसिद्ध हुई। चौतीसवें राजा अंग ने अंग देश स्थापित किया जिसकी

---

१६. (मुल्तान-बाल्हीक पुत्रों की राजधानी थे)। यह भी असम्भव नहीं है कि भारतीय हरवंशीय बलराम, जिसने कि महाभारत के युद्ध के पश्चात भारत त्याग किया था की एक छोटी वंश शाखा ने बल्लिक अथवा बाल्ख बसाया हो। जसलमेर के ऐतिहासिक लेखों में यह वृत्तान्त मिलता है कि चन्द्र-वंश को यदु और बाल्हीक शाखाएं उक्त महायुद्ध के पश्चात खुरासान में राज्य करती थीं, जो ग्रीक लेखकों की 'इण्डो-सीथियन' जातियाँ थीं।

बल्लिक (बाल्हीक) तथा इण्डो–सीथीय की अनेक शाखाओं के सिवाय बहुत से कुरु के पुत्र भी इन प्रदेशों में फैल गये थे जिनमें हम पुराणों में वर्णित 'उत्तर कुरु' को भी सम्मिलित कर सकते हैं जिसको यूनानियों ने 'आटरोकुरी' लिखा है। सुम और चन्द्र वंशीय दोनों जातियाँ अपने यहाँ की विशेष आत्माओं को दूर दूर देशों में हमेशा के लिए भेजा करती थीं। उस समय सम्भव है कि सिन्धु नदी के पूर्व और पश्चिम में बसने वाली इन जातियों में अनादि काल से एक ही धर्म प्रचलित रहा हो।

२ समुद्र के किनारे चौल से जूनागढ़ की ओर यात्रा करने पर चौल से सात मील दूर एक प्राचीन नगर के खंडहर मिलते हैं।

---

(२६) शकुन्तला दुष्यन्त की पत्नी थी और भरत की माता थी।
(२७) दोनों मत भिन्न हैं।

चम्पापुरी [११] राजधानी थी जो सम्भवत: ईसा से लगभग पन्द्रह सौ वर्ष पूर्व कन्नौज की स्थापना के काल में ही स्थापित की गई थी। उसी के साथ अंग वंश का पैतृक नाम भी परिवर्तित हो गया और अंग जाति ने प्राचीन हिन्दू इतिहास में अत्यन्त प्रसिद्धि प्राप्त की और आज तक भी चीन देश की सीमा पर स्थित तिब्बत के ऊंचे पर्वतीय भागों को अंग देश कहा जाता है।

पृथु (पृथुसेन) के साथ अंग वंश की समाप्ति होती है और क्योंकि वह महाभारत में विनाश से बच गया था इसलिए यह भी सम्भव है कि उसके वंशज उन प्रदेशों में फैल गये जहाँ जाति प्रथा का प्रचार नहीं था।

इस प्रकार हम ने शीघ्र गति के साथ मनु और बुध से राम कृष्ण युधिष्ठिर और जरासंध तक के राज-वंशों का वृत्तान्त दिया है और यह आशा है कि कुछ नवीन बातें स्थापित की गई हैं और सम्भवत: इससे सम्पूर्ण दंतकथाओं की विश्वसनीयता में भी वृद्धि हुई है।

उनके द्वारा स्थापित समस्त बड़े-बड़े नगरों के खण्डहरों का अभी भी पता लगाना शेष है। सरयू पर स्थित इक्ष्वाकु और राम का नगर यमुना पर स्थित इन्द्रप्रस्थ मथुरा सूरपुर प्रयाग नर्मदा पर स्थित महेश्वर, सिन्ध नदी पर स्थित अरोर और अरब-सागर के किनारे पर स्थित कुशस्थली द्वारिका में से प्रत्येक की अपनी प्राचीन सभ्यता के स्मारक अब भी मिलते हैं। शोध द्वारा अन्य नगरों के खण्डहरों का भी पता लग सकता है।

पंचाल में अब तक बहुत सा प्रदेश अज्ञात पड़ा है। उसकी राजधानी कम्पिला नगर थी और उसके साथ ही सिन्धु के पश्चिम में अन्य नगर भी बाहरत के पुत्रों ने बसाये थे।

यदि कोई प्रगतिशील यात्री ट्राम्सोक्सियाना के भीतरी भागों में प्रवेश कर सिरोपोलिस (२८) और सिकन्दरिया के सबसे उत्तरी भागों का निरीक्षण करे वास्तव में तथा बर्मियां की कन्दराओं के भीतर खोज करे, तो वह सम्भवत प्राचीन इण्डो-सीथियन जातियों के अवशिष्ट चिह्नों का पता लगा सकेगा।

भारतवर्ष के मैदानों में प्राचीन नगर अभी तक अवस्थित हैं जिनके खण्डहरों से ज्ञान के प्रस्तुत भण्डार में बहुत कुछ वृद्धि की जा सकती है और वहाँ ऐसे शिलालेख प्राप्त किये जा सकते हैं जो यद्यपि अभी पढ़े नहीं जा सके किन्तु शोध के इस युग में उनका अर्थ अवश्य ही निकाल लिया जायगा। इस दृष्टि से हर तरह शोध-कार्य प्रारम्भ किया जाना चाहिये और जब एक बार महत्वपूर्ण गुत्थी को सुलझाने वाले किसी एक स्रोत का पता लग जायेगा तो समस्त बातें एक दूसरे पर प्रकाश डाल देंगी। जहाँ कहीं भी कुरु और यदु वंश की जातियां गई हैं वहाँ प्राचीन हिन्दू अबोध शिला-लेख दृष्टिगत होते हैं।

यह लेखक अत्यन्त ही सरल सिद्ध होगा जो पुराणों की ऐतिहासिक और भौगोलिक सामग्री का अधिक उत्तम

---

२१ रामायण में राजा दशरथ द्वारा अंग देश के राज्य-संस्थापक से दूसरी पीढ़ी में राजा सोमपाद की राजधानी चम्पामालिनि को की गई यात्रा का वर्णन मिलता है उससे यह स्पष्ट होता है कि अंग देश एक आयन्त ही घन लोम देश था और दशरथ के मार्ग में घने जंगल और बड़ी-बड़ी नदियाँ पड़ी थीं। कर्नल फ्रैंकलिन ने पालिबोथरा विषयक निबन्ध में चम्पामालिनि नगर जाने बंगाल के भाग को अंग देश लिखा है जो मेरे मतानुसार अर्मभव बात है (२६)।

---

(२८) अगशर्मीस अर्थात महून नदी पर का प्राचीन नगर जा ईरान के बादशाह मीरस का बसाया माना जाता है।

(२६) यहाँ टाड का मत गलत और कर्नल फ्रैंकलिन का लिखना ठीक था।

और सार-पूर्ण संग्रह तैयार करेगा। किन्तु हमें यह विचार अस्वीकार कर देना चाहिये, कि राम की कथा, कृष्ण का महाभारत और पांचों पांडव [३०] मात्र ये सभी रूपक-मात्र हैं जैसा कि कुछ लोग सोचते हैं; क्योंकि उनके नगर और उनकी मुद्रायें अभी तक विद्यमान हैं। इन्द्रप्रस्थ प्रयाग और मेवाड़ के स्तम्भों पर, मकनली बीजोल्यों (३१) तथा जूनागढ़ [३२] की चट्टानों पर और भारतवर्ष में सब ज फैले हुये जैन मन्दिरों में प्राप्त लेखों के अक्षरों का यदि ज्ञान प्राप्त कर लें तो हम अवश्य ही उचित और संतोषजनक सार निकाल सकेंगे।

---

२२ पांडवों तथा हरिकुलियों (कृष्ण बलदेव) का इतिहास और उनकी वीरता के कार्य भारत के दूर-दूर भागों में प्रसिद्ध हैं, अर्थात सौराष्ट्र के जलाच्छादित पर्वतों हिडम्ब तथा विराट के घने जंगलों और गुफाओं में (जो अब तक जंगली भीलों तथा कोलियों के आश्रय-स्थान हैं) अथवा चर्मण्वती (चम्बल) के पथरीले किनारों पर। जनश्रुति में प्रसिद्ध है कि यमुना तट पर से निकाले जाने पर ये वीर पुरुष इनमें से प्रत्येक स्थान में रहते थे। पर्वत में काट कर बनाई गई विशाल मूर्तियां प्राचीन मन्दिर और गुफाएं जहां पर खुदे हुए लेखों की लिपि अब तक पढ़ी नहीं जाती है ये सब पांडवों (३०) के बताये जाते हैं, जिनसे पौराणिक कथा की पुष्टि होती है।

९ प्राचीन दुर्ग—जूनागढ़—इसी नाम से यह प्राचीन राजधानी गिरनार पर्वत की तलहटी में बसी हुई है। अबुलफजल ने लिखा है कि चिरकाल तक यह उजाड़ और अज्ञात रही। और अकस्मात इसका पता लग गया। जनश्रुति से कुछ भी हाल ज्ञात न होने से इस को जूना (पुराना) गढ़ (किला) कहते हैं। मुझे इसमें कुछ भी सन्देह नहीं है कि यह ग्रेहलोतो (गुहिलोतों) के ऐतिहासिक लेखों में वर्णित असिल दुर्ग (३२) अथवा असिल गढ़ है, जिसमें यह कहा गया है कि राजा असिल ने एक दुर्ग गिरनार पर्वत के निकट अपने नाम पर निर्मित कराया, जिस के लिये उसके मामा जादौ राजा की स्वीकृति प्राप्त हुई थी।

---

(३०) नासिक अजंता एलोरा कार्ला भाजा, बेड़सा नानाघाट आदि प्राचीन गुफाओं को वहाँ के लोग पांडवों की बनाई हुई बताते हैं, परन्तु उनमें खुदे हुए लेखों से प्रगट होता है कि वे पांडवों की बनाई हुई नहीं थीं। वे बाद के काल में भिन्न-भिन्न बौद्ध, जैन अथवा वेद मतावलम्बी लोगों की बनवाई हुई हैं।

(३१) बीजोल्यों से कुछ दूर दो चट्टानों में से एक पर चौहान-वंश के राजा सोमेश्वर के समय का वि० सं० १२२६ का बृहद् लेख है। दूसरी पर 'उन्नत शिखर पुराण' नामक जैन पुस्तक है जो उसी संवत् में वहाँ अंकित की गई थी।

(३२) जूनागढ़ का नाम असिलगढ़ होना नहीं पाया जाता। उक्त नगर के पास की चट्टान पर एक ओर अशोक की १४ धर्माज्ञायें और दूसरी ओर क्षत्रप वंश के राजा रुद्र दामा का शक संवत् ८० (वि० सं० २१५) के आसपास का लेख तथा गुप्त वंश के राजा स्कन्द गुप्त के समय का गुप्त संवत् १३८ [वि० सं० ५१४] का लेख खुदा हुआ है। उसमें इस शहर का नाम गिरि नगर लिखा है।

★

अध्याय ५

राम और कृष्ण की संतानों से उत्पन्न राज-वंश पांडु वंश से भिन्न भिन्न राज वंशों का राज्य काल

इक्ष्वाकु से राम तक और बुध (इन्दु वंश[1]) का संस्थापक और शाक द्वीप अथवा सीथिया से भारतवर्ष में प्रवेश करने वाला (१) उस वंश का प्रथम पुरुष) से कृष्ण और युधिष्ठिर तक की वंश-परम्परा का निरीक्षण करने के पश्चात् जो कि लगभग १२०० (बारह सौ) (२) वर्षों का काल होता है हम वंशावलियों के द्वितीय विभाजन अथवा द्वितीय वंश वृक्ष को लेते हैं।

स्वयं को सूर्य-वंशी बताने वाली समस्त जातियाँ जैसे कि मेवाड़ जयपुर, मारवाड़ बीकानेर के वर्तमान राजा और उनके अनगिनित कुल अपने को राम का वंशज मानती हैं तथा जैसलमेर और कच्छ (भट्टी[2] जाड़ेजा वंश) के राजकुल जो भारतीय मरु भूमि में सतलज नदी से समुद्र तक फैले हुए हैं अपने को चन्द्र (इन्दु) वंश के बुध और कृष्ण की सन्तान होना मानते हैं।

राम का काल कृष्ण से पूर्व का माना जाता है किन्तु उनके इतिहासकार वाल्मीकि और व्यास जिन्होंने उनके समय की घटनाओं को स्वयं देखा और लिखा है समकालीन थे (३) अतः दोनों महापुरुषों के कालों के मध्य अधिक वर्षों का अन्तर नहीं होना चाहिए (३)।

---

१ इन्दु, सोम अथवा चन्द्र का पर्यायवाची है। इसलिए चन्द्र-वंश, सोम-वंश अथवा इन्दु-वंश किसी भी शब्द का प्रयोग किया जा सकता है। सम्भवतः वर्तमान हिन्दु धर्म का मूल भी इन्दु ही हो।

२ विजय और धन पराजीत बाड़ की जागीर, जिसकी राजधानी अमरकोट है भाटियों और जाड़ेजों को अलग करती है। बाड़ अब सिन्ध में सम्मिलित है। वहाँ का राजा सोढ़ा जाति का परमार है, जो प्राचीन काल मे सारे सिन्ध देश के स्वामी थे।

---

(१) बुध' की उत्पत्ति 'चन्द्रमा' से मानी गई है (श्रीमद्भागवत ६।१४)। 'चन्द्रमा' की उत्पत्ति 'अत्रि' से मानी जाती है अतः बुध का कहीं बाहर से आने का प्रश्न ही नहीं उठता।

(२) हम यहाँ इस पर विस्तृत चर्चा न करके छोटे रूप में युग गणना प्रस्तुत करते हैं। 'पार्जीटर' तथा कुछ भारतीय विद्वानों के मतानुसार निम्न समय तो अवश्य होना ही चाहिए।

सतयुग (राजा) ४०×२० [एक राजा का राज्य काल] = ८०० वर्ष
त्रेता (राजा) २५×२० [एक राजा का राज्य काल] = ५०० वर्ष
द्वापर (राजा) ३०×२० [एक राजा का राज्य काल] = ६०० वर्ष। योग = १९०० वर्ष

(३) 'वाल्मीकि और व्यास' दोनों समकालीन नहीं थे। राम और कृष्ण के काल के सम्बन्ध में देखें अध्याय तीसरे में पृ. ५५ पर हमारी टिप्पणी संख्या ४।

सूर्य-वंश और चन्द्र-वंश के इन महापुरुषों से प्रस्फुटित राजवंशों की वंशावलियाँ इस दूसरी तालिका में दी गई हैं जो तीन[3] हैं।

१—सूर्य-वंशी—राम के वंशज

२—इन्दु-वंशी—पाण्डु पुत्र युधिष्ठिर के वंशज।

३—इन्दु-वंशी—राजगृह के राजा जरासन्ध के वंशज।

राम और जरासन्ध के वंशजों की वंशावलियों के लिए भागवत और अग्नि पुराण प्रामाणिक ग्रन्थ हैं और पाण्डु वंश के लिए 'राज-तरंगिणि' (४) और राजावली (४) है।

वर्तमान सूर्य-वंशी राजपूत जातियाँ स्वयं को राम के पहिले दो पुत्रों (५) लव और कुश की सन्तान मानती हैं मेरा विश्वास है कि वर्तमान राजपूत जातियों में ऐसी कोई जाति नहीं है जो स्वयं को राम के अन्य पुत्रों (५) अथवा राम के भ्राताओं की संतान (६) मानती हो।

मेवाड़ के राणा स्वयं को राम के ज्येष्ठ पुत्र लव के वंशधर (७) मानते हैं उसी भाँति बड़गूजर जाति के लोग जो पहले वर्तमान आमेर वाले प्रदेश में शक्ति-सम्पन्न थे और अब गंगा के किनारे अनूप शहर में वास करते हैं स्वयं को लव का वंशधर मानते हैं।

कुश के वंशधर नरवर और आमेर के कुशवाहा[4] राजा और उनके अनेक कुल हैं। आमेर का राज्य यद्यपि

---

३ चौथी और पाँचवीं अपूर्ण होने से नहीं दी जा सकी है। प्रथम तो राम के पुत्र कुश की सन्तानें जिसके वंशज आमेर और नरवर के राजा स्वयं को मानते हैं; और दूसरी कृष्ण की सन्तानें जिनके वंश में जैसलमेर के राजा स्वयं को उत्पन्न हुआ मानते हैं।

४ आजकल उनको कछवाहा (८) लिखा और बोला जाता है।

---

(४) [क] यहाँ 'कल्हण' प्रणीत राजतरंगिणी का निर्देश नहीं है। टॉड के मतानुसार इसका लेखक विद्याधर जैन था। यह सम्भवतः दूसरी राजतरंगिणी है। इसी अध्याय में आगे इसकी विस्तृत चर्चा है।

[ख] 'राजावली' इसका लेखक 'रघुनाथ' था इसकी भी चर्चा आगे इसी अध्याय में विस्तृत रूप से होगी।

नोट—इस अध्याय में जहाँ भी राज-तरंगिणि और 'राजावली' आवे वहाँ इन्हें दोनों ग्रन्थ [४ क ख] ही समझें।

(५) 'राम' के केवल दो ही पुत्र थे अतः 'पहिले दो पुत्रों' या अन्य पुत्रों का प्रश्न ही नहीं उठता।

(६) हम यहाँ कुछ और क्षत्रिय जातियों का विवरण दे रहे हैं जो अपने को राम के भ्राताओं की सन्तान मानते हैं।

[क] भीनल—लक्ष्मण के बड़े पुत्र अङ्गद को कारुपथ का पश्चिमी भाग (वर्तमान पंजाब का पूर्वोत्तर भाग) राज्य करने को मिला था। (वाल्मीकि रामायण उत्तर काण्ड सर्ग १०२, श्लोक ५–६)

[ख] विसमेन—'लक्ष्मण' के छोटे पुत्र चन्द्रकेतु जिसकी उपाधि मल्ल थी की संतान हैं।

[ग] मल्ल—यह वंश उपयुक्त [ख] 'चन्द्रकेतु' की उपाधि के नाम पर चला था।

(७) मेवाड़ के महाराणा अपनी उत्पत्ति रामचन्द्र के बड़े पुत्र कुश से मानते हैं न कि लव से जो छोटा था।

(८) कछवाहों (कछवाहों) के प्राचीन लेखों में 'कुशवाहा' कहीं भी लिखा नहीं मिलता बहुधा 'कच्छपघात' अथवा 'कच्छपारि' लिखा मिलता है।

अधिक शक्तिशाली है किन्तु उसका राजवंश, नरवर के राजवंश की एक छोटी शाखा है जो लगभग एक हजार वर्ष पूर्व (८) अपने प्राचीन निवास स्थान को छोड़ कर यहाँ आ गये थे। नरवर का राजा विख्यात राजा नल का वंशधर है जो आज उसके प्राचीन विशाल राज्य के एक छोटे से जिले मात्र का स्वामी है।

मारवाड़ का राठौड़ वंश भी स्वयं को इसी वंश शृंखला से उत्पन्न मानता है किन्तु ऐसा लगता है कि वंशजों की एक अशुद्धि से यह भ्रम हो गया जिन्होंने कन्नौज और कौशाम्बी के कौशिक वंश के स्थान पर कुश का वंश समझ लिया। सूर्य-वंश के वंशज भी मारवाड़ के राजाओं की इस मान्यता को स्वीकार नहीं करते।

आमेर के राजा ने अपनी वंशावलियों में मेवाड़[६] के राजवंश का वंशानुक्रम राम के पुत्र लव से सुमित्र तक चलने वाली शाखा से उत्पन्न माना है और कुश[७] से उनके उत्पन्न होने की बात को अस्वीकार किया है जो पुराणों

६ मेवाड़ के राजवंश की यह प्रतिष्ठा चाहे सत्य हो अथवा असत्य किन्तु यह एक वास्तविकता है कि प्रत्येक राणा और हिन्दू विद्वान् मेवाड़ के राणाओं को राम के वंशधर होने की मान्यता को स्वीकार करते हैं और उसके परिणाम स्वरूप हिन्दुओं में न केवल राणा के व्यक्तित्व के प्रति अपितु मेवाड़ के राजसिंहासन के प्रति भी आदर की भावना मिलती है।

जब राणा ने माधाजी सिन्धिया को चित्तौड़ में आ घुसे एक विद्रोही सरदार (१०) को आधीन करने के लिये बुलाया तो इस मराठा सरदार ने अपनी तोप के गोले उस चित्तौड़ की दीवारों पर दागने से इन्कार कर दिया जिसमें कि राम के वंश का राजसिंहासन स्थापित हुआ माना जाता था। यह वही महादजी सिन्धिया था, जो अन्य बातों में कभी भी इस प्रकार की हिचकिचाहट अथवा सिद्धांतवादिता नहीं बरतता था। तब युवक राणा की अपना संकोच दूर करने के लिए स्वयं ही अपने प्राचीन स्थान चित्तौड़ के विरुद्ध अपनी तोप दागनी पड़ी थी।

७ ब्रायंट (Bryant) ने अपनी पुस्तक Analysis में लिखा है कि कुशाइट हाम (११) की सन्तान प्रणाम करने के समय उसके सम्मानार्थ उसका उच्चारण करते थे। इन हिन्दू देशों में भी 'राम-राम' शब्द अभिवादन में साधारणतः बोले जाते हैं और प्रत्युत्तर देने वाला सीता का नाम उसके पति राम के साथ मिला कर प्रायः 'सीता-राम' कहता है।

(८) कछवाहों के राजस्थान आगमन के समय के सम्बन्ध में निम्न विवरण प्राप्त होते हैं।

(क) वीर विनोद २,१२५० के अनुसार "सोढ़देव सम्वत् १०३३ कार्तिक कृष्णा १० (ता २२ सितम्बर सन् ९७६ ई०) को नैषध देश नरवर में अपने पिता के स्थान पर राजा हुए।

(ख) ओझा जी के मतानुसार सन् ११२५ ई० में सोढ़देव ने दौसा में आकर राज्य जमाया।

(ग) टॉड ने इस ग्रन्थ का प्रकाशन सन् १८२९ ई० में कराया अतः

१८२९—९७६=८५३ वर्ष वीर विनोद के अनुसार।

१८२९-११२५=७०४ वर्ष ओझा जी के मतानुसार। ओझा जी ने अपनी टिप्पणी में ७९० वर्ष पूर्व का समय माना है। (टा० रा० हि० प्र० पृ० ८० टि० सं ३)

(१०) संवत् १८४८ में महाराणा भीमसिंह ने सलूम्बर के रावत भीमसिंह को चित्तौड़ से निकालने के लिये माधवजी सिन्धिया से सहायता ली थी। (सरकार: फाल ४ पृ० ६४-६६, ओझा: उदयपुर २ पृ ६८०-२।

(११) कुश के वंशज हाम के पुत्र। ईसाइयों की धर्म पुस्तक बाइबल में 'हाम' को 'नूह' का पुत्र लिखा है। यहाँ टॉड ने 'हाम' को 'राम' से मिलाने की कल्पना की है अन्यथा जब अभिवादन में कोई 'राम-राम' कहता है तो दूसरा भी 'राम-राम' ही कहता है किन्तु कई साधु सीता-राम' अवश्य कहते हैं, तो दूसरा भी उत्तर में 'सीता-राम' ही कहता है। अतः 'हाम' और 'राम' का कोई सम्बन्ध नहीं है।

पुराणों के अनुसार यह प्रतीत होता है कि सूर्य-वंश में राम के पुत्र लव से राजा सुमित्र तक छप्पन (५६) राजा हुए हैं, पर विलियम जोन्स ने सत्तावन (५७) राजा दिखाये हैं।

यदि मेरे मतानुसार इन छप्पन राजाओं के राज्य काल में प्रत्येक का औसत बीस वर्ष माना जाय तो राम और सुमित्र तक का काल ११२० वर्ष (१६) होगा और राम एवं युधिष्ठिर के पूर्व का काल ११०० वर्ष (१७) पहले ही गिना जा चुका है, तो इसका अर्थ यह हुआ कि सूर्य-वंश के संस्थापक इक्ष्वाकु से राजा सुमित्र तक का काल लगभग २२०० वर्ष (१८) का होगा।

राजतरंगिणी (१९) और राजावली (१९) में (पांडु और युधिष्ठिर की शृंखला वाली) चन्द्र-वंश की वंशावली प्राप्त होती है। पंडित विद्याधर (१९) और पंडित रघुनाथ (१९) द्वारा लिखित ये ग्रन्थ जो रजवाड़ों में वंशावलियों और ऐतिहासिक तथ्यों के संग्रह के लिए प्रसिद्ध हैं अपने समय के सर्वाधिक विद्वान आमेर के राजा सवाई जयसिंह के निरीक्षण में तैयार किये गये थे। युधिष्ठिर से विक्रमादित्य तक के इन्द्रप्रस्थ अथवा देहली में राज्य करने वाले राज-वंशों का वृत्तान्त देते हैं। यद्यपि ये ग्रन्थ घटनाओं का वर्णन नहीं देते किन्तु उस अन्धकार-पूर्ण काल के सम्बन्ध में इन ग्रन्थों में बहुमूल्य सूचनायें प्राप्त होती हैं।

---

(१५) श्री हनुमान शर्मा ने नाथावतों के इतिहास में पृ० ११ पर सुमित्र तक ६० नाम दिये हैं।

(१६) हमारे विचार से ६० नाम अधिक ठीक हैं, जो ६०×२०=१२०० वर्ष से कम का समय न होगा।

(१७) देखें इसी अध्याय में पृ ७१ पर हमारी टिप्पणी सं २ तदनुसार—११०० वर्ष।

(१८) १२०० (टिप्पणी सं० १६ के अनुसार)+ ११ ० (टिप्पणी सं० १७ के अनुसार)=२१०० वर्ष होगा।

(१९) इसी अध्याय में टॉड की टिप्पणी सं ११ के अनुसार 'राजतरंगिणी' का लेखक विद्याधर जैन था। पुनः आगे उसकी टिप्पणी सं० २४ के अनुसार इसका रचना-काल सन् १७४० ई था। ओझाजी ने ओझा-निबंध संग्रह में (भाग १ ८८ भाग ३-४ पृ० १११) इन दोनों ग्रन्थों का उल्लेख किया है परन्तु वे दोनों ही उल्लेख एक मात्र टॉड के ही कथन के आधार पर लिखे गये थे। इन ग्रन्थों को ओझा जी ने स्वयं नहीं देखा था।

इसके विपरीत रायल एशियाटिक सोसाइटी लंदन के टॉड संग्रह की सूची में 'राजतरंगिणी' का उल्लेख निम्नलिखित है—

"Ms. No 125—(8) RAJA TARANGINI a sketch history of Kings from the Tirthankara Rsabha s Son, Kuru to Anangapala, by Misra Raghunatha in Sanskrit and Hindi Prose : 18 folios."

उसकी प्रतिलिपि सन् १८२० ई० में की गई थी। अतः यह स्पष्ट है कि टॉड द्वारा उद्धृत 'राजतरंगिणी' रघुनाथ मिश्र कृत ही थी। इसी अध्याय में अपनी टिप्पणी सं २५ में शुकदेव विषयक उद्धरण के लेखक का नाम टॉड ने रघुनाथ ही दिया है।

पुनः अपने इतिहास-ग्रन्थ 'खुलासात्-उत् तवारीख' में (पृ ७ पर) सुजान राय ने (सन् १६९५ ई० में) महत्त्वपूर्ण आधार ग्रन्थों की सूची देते हुए विद्याधर कृत 'राजावली' के साहू (निवाहू ?) राम कृत फ़ारसी अनुवाद तथा पण्डित रघुनाथ कृत संस्कृत ग्रन्थ 'राजतरंगिणी' के मौलाना इमामुद्दीन कृत फ़ारसी अनुवाद का उल्लेख किया है। यों यह स्पष्ट है कि ये दोनों ही ग्रन्थ अवश्य ही ईसा की १६ वीं शताब्दी के अन्त तक लिखे जा चुके होंगे। अतः टॉड का यह कथन कि राजतरंगिणी की रचना सवाई जयसिंह के राज्यकाल सन् १७४० ई० में हुई थी सर्वथा भ्रमपूर्ण है। इस सम्बन्ध में अधिक खोज आवश्यक है।

तरंगिणि जैनियों [११] की देव वंशावली है और आदिनाथ [१२] अथवा ऋषभ देव [१३] से नामावली प्रारम्भ करती है। उपर्युक्त राज-वंशों के प्रमुख–प्रमुख राजाओं का तीव्र गति से वर्णन करते हुए यह धृतराष्ट्र और पाण्डु राजाओं तथा उनकी सन्तति के राज्य-काल तक पहुँचती है और उनके गृह-युद्ध के कारणों का विवेचन करते हुए, महाभारत युद्ध का वृत्तान्त देती है।

प्रत्येक वंश की उत्पत्ति चाहें वह पूर्व का हो अथवा पश्चिम का किसी न किसी कल्पित कथा को लिए हुए है। पाण्डु वंश [१] की उत्पत्ति की कथा को उतना ही विश्वसनीय माना जाना चाहिए, जितनी कि रोमूलस (२०) के जन्म की कथा को अथवा किसी भी अन्य वंश के संस्थापक की कथा को।

इस प्रकार की परम्पराओं [१४] का आविष्कार सम्भवतः पाण्डु–वंश की किसी अशोभनीय घटना को ढकने के लिए किया गया हो जो पूर्व–कथित व्यास की कथा से सम्बन्ध रखती हो जब कि हरिकुलेश की यह शाखा अशुद्ध हो गई अतः पाण्डु की मृत्यु के उपरान्त पाण्डु के भतीजे दुर्योधन (धृतराष्ट्र का पुत्र धृतराष्ट्र अपनी अन्धावस्था के कारण राज्याधिकारी नहीं बन सका था) ने हस्तिनापुर में एकत्रित अपने कुल के समस्त जनों के सम्मुख पाण्डवों का अनौरस होना प्रकट किया था।

किन्तु धर्माचार्यों और स्वयं अन्धे धृतराष्ट्र की सहायता से उसका भतीजा युधिष्ठिर राजधानी हस्तिनापुर में राजसिंहासन का अधिकारी बना दिया गया।

दुर्योधन ने पाण्डवों और उनके सहयोगियों के विरुद्ध इतने अधिक षड्यन्त्र किये कि पाँचों भाइयों को कुछ समय के लिए गंगा नदी पर स्थित अपने पूर्वजों के निवास-स्थान को त्यागना पड़ा। उन्हें सिन्धु नदी पर स्थित अन्य देशों में शरण लेनी पड़ी और सर्व प्रथम पांचालिक देश के राजा द्रुपद ने उन्हें शरण दी जिसकी राजधानी कम्पिल नगर में उसकी कन्या द्रोपदी [१५] के स्वयंवर में आस-पास के समस्त राजा एकत्रित हुए थे। किन्तु उस स्वयंवर का पुरस्कार अपने देश से निष्कासित पाण्डवों को प्राप्त होने वाला था अर्जुन ने धनुर्विद्या की निपुणता से उस सुन्दरी को जीता जिसने कि उसके गले में वरमाला पहनाई। उन निष्कासित पाण्डवों की इस विजय के विरुद्ध एकत्रित राजाओं ने अपना

---

११ शिलापर लेख था। १२. प्रथम तीर्थंकर। १३ नन्दीश्वर।

१४ क्योंकि पाण्डु के कोई सन्तान नहीं हुई थी अतः उसकी रानी ने वशीकरण मन्त्र द्वारा देवताओं का आह्वान किया और उन्हें विचलित कर दिया; धमराज (मिनोज) से उसके युधिष्ठिर पवन (इयोलस) से भीम इन्द्र (जुपिटर सीरोलस) से अर्जुन और देवताओं के चिकित्सक अश्विनी कुमार (एसक्युलेपियस) से नकुल एव सहदेव उत्पन्न हुए।

१५. हमें आमेर नरेश की बुद्धिमानी की प्रशंसा करनी चाहिये जिसने अपने जिरीकल्प में संगृहीत इन वंशावलियों की परम्परा में इन प्राचीन कल्प नियों का समावेश कराया है। इसी राजा ने पुर्तगाल के राजा इमेन्युएल तृतीय से डी सिल्वा को बुलवाया जिसने यूरोप और एशिया की ज्योतिष विषयक सारणियों का मिलान किया था। इसने भारत के समस्त प्रधान नगरों में अपनी प्रिय विषय [ज्योतिष शास्त्र] की वैज्ञानिक निपुणता के स्मारक चिन्ह [वेध शालायें] ऐसे समय में बनवाये जब कि वह युद्ध तथा राजनैतिक कार्यों में लगा हुआ था। इसे प्रशंसा अथवा प्रतिवाद की अपेक्षा नहीं थी।

१६. द्रुपद यादव–वंश का राजा था और अजमीढ़–वंश शृंखला में बाजरथ (अथवा हयाश्व) की सन्तानों में था।

---

(२०) रोमूलस रोम नगर का बसाने वाला था। इसके सम्बन्ध में यह प्रसिद्ध था कि वह विस्टा देवी की पुजारिन सिल्विया से मार्स (मंगल) देवता द्वारा पैदा किया गया था। कुकर्म से उत्पन्न होने के कारण वहाँ के नियमानुसार उसे टाइबर नदी में फेंक दिया गया किन्तु वह बच गया और एक जंगली कुतिया ने अपना दूध पिला कर उसका पोषण किया।

क्रोध प्रकट किया किन्तु अर्जुन के धनुष ने उन सबका नहीं हास किया जो पेनिलोप (२१) से विवाह की आकांक्षा रखने वालों का हुआ था। पाण्डव अपनी दुल्हन को घर लाये और द्रोपदी उन पांच भाइयों की समान रूप से एक ही पत्नी बनी ये रीतिरिवाज[१७] निश्चय ही सीथियन लोगों की तरह के थे।

पाण्डव भ्राताओं के विदेश में किये गये वीरतापूर्ण कार्यों के समाचार हस्तिनापुर में पहुंचे और चक्षुविहीन धृतराष्ट्र के दबाव के कारण पाण्डवों को वापस बुलाया गया आन्तरिक विरोध को समाप्त करने के लिये उसने जैसे तैसे पाण्डवों को राज्य का बटवारा कर दिया। उसके पुत्र दुर्योधन हस्तिनापुर अपने पास रक्खा। युधिष्ठिर ने नई राजधानी इन्द्रप्रस्थ की स्थापना की तथा महाभारत के कुछ काल पश्चात् अपने पौत्र (२४) परीक्षित को सिंहासन दे दिया जिसने अपने नाम से एक नया संवत् (२५) आरम्भ किया जो ग्यारह सौ वर्षों (२५) तक चला। उसके पश्चात् उसी धाति के उज्जैन के तंवर राजा विक्रमादित्य (२६) ने इन्द्रप्रस्थ विजय कर यह संवत् समाप्त किया और अपने स्वयं के नाम का संवत् चलाया।

पाण्डु राज्य के टुकड़े होने के पश्चात् इन्द्रप्रस्थ के नये राज्य ने हस्तिनापुर के राज्य को समाप्त कर दिया। पाण्डव भ्राताओं ने आस-पास के समस्त राज्यों को अपने आधीन[१८] किया और उनके राजाओं को कर देने के इकरारनामों

---

१७ यह विवाह हिन्दू भावना के अत्यन्त विपरीत था किन्तु इसके बारे में विशेष प्रकाश नहीं डाला जाता। द्रौपदी के पांच पतियों वाले तथ्य को स्वीकार तो किया गया है किन्तु उस समय में उसके राष्ट्रीय प्रथा होने की बात को न जानने के कारण कई अर्थ व तर्क पीछे से सम्मिलित कर दिये गये हैं। जैसलमेर वंश के पूर्वजों में जो इसी वंश से निकले थे, प्राचीन काल में कनिष्ठ पुत्र (२२) राज्य का उत्तराधिकारी होता था यह भी एक सीथियन अथवा तातारी प्रथा थी।

हेरोडोटस ने यतों के रीति-रिवाजों का जो वर्णन किया है, वह आज भी उनके वंशजों में पाया जाता है पत्नि के द्वार पर 'पूतों की जोड़ी' के संकेत को ईमाक (२३) जाति के पुरुष भली भांति समझते हैं। (एलफिन्स्टन कृत 'काबुल' खण्ड २ पृ २११)।

१८. तरंगिणी।

---

(२१) पेनिलोप यूनान के प्रसिद्ध वीर युलिसिस की स्त्री थी। जिस समय उसका पति (एशिया माइनर में) ट्राय नामक नगर के युद्धों में संलग्न था कई पुरुषों ने उसकी प्रीति प्राप्त करने की चेष्टा की थी परन्तु उसने सबको अपनी युक्ति से निराश कर दिया था।

(२२) राजपूताने की कई रियासतों में बड़े पुत्र के विद्यमान होने पर भी कभी-कभी छोटे पुत्रों ने राज्या-धिकार प्राप्त किया है, परन्तु कहीं भी यह एक साधारण नियम नहीं था। किसी विशेष कारण वश ही कभी-कभी ऐसा होता था।

(२३) अफगानिस्तान के हिरात प्रदेश के उत्तरी भाग तथा ईरान के एक भाग में बसने वाली जाति जो खाना-बदोश की भांति अपने पशुओं के साथ एक स्थान से दूसरे स्थान पर भ्रमण किया करती थी।

(२४) Grand Nephew। आगे इसी अध्याय में (पृ० ५८ पर) Grand son of Arjun लिखा है।

(२५) परीक्षित के नाम से कोई संवत् नहीं चला। उस समय के लगभग 'कलि संवत्' अवश्य प्रारम्भ होता है जो केवल ग्यारह सौ वर्ष नहीं चला। अब भी चालू है और पंचांगों में लिखा भी जाता है। इसका प्रारम्भ ३०४४ वि० पू अथवा ३१०१ ई० पू० होता है। युधिष्ठिर शक इसके ३७ वर्ष पूर्व अर्थात् ३१३८ ई पू में प्रारम्भ होता है।

(२६) विक्रम संवत् प्रवर्तक विक्रमादित्य किस वश का था यह ज्ञात नहीं किन्तु इसका सम्बन्ध ५६ ई पू और ३०४४ कलि संवत् से प्रारम्भ हुआ माना जाता है।

(पायगामों) [19] पर हस्ताक्षर करने को विवश किया।

युधिष्ठिर ने राज सिंहासन पर आसीन होकर अपने राज्य को दृढ़ किया तथा अश्वमेध [20] (२७) और राजसूय (२७) जैसे प्रभावशाली एवं पवित्र यज्ञ करके अपने साम्राज्य और सार्वभौम सत्ता की ख्याति को फैलाने का निश्चय किया।

इन महान यज्ञों में हर प्रकार का कार्य केवल राजा लोग ही करते हैं यहाँ तक कि द्वारपाल का कार्य भी वे ही करते हैं।

अर्जुन की अधीनता में यज्ञ का घोड़ा छोड़ा गया जो इच्छानुसार घूमता रहा और जब किसी भी राजा ने उसका सामना करने और पाण्डवों की सार्वभौम (चक्रवर्ती) शक्ति को चुनौती देने का साहस नहीं किया तो यह अश्व वापस इन्द्रप्रस्थ लाया गया तब तक वहाँ यज्ञ-शाला बन चुकी थी और देश के समस्त राजाओं को अश्वमेध के समारोह में सम्मिलित होने का आमन्त्रण दे दिया गया था।

पाण्डवों के चक्रवर्ती सम्राट् बनने के अर्थ से कुरुओं [21] के हृदय ईर्ष्या अग्नि से प्रज्वलित हो उठा क्योंकि उस समारोह में हस्तिनापुर के राजा का भाग प्रसाद बाँटने को रखा गया था।

उन घरानों के मध्य झगड़ा फिर फूट पड़ा। दुर्योधन ने जो कई बार अपने प्रतिद्वन्द्वियों को नष्ट करने की योजनाओं में असफल हो चुका था इस बार युधिष्ठिर की धार्मिकता को ही अपनी सफलता का साधन बनाने का निर्णय किया। उसने जुआ खेलने के अपने प्राचीन व्यसन से लाभ उठाया इस व्यसन में राजपूत अब भी सीथियन [22] लोगों के रिवाजों से मिलने वाली समानता बनाए हुए हैं। युधिष्ठिर उसके बनाये गये जाल में फँस गया उसने अपना राज्य अपनी पत्नी और यहाँ तक कि अपनी और अपने भाइयों की व्यक्तिगत स्वतन्त्रता भी खो दी। वे बारह वर्षों के लिए यमुना तट के अपने देश से निर्वासित कर दिये गये।

अपने वनवास काल के दौरान में इन भ्रमण-कारियों का परम्परागत इतिहास उनके कई गुप्त स्थान जो अब पवित्र माने जाते हैं, उनका अपने पूर्व पुरुषों के निवास-स्थान को वापस लौटना तत्पश्चात् महाभारत का युद्ध होना आदि बातें हिन्दुओं की पौराणिक गाथाओं की अत्यन्त ही रोचक घटनाएँ हैं।

इस गृह-युद्ध का भाग्य निर्णय करने के लिए कैलाश से लगा कर समुद्र तक का प्रत्येक राज वंश और हरएक प्रतिष्ठित सरदार कुरुक्षेत्र के मैदान में उपस्थित हुआ जहाँ कि भारतीय साम्राज्य के लिये कई बार संग्राम [23] हुये हैं और कई बार उसे खोना पड़ा है।

---

१६ पायगामा' सार्वभौम सत्ता के प्रति अधीनता का सूचक शब्द है चाहे वह धन द्वारा हो चाहे सेवा द्वारा। 'पग' अर्थात 'पैर' शब्द से उसकी उत्पत्ति है।

२ सूर्य के प्रति अश्व का बलिदान करना। इसका पूरा विवरण आगे दिया जायेगा।

२१ दुर्योधन ने ज्येष्ठ वंश-शाखा के होने के कारण अपना नाम कौरवाधिपति ही प्रचलित किया और कनिष्ठ शाखा के युधिष्ठिर ने राज्य के विभाजन पर अपने पिता के नाम पर नया राज-वंश पाण्डु वंश आरम्भ किया। युद्ध-स्थल कुरुक्षेत्र अथवा कुरुओं का मैदान कहलाया।

२२ हेरोडोटस का कहना है कि सीथियन लोगों में जुए के खेल की अत्यन्त विनाशकारी प्रथा मिलती है जिसे सम्भवतः ओडिन स्केंडीनेविया और जर्मनी में ले गया। टेसिटस ने लिखा है कि पाण्डवों की भाँति जर्मन लोग भी इस खेल में व्यक्तिगत स्वतन्त्रता दाँव पर लगा देते थे और विजेता उनको दासों की भाँति बेचता था।

२३ इस रणक्षेत्र में अन्तिम हिन्दू सम्राट् पृथ्वीराज ने अपना राज्य अपनी स्वाधीनता और अपना जीवन खोया।

---

(२७) पहिले 'राजसूय' यज्ञ किया था। अश्वमेध' यज्ञ महाभारत युद्ध के पश्चात् हुआ था।

परस्पर का यह युद्ध यदु-वंश शृंखला से उत्पन्न छप्पन राज-वंशों के आधिपत्य के लिए अत्यन्त घातक सिद्ध हुआ। अठ्ठारह दिनों के इस युद्ध में प्रत्येक दिन असंख्य मनुष्य मारे गये क्योंकि पिता अपने पुत्र को शिष्य अपने गुरु को नहीं पहचान पाता था।

युद्ध की विजय से युधिष्ठिर को सुख नहीं मिला। अपने मित्रों के वध के कारण उसे संसार से घृणा हो गई और उसने संसार त्याग देने का निश्चय किया। प्रथम उसने हस्तिनापुर के दुर्योधन का (जो भीम द्वारा मारा गया था दाह संस्कार किया जिसकी महत्वाकांक्षा और कपटाचरण के कारण ही यह विनाशकारी युद्ध हुआ था।

अपने राज्य को पुनः प्राप्त कर उसने एक नये सम्वत् की घोषणा (२८) की और अर्जुन के पौत्र परीक्षित को इन्द्रप्रस्थ के राजसिंहासन पर बिठा कर वह कृष्ण और बलदेव के साथ द्वारिका चला गया (२९)। अब इस युद्ध से इस पुस्तक के लिखने के काल तक ४६३६ वर्ष [२४] (३०) हो गये हैं।"

महाभारत के दुर्भाग्य पूर्ण युद्ध के विनाश के उपरान्त जब युधिष्ठिर बलदेव और कृष्ण द्वारका चले गये तो युधिष्ठिर और बलदेव को कृष्ण की मृत्यु (३१) का शोक सहना पड़ा जो एक आदि वासी भील जाति द्वारा मार डाले गये थे। वे भील सम्भ पैठे हुये थे अतएव उनसे छुड़ा नहीं जा सकता था। इस घटना के पश्चात् युधिष्ठिर और बलदेव (३१) अपने कुछ साथियों सहित भारतवर्ष ही छोड़ कर चले गये। उत्तर की ओर प्रयाण करते हुए सिन्ध पार हो कर वे हिमालय पर्वतों में गये वहाँ पर उनके विषय में हिन्दुओं की पौराणिक कथा समाप्त हो जाती है और यह अनुमान लगाया जाता है कि वे बर्फ में नष्ट हो गये। [२५]

---

२४ राजतरंगिणी- इस का रचना काल १०४० ई० (३०) था।

२५. पूर्व एवं पश्चिम के हरिकुलेश (३२) में समानता दिखाने के पश्चात् मैं इस बात को और आगे ले जाता हूं। हिन्दू कथा हरि-कुल के युधिष्ठिर और बलदेव को काकेशस पर्वत के वक्ष में ले जाकर छोड़ देती है, किन्तु यदि सिकन्दर जाकर पांचालिक में पुरुओं और हरि-कुलों के मध्य अपनी वेदियां स्थापित कर सकता है तो उसके आठ शताब्दियों पूर्व विज्ञान और युद्ध-कला में अति उन्नत हरि-कुल के लिये युधिष्ठिर और बलदेव के आधिपत्य में यूनान में प्रवेश कर एवं विजय प्राप्त कर, वहाँ बस्ती बसाना असम्भव नहीं हो सकता। जब सिकन्दर ने पांचालिक के स्वतन्त्र नगरों पर आक्रमण किया उस समय पुरु और हरिकुलेश वंशों में 'हरिकुलेश' की आकृति के समान पताका लिए युद्ध किया था जो उनके पूर्वज का स्मरण दिलाती थी। तुलना करने पर हिन्दू और यूनानी ०

---

(२८) देखें इसी अध्याय में पृ ७० पर हमारी टिप्पणी सं २५। विशेष यहाँ युधिष्ठिर ने संवत चलाया है।

(२९) महाभारत के अनुसार परीक्षित का राजसिंहासन पर बैठने के पूर्व ही कृष्ण और बलदेव का स्वर्ग-वास हो चुका था। 'राजतरंगिणी' का यह वृत्तान्त भ्रमपूर्ण है।

(३०) ४६३६ वर्ष में से यदि यह रचना-काल घटा दें तो ३८१६ ई० पू होता है। कलि-संवत ३१०२ ई पू० से प्रारम्भ होता है यों कलि-संवत् के प्रारम्भ से २०६ वर्ष का अन्तर आता है। कुछ ग्रन्थों में युधिष्ठिर शक का भी उल्लेख है जो ३ ६४ वि पू से प्रारम्भ हुआ माना जाता है।

परन्तु टॉड द्वारा निर्दिष्ट 'राजतरंगिणी' का यह रचना-काल ठीक नहीं। उपर्युक्त पृ० ७४ पर हमारी टिप्पणी सं १९ देखें।

(३१) महाभारत में बलदेव का देहान्त कृष्ण के पूर्व होना लिखा है अतएव बलदेव का युधिष्ठिर के साथ जाना सम्भव नहीं हो सकता।

(३२) 'हरकुलीस' को 'हरिकुलेश' समझ कर (अथवा मान कर) टॉड ने इन्हें 'बलदेव' लिख दिया है। अन्यथा 'हरकुलीश' 'विष्णु' हैं 'सुरकुलिश' का विकृत रूप 'हरकुलिश' है, देखें—श्री भगवद्दत्त लिखित भारत का बृहद् इतिहास भाग १ पृ २१६ से २२१। दूसरे अध्याय में प० ४० पर हमारी टिप्पणी सं २५ भी।

युधिष्ठिर के उत्तराधिकारी परीक्षित से विक्रमादित्य तक चार राज-वंश (२१) एक के बाद ही दूसरा गद्दी पर बिठाये गये हैं

२०. ० पौराणिक गाथाओं की एक ही उत्पत्ति प्रतीत होती है और प्लैटो ने लिखा है कि यूनानियों ने मिस्र और पूर्व से उनको प्राप्त किया था। हरिकुलेस की यह बस्ती क्या हेराक्लिडे वाली नहीं हो सकती? जो (बोल्ने के मतानुसार) ईसा से ११७८ वर्ष पूर्व पेलोपोनेसस में प्रविष्ट हुई थी जो महाभारत युद्ध के हमारे अनुमान किये गये काल के अत्यन्त निकट है।

हेराक्लिडे अत्रियस से उत्पन्न माने जाते थे और हरिकुलेस अत्रि से।

युरिस्थेनिज हेराक्लिडे लोगों का प्रथम राजा था। स्पार्टा राजा के नाम से युधिष्ठिर का अत्यन्त साम्य है। व्युत्पत्ति शास्त्र के ज्ञाता चौंकें नहीं संस्कृत में 'र' और 'ल' सर्वत्र परिवर्तनशील हैं।

यूनानी अथवा आयोनियन यवन अथवा जवन से उत्पत्ति मानते हैं, जो जफेट से सातवां राजा था। हरिकुलेस भी आदि पुरुष के तीसरे पुत्र ययाति की तेरहवीं पीढ़ी के राजा यवन अथवा यवन (१३) की सन्तति होने से यवन हैं।

यूनान देश के प्राचीन हेराक्लिडे लोग कहते थे, कि वे सूर्य के समकालीन और चन्द्रमा से अधिक प्राचीन थे। क्या इस पर्योक्ति में यह बात छिपी हुई नहीं है कि यूनान के हेलियाडी (अर्थात सूर्य-वंशी) वहां पर हरिकुल के चन्द्र-वंशियों के बसने से पूर्व आबाद हो गये थे?

भारत के ब्रह्मचारी पुरुष बलदेव (हरक्यूलीज) हरि अथवा कन्हैया (अपोलो) और बुद्ध (मरकुरी) के पौराणिक इतिहासों से सम्बन्ध रखने वाले सब विषयों की हिन्दुओं, यूनानियों और मिस्र-वासियों की कथाओं में बहुत कुछ समानता पाई जाती है। हरिकुल के बलदेव की आज तक भी वैसी ही पूजा होती है जैसी कि सिकन्दर के समय में होती थी। उनका मन्दिर ब्रज में बलदाऊ स्थान पर (यूनानियों का सूरसेनी) है उसका आयुध हल और वस्त्र सिंह की खाल (१४) है।

हिन्दुस्तान से प्राप्त हुए एक दुष्प्राप्य नग पर हरक्यूलीज की ठीक वैसी ही मूर्ति बनी है, जैसा कि एरियन उसका वर्णन करता है। उस नग पर दो प्राचीन अक्षरों में एक नाम का संकेत है, जो अब पढ़े नहीं जाते परन्तु कथा कहानियों से जहां कहीं हरिकुल वालों का सम्बन्ध पाया जाता है वहीं पर यह (मूर्ति) अवश्य पाई जाती है विशेष कर सौराष्ट्र में, जहां पर वे दिल्ली से निकाले जाने के पश्चात बहुत समय तक रहे हैं।

हम एकबारगी कह सकते हैं कि हरक्यूलीज की यह ठीक वैसी ही मूर्ति थी जिसके विषय में एरियन लिखता है जब कि सिकन्दर से पौरस की लड़ाई हुई उस समय उस (हरिकुलेस) के वंशजों की पताकाओं पर बनी हुई थी। इस नग का चित्र 'रायल एशियाटिक सोसायटी के ट्रांसेक्शन्स' में दिया जायेगा।

२१ परीक्षित के वंश में अठाइसवां राजा क्षेमराज अंतिम राजा था। प्रथम राज-वंश १०९४ वर्षों तक रहा। दूसरा राज-वंश विसर्व का था जिसमें चौदह राजा हुए और ५ वर्षों तक कायम रहा। तीसरे राजवंश का संस्थापक महाराज था जो उसके पन्द्रहवें राजा अन्तिनय के साथ समाप्त हुआ। चौथा राज-वंश वत्सेन से प्रारम्भ हुआ; इस वंश का नौवां एवं अन्तिम राजा राजपाल था। राजतरंगिणी। (१५)

(१३) पुराणों में ययाति से तेरहवीं पीढ़ी में यवन यवन नामक कोई राजा नहीं मिलता।

(१४) बलदेव का वस्त्र सिंह की खाल नहीं अपितु नीले रंग का वस्त्र है। और इसी से उनका नाम नीलाम्बर प्रसिद्ध हुआ। सिंह की खाल की कल्पना हरक्यूलीज से मिलाने के लिए ही है।

(१५) देखें पृ० ८९ पर टिप्पणी सं० १५।

जिसमें राजपाल तक छियासठ (६६) राजा हुए जो (राजपाल) कुमाऊँ पर आक्रमण करने में शुकवन्त के हाथों मारा गया था। कुमाऊँ के इस विजयी राजा ने देहली पर अपना अधिकार कर लिया किन्तु उसके तुरन्त ही बाद विक्रमादित्य ने उसे राज्यच्युत कर दिया और अपने राज्य की राजधानी इन्द्रप्रस्थ से बदल कर अवन्ती अथवा उज्जैन कर दी जो तब से हिन्दू ज्योतिष शास्त्र का प्रमुख मुख-स्थल बन गया।

आठ शताब्दियों तक इन्द्रप्रस्थ राजधानी नहीं रहा। इसके पश्चात् तँवर वंश के संस्थापक अनंगपाल[27] ने जो स्वयं को पाण्डव वंशी मानता था, उसे पुनः राजधानी बनाया। तब से इन्द्रप्रस्थ का नाम बदल कर देहली पड़ गया।

कुमाऊँ के उत्तरी पर्वतीय भाग से आने वाले राजा शुकवन्त ने चौदह वर्ष [१४ ई (क)] तक शासन किया तत्पश्चात् वह विक्रमादित्य[28] द्वारा मारा गया। इस प्रकार भारत से लेकर इस घटना तक २६१५ वर्ष बीते[29] (३५)

२७ राजतरंगिणी में इसका काल वि. सं. ८४८ अथवा ७९२ ई. दिया गया है और यह भी लिखा है कि शिवालक पर्यन्त उत्तरी पहाड़ों के राजाओं ने आकर उस समय इसको अपने आधीन किया और तबरों के अभ्युदय तक कब्जा बना रहा।

२८. ईसा से ५६ वर्ष पूर्व।

२९. रघुनाथ।

(३५) (अ) टॉड की टिप्पणी सं० २६ (पृ० ८० पर) के अनुसार —

(क) परीक्षित से क्षेमराज तक २८ राजा—राज्यकाल १८६४ वर्ष
(ख) विसर्व का वंश १४ ,, ,, ५०० वर्ष } =२३६४
(ग) महाराज से अन्तिमय" १५

(आ) हमारी टिप्पणी संख्या १० (पृ० ८० पर ही) के अनुसार (तरंगिणी के आधार से) ई० पू० २८३६ में महाभारत हुआ।

(इ) यहाँ भारत-युद्ध से विक्रमादित्य द्वारा शुकवन्त का वध करने तक २६१५ वर्ष हुए।

उपर्युक्त (आ) पर २८३६ तथा (इ) पर २६१५ में भी ११ वर्ष का अन्तर है फिर (आ) में विक्रमादित्य का शासन काल जोड़ कर वर्ष लिखे गये हैं जब कि (इ) में शुकवन्त को विजय करने का काल है अतः यह अन्तर और अधिक हो जाता है। तीसरे (अ) अधूरी लिखी हुई है। हमें अन्य सूत्र से जो इसका वर्षकाल मिला है वह निम्न है :—

(क) युधिष्ठिर से क्षेमक	तक ३० पीढ़ियाँ	हुई	१७७० वर्ष	११ महीने	१० दिन	राज्य किया
(ख) विश्रवा से वीरसाल	तक १४	हुई	५००	३ ,,	१७ दिन	राज्य किया
(ग) वीर महाप्रधान से आदित्यकेतु	तक १६ ,,	हुई	४४५	५ ,,	१० दिन	राज्य किया
(घ) धन्धर से राजपाल	तक ६	हुई	३७४	११ ,,	२६ दिन	राज्य किया
(ङ) महानपाल	तक १	हुई	१४ ,,	०	० दिन	राज्य किया
योग=	७ ,,		३१०५	७	२६ दिन	राज्य किया

कलि सम्वत् ३०४४ वि० पू० प्रारम्भ होता है। कलि सम्वत् परीक्षित के राज्य-प्राप्ति पर प्रारम्भ हुआ। युधिष्ठिर का राज्य-काल ३८-८-२५। अतः ३०४४ + ३८-८-२५ = ३०८२-८-२५। महाभारत इससे पूर्व हुआ।

इस अवधि में ६६ राजाओं ने शासन किया। तदनुसार प्रत्येक का औसत शासन काल ४४ वर्ष हुआ। यह बात अविश्वसनीय लगती है यद्यपि बिल्कुल असम्भव नहीं है।

संग्रहकर्ता अन्यत्र कहता है 'मैंने कई शास्त्रों का अध्ययन किया है और उन सब की सम्मति यही है कि देहली के सिंहासन पर, राजा युधिष्ठिर से पृथ्वीराज तक के ४१ वर्षों [11] में क्षत्रिय वंशों [1] के १ राजाओं ने राज्य किया जिसके उपरान्त राजा [12] पंशा-(३८) ने राज्य अपने हाथों में ले लिया।

ऐतिहासिक तत्त्वों के इन अवशेषों के लिए यह बात सौभाग्यपूर्ण रही है कि ग्रन्थकारों ने केवल राज्यकालों की अवधि का ही विस्तार किया है परन्तु राजाओं की संख्या नहीं बढ़ाई। युधिष्ठिर से विक्रमादित्य तक ६६ राजाओं का होना बिलकुल ठीक है।

युधिष्ठिर से पृथ्वीराज तक १ राजाओं के होने की बात का हम विरोध नहीं कर सकते यद्यपि विक्रमादित्य के पूर्व तथा उसके बाद में हुए राजाओं की संख्या में कोई अनुपात नहीं है। विक्रमादित्य के पूर्व ६६ राजा बताये गये हैं और बाद में केवल १४ राजा यद्यपि इन दोनों कालों में अवधि का अन्तर आधी शताब्दी से अधिक का नहीं हो सकता।

यदि युधिष्ठिर से पृथ्वीराज तक के १०० राजाओं (४०) के काल की हम सूक्ष्म परीक्षा करें तो परिणाम २२५ वर्ष होगा।

इस परीक्षा के लिये हम राजस्थान के प्रमुख राजवंशों के ११९३ [13] से १२१२ [14] वर्षों अर्थात् पृथ्वीराज से लगा-कर आज तक की पीढ़ी के काल का औसत राज्य-काल निकाल कर उसको आधार बनाते हैं।

१　राजपूत अर्थात् क्षत्रिय।

११ संग्रहकर्ता (१६) ने ४१ वर्ष का समय मान्य करने में रघुनाथ के इस कथन को स्वीकार कर कि महाभारत से विक्रमादित्य तक २९१५ वर्ष बीते हैं और इसमें उसने पृथ्वीराज (१७) तक का निश्चित समय मिला लिया होगा जिसका जन्म सम्वत् १२१५ (३७) में हुआ था। यदि ४१ में से २९१५ निकाल दें तो ११८५ रहते हैं। यह समय चौहानों के इतिहास के अनुसार पृथ्वीराज के जन्म से ३ वर्ष पूर्व का है।

१२ सूर्य-वंशी।

१३ सम्वत् १२५१ अथवा सन् ११९४; पृथ्वीराज के पकड़े जाने और राज्यच्युत किये जाने के समय से।

१४ सम्वत् १२१२ अथवा सन् ११५६; जैसल द्वारा जैसलमेर स्थापित किये जाने से लगा कर वर्तमान राजा गजसिंह के संवत् १८७६ अर्थात् सन् १८२० में हुए राज्याभिषेक तक।

---

(१६) यहाँ 'संग्रहकर्ता' (Compiler) शब्द विचारणीय है। इससे पृ० ७५ की हमारी टिप्पणी संख्या १६ का समर्थन ही होता है।

(३७) ओझा जी के मतानुसार पृथ्वीराज का जन्म विक्रम संवत् १२२५ के आस-पास होना चाहिये। भारत कौमुदी (भाग २, पृ ७२६) के अनुसार—संवत् १११५ वर्षे वैशाख वदि २ गुरौ चित्रा नक्षत्रे सिद्धि योग गर नाम करणे श्री पृथ्वीराज चौहान जन्म मघे लग्न मध्य।

(३८) पृथ्वीराज की मृत्यु के पश्चात् देहली पर राजपूतों का नहीं मुसलमानों का अधिकार हुआ था।

(३९) 'सत्यार्थ प्रकाश' (इक्कीसवाँ संस्करण वैदिक यंत्रालय अजमेर पृ २२१-२२९) के अनुसार ११४ राजा होते हैं।

मेवाड़ का राज-वंश ३४ राजा [३५]	अथवा	प्रत्येक	का	राज्य-काल	औसत	१९	वर्ष
मारवाड़ का राज-वंश २८ राजा	„	„	„	„	„	२१¾	„
आमेर का राज-वंश २९ राजा	„	„				२२¾	„
जैसलमेर का राज-वंश २८ राजा	„	„	„	„		२१½	

इस भांति प्रत्येक (राजा के) राज्य-काल के लिए २२ वर्ष औसतन माने जा सकते हैं।

प्रत्येक राज्य-काल की अवधि इससे अधिक मानना उचित नहीं होगा। और विस्तृत नामावली वाले वंशों को तो सब से कम अर्थात् १९ वर्ष देना ही अधिक उत्तम होगा तथा युधिष्ठिर से विक्रमादित्य तक के ६६ राजाओं के काल के लिये तो इतनी अवधि भी मानना ठीक नहीं होगा क्योंकि इस काल में चार राज्य-क्रांतियाँ [३६] और बलपूर्वक राज्य-सत्ता छीनने की घटनायें हुई।

भागवत से ली गई जरासन्ध के वंश की शेष वंशावली अत्यन्त महत्त्व की है और उससे अधिक अनुमान करने का अवसर मिलेगा।

जरासन्ध राजगृह [३७] अथवा बिहार का शासक था जिसके पुत्र सहदेव और पौत्र मारजारि महाभारत युद्ध के काल में विद्यमान थे और तदनुसार वे देहली के सम्राट् परीक्षित के समकालीन थे।

जरासन्ध की सीधी वंश-शृंखला २३ पीढ़ियों बाद रिपु जय के साथ समाप्त होती है जिसका वध कर दिया गया और उसका मन्त्री राज्य-गद्दी पर बैठा जिसका नाम शुनक था। इसका राज-वंश पांचवीं पीढ़ी में नन्दी वर्धन के साथ समाप्त हो गया। शुनक ने बलात् राज्याधिकार ग्रहण कर कोई लाभ नहीं उठाया क्योंकि उसके तुरन्त बाद उसने अपने पुत्र प्रद्योत को सिंहासन पर बिठाया। इन पांचों राजाओं का १३८ वर्षों को राज्य-काल माना गया है।

शेषनाग (४०) देश [३८] से आने वाले शेषनाग नामक विजेता ने हिन्दुस्तान में एक नया वंश प्रारम्भ किया जो कि पाण्डव राजसिंहासन पर आसीन हुआ (४१) और जिसका वंश दस पीढ़ी तक चल कर आनन्द राजा महानन्द के साथ समाप्त हुआ। यह अन्तिम राजा जिसका नाम बैक्य भी था शुद्ध रक्त वाले राजपूत राजाओं के विरुद्ध विनाशकारी युद्ध करता रहा। पुराणों में कहा गया है कि शेषनाग वंश के बाद के राजा शूद्र थे। इन दस राजाओं का राज्य-काल ३६ वर्षों का माना गया है।

---

३५. प्रारम्भ में यहाँ के बहुत से राजा मारे गये और वर्तमान राजा का पिता अपने भतीजे का उत्तराधिकारी हुआ था इससे समय कम आया।

३६. इतिहास-लेखक इन परिवर्तनों का होना उचित समझते हैं और अपनी आलोचना में लिखते हैं कि पद-भ्रष्ट किये गए राजाओं में राज्य को सम्भालने तथा उसका प्रबन्ध चलाने की योग्यता बहुत ही कम थी।

३७ राजगृह अथवा राजमहल मगध देश अथवा बिहार की राजधानी।

३८. नागाधिपति का देश। नाग तक्षक अथवा तक्षक समान अर्थ के सूचक हैं। मेरे मतानुसार यह देश स्ट्रेबो के लिखे हुए प्राचीन सीथिया के 'टाचरि' जातियों के 'तक-इ-चकों' और तुर्किस्तान के वर्तमान 'ताजिकों' का देश होना चाहिये। यह जाति पुराणों में वर्णित तुरुष्क जाति के समान ही होनी चाहिये जिसने ग्राक द्वीप अथवा सीथिया में स्थित धर्ममां (अरक्सीज) पर शासन किया था।

---

(४०) शिशुनाग को शेष नाग मान कर टाड ने उक्त वंश को शेषनाग देश से आना मान लिया है। पुराणों में शिशुनाग वंश के साथ शेषनाग देश का वर्णन कहीं नहीं मिलता।

(४१) शिशुनाग वंशी राजाओं ने जरासन्ध के वंशजों के पीछे मगध पर शासन किया न कि पाण्डवों के राज्य सिंहासन पर।

चौथा राजवंश इसी तक्षक वंश के (४२) चन्द्रगुप्त मौर्य से प्रारम्भ होता है। मौर्य वंश में दस राजा हुए जिसका शासन-काल केवल १३७ वर्षों में ही समाप्त हो गया।

आठ राजाओं का पांचवां राज-वंश शृंगी वंश (४३) से आया था जिसके सम्बन्ध में कहा गया है कि उन्होंने ११२ वर्षों तक शासन किया जब कि अन्त में कण्व वंश के राजा ने उसके अन्तिम राजा का वध कर उसका राज्य छीन लिया। इन आठ राजाओं में से चार शुद्ध रक्त के थे जब कि पांचवां राजा कृष्ण एक शूद्र स्त्री से उत्पन्न हुआ था। कण्व वंश का राज-वंश २१ पीढ़ियों तक चल कर सुलोमधी के साथ समाप्त होता है। (४४)

इस प्रकार महाभारत युद्ध के पश्चात छः राजवंश (४५) दिये हुए हैं जिनमें संलग्न रूप से कुल मिल कर ८२ राजा हुए (४५) हुए, जो राजा जरासन्ध के उत्तराधिकारी सहदेव से प्रारम्भ होकर राजा सुलोमधी (४६) तक आकर समाप्त हुए।

कुछ छोटे राज-वंशों की अवधि सामान्य लम्बाई की ही दी गई है किन्तु प्रथम और अन्तिम के लिये इस प्रकार की जानकारी प्राप्य नहीं है इसलिए जांच के लिए उपयुक्त निश्चित की गई कसौटी का ही उपयोग किया जाना चाहिए तदनुसार कुल १००४ वर्ष (४१) होंगे जो विक्रमादित्य से ६०४ वर्ष (४६) पश्चात् का काल से होता है। इस प्रकार

(४२) टॉड ने शिशुनाग तथा मौर्य वंश के राजाओं को तक्षक वंश का माना है, किन्तु उसका कोई प्रमाण नहीं मिलता। बौद्ध और जैन लेखक मौर्यों को सूर्य-वंशी मानते हैं।

(४३) शुंग को शृंग पढ़ कर टॉड ने शुंग-वंशी राजाओं का शृंग वंश से आना लिख दिया है किन्तु पुराणों में ऐसा कहीं लिखा नहीं मिलता।

(४४) उपयुक्त चार पैरों में निम्न भूलें जान पड़ती हैं—

(क) चौथा राजवंश नव नन्दों का है जिनका समय १ ० वर्षों का है। (श्रीमद्‌भागवत १२।१।१० से १२)

(ख) कण्व वंशी ४ (चार) राजाओं ने ३४५ वर्ष राज्य किया (श्रीमद्‌भागवत १२।१।२१)।

(ग) कण्व वंश के पश्चात् अन्ध्र जातीय बलि नामक भृत्य के ३० (तीस) राजाओं ने ४५६ वर्ष राज्य किया—श्रीमद्‌भागवत १२।१।२२ से २८।

(४५) भारत युद्ध के पश्चात् उपयुक्त आधारों के अनुसार ८ (आठ) राज-वंश होंगे जिनमें यों (२२+५+१०+५+१०+१०+४+३०=) १ १ राजा होते हैं।

(४६) इसे स्वीकार करने का अर्थ होगा कि महाभारत ई० पू० ११०० वर्ष में हुआ। दूसरी ओर पीछल टॉड के अन्य कथन के अनुसार ही महाभारत का समय निम्न होगा।

२२ जरासन्ध के वंश के राजाओं का समय। $२२\times२२ = ४०६$

५ प्रद्योतों का समय हुआ। = १३८

१ शिशु नाग राजाओं का समय = ३६०

योग=३८ योग=—१००४

६ यदि नव नन्दों का समय (जो कि टॉड ने छोड़ दिया है जोड़ें) १००

योग=४७ योग=—११०४

यह समय श्रीमद्‌भागवत में दिये गये महाभारत युद्ध के समय से अत्यधिक समीप है। यहां श्रीमद्‌भागवत १२।२।२६ का उल्लेख दसा समीचीन होगा ६ परीक्षित तुम्हारे जन्म से राजा नन्द के राज्याभिषेक तक १११५ वर्ष होंगे।

विक्रमादित्य (४७) का समकालीन मधुदेव होगा जो सहदेव से ५५वाँ और छठ राजवंश (४७) का राजा था और जो कटेहर देश से आने वाला विजेता माना जाता है। यदि ये गणनायें मूल्यवान् मानी जायें तो मागधक की वंशावलियाँ विक्रम संवत् से पांचवीं [11] शताब्दी के अन्तिम काल तक पहुँचती हैं। हम इन पुस्तकों के लेखकों को भविष्य वक्ता नहीं मान सकते अतः हम यह अनुमान लगा सकते हैं कि उन्होंने अपने प्राचीन ऐतिहासिक लेखों का सलोमची के

---

११. बेन्टले (१) का कथन है कि ज्योतिष शास्त्री ब्रह्मगुप्त (४८) ने ५२७ ई. अथवा वि. सं. ५८३ के लगभग ख्याति प्राप्त की जो सलोमची के राज्य-काल से कुछ ही पूर्व हुआ था। वह ब्रह्मा के कल्प वाली गणना विधि का संस्थापक था जिस पर ही हिन्दुओं की वर्तमान काल-गणना आधारित है। बेंटले का कहना है कि इसी प्रणाली के अनुसार उनका ऐतिहासिक समय भी पलटा गया था। इससे मेरी धारणा की पुष्टि होती है; किन्तु बेन्टले के प्रभाव का महत्व कोलब्रूक पर किये गये उसके अनुचित कटाक्ष से बहुत कुछ घट गया है, जहाँ सारी आनुमानिक बातों के न मानने से कोलब्रूक के विस्तृत ज्ञान का महत्व वस्तुतः दुगना हो जाता है।

---

(१) हिन्दुओं की ज्योतिष प्रणाली पर छेख। एशियाटिक रिसर्चेज, जिल्द ८, पृ० २३६—४७।

---

(४६) ॐ 'आकाश में सप्तर्षियों में से जो दो तारे पहले उदित होते दिखाई देते हैं उनके बीच में दक्षिणोत्तर रेखा पर समभाग में अश्विनी आदि में से एक नक्षत्र दिखाई देता है। उसके सहित ये सप्तर्षि मनुष्यों के सौ वर्षों तक उसी स्थिति में रहते हैं। आजकल तुम्हारे (परीक्षित के) समय में ये सप्तर्षि मघा का आश्रय लेकर स्थित हैं' —श्रीमद्भागवत १२।२।२७-२८- 'जिस समय ये सप्तर्षि पूर्वाषाढ़ा नक्षत्र में जायेंगे उस समय नन्द का राज्य रहेगा।" (श्रीमद्भागवत १२।२।३२)।

चन्द्रगुप्त मौर्य को ३२२ ई० पू. में राज्य मिला यह अभी तक भारतीय इतिहास का ध्रुव बिन्दु माना जाता है अतः टॉड के हिसाब से ही उपयुक्त ११०४ [हमारी टिप्पणी संख्या ४७] +३२२=१४२६ ई० पू. दूसरी ओर १११५+१०+३२२=१४३७ ई० पू० महाभारत का समय होगा।

यहाँ पर एक बात और विचारणीय है कि सलोमधी (श्रीमद्भागवत् १२।१।२२ से २८ के अनुसार) आंध्र जातीय था। मत्स्य २७३।३४।३५, वायु ९९।४२३। ब्रह्माण्ड ३।७४।२३६ के अनुसार परीक्षित के काल में जो सप्तर्षि मघा पर थे उनका आन्ध्रों के आरम्भ तक २४०० वर्ष का काल पूरा होता है।

(४७) टॉड के इस हिसाब से ही नव नन्दों तक चार राज-वंशों के ही ४७ राजा (देखें पृ. ८५ की हमारी टिप्पणी संख्या ४८) होते हैं अतः ५५ वां मौर्य-वंश में आयेगा जो बिल्कुल असम्भव है।

(४८) ब्रह्मगुप्त ने अपने 'ब्रह्म-स्फुट' सिद्धान्त में लिखा है:-

श्रीचापवंशतिलके श्रीव्याघ्रमुखे नृपे शकनृपाणाम्। पञ्चाशत्संयुक्तैर्वर्षशतैः पञ्चभिरतीतैः ॥७॥
ब्राह्मस्फुटसिद्धान्तः सज्जनगणितज्ञगोलविद्प्रीत्यै। त्रिंशद्वर्षेण कृतो जिष्णुसुत ब्रह्मगुप्तेन ॥८॥"

इससे ज्ञात होता है कि इन्होंने यह ग्रन्थ चाप-वंशीय व्याघ्रमुख नामक राजा के राज्य-काल में शाके ५५० (शाके ५५० =वि० सं० ६८५ = ई० सन् ६२८) में ३० वर्ष की अवस्था में बनाया। इनके पिता का नाम जिष्णु था। ये भिन्नमाल (मारवाड़) के निवासी थे। "भिल्लमालकाचार्य' इनकी उपाधि थी।

राज्यकाल (४६) में अर्थात् विक्रम संवत् ६   अथवा ५४६ ई के लगभग नवीन संस्करण तैयार (४६) किया होगा।

राज्य-कालों की उपयु क्त गणना को जिसमें कि हमने प्राचीन राजवंशों के राज्य-कालों के वर्षों की औसत संख्या निर्धारित की है यदि हम उन राज्य-कालों से तुलना करें जिन्हें संसार के अन्य भागो के इतिहासों में पाते हैं तो वह हमारी अनुमानित गणना की सत्यता को जाँचने के लिए सर्वोत्तम कसौटी बन जावेगी।

रेहोबाम (५०) के विरुद्ध दस जातियो के विद्रोह के समय से प्रारम्भ कर जेरुसलम (५१) की विजय तक का काल ३८० वर्षों का होता है जिसमें जूडा (५२) के सिंहासन पर बीस राजा आसीन हुए। तदनुसार प्रत्येक के राज्य-काल का औसत १६.८ वर्ष होता है किन्तु यदि हम विद्रोह के पूर्व के तीन और राज्य-काल अर्थात् साल डेविड और सोलोमन के राज्य-कालों को भी उसमें सम्मिलित करे तो प्रत्येक का औसत २१½ वर्षों का होगा।

ईसा से लगभग ९   वर्ष पूर्व सार्डेनापालस (५३) के राज्य-काल में आसीरियन [४१] साम्राज्य के विध्वंस के पश्चात् बेबीलोनिया असीरिया और मेडिया (५४) के तीन सम्पन्न राज-वंशों की तुलना करने पर बहुत ही भिन्न परिणाम सामने आते हैं।

असीरियन राज-वंश की अवधि सामान्य है जब कि बेबीलोनिया और मेडिया राज-वंशों की अवधि अनुपात के बाहर चली गई है। असीरिया से विलग होकर वापस सम्मिलित होने के ५२ वर्षों के काल में बेबीलोन में नौ राजाओं ने राज्य किया जब कि उसी समान काल में मेडिया में दारियस ने ६   वर्ष तक राज्य कर बेबीलोन के ९ राजाओं से भी अधिक काल तक शासन किया। दारियस के वंश में राज्यों के विभाजन से लगा कर सीरस के काल में उनके पुनः एक होने तक केवल ६ राजा हुए जिनके राज्य-कालों की अवधि १७४ वर्ष की थी तदनुसार प्रत्येक राज्यकाल का औसत २९ वर्षों का हुआ।

असीरियन राज्य-काल और भी अधिक मध्यम श्रेणी का है। नेबुकेडरनेजर से लेकर सार्डेनापालस के समय तक प्रत्येक राज्य-काल औसतन २२ वर्षों का होता है किन्तु तदनन्तर इस राज-वंश के अन्त तक यह १८ वर्षों का ही होता है।

लेसीडिमन (५५) के हरेक्लिडे-वंश के यूरिस्थेनीज (ईसा से १ ७८ वर्ष पूर्व) से प्रारम्भ कर उसके प्रथम

---

४   ईसा से ८८० वर्ष पूर्व।

४१ इन सम्वतों और उनके पीछे के सम्वतों को मैंने मोपुई कृत ओरियन्ट प्राच साज्' नामक पुस्तक में दी गई वंशावलियों के समय-क्रम की सूचियों से लिया है।

---

(४६) सहासमणी के राज्य की समाप्ति सन् ५४६ ई० में नहीं अपितु ३०० ई० पू० में ही हो चुकी थी। पुराणों में नामावली का क्रम तो सलोमणी तक ही मिलता है परन्तु उनमें सलोमणी (मौर्य वंशी) से बहुत पीछे प्रयाग साकेत और मगध देशों पर गुप्त वंशियों का अधिकार रहना भी लिखा है। गुप्त वंश के राजा चन्द्रगुप्त प्रथम के समय में जिसका राज्याभिषेक सन् ३२० ई० में हुआ था गुप्तों के आधीन ये ही प्रदेश थे। उसके पश्चात गुप्त राज्य दूर-दूर तक फैला था। इस भाँति यदि पुराणों का भी नवीन संस्करण हुआ हो तो वह ईसा की चौथी शताब्दी में ही हुआ होगा न कि छठी शताब्दी में। (आम्ब० टा रा   हि० पृ० ८४ टि० २८)

(५०) रेहोबोम सोलोमन का पुत्र और जूडा का बादशाह था। (५१) एशिया माइनर में एक प्राचीन नगर।

(५२) एशिया माइनर का एक भाग जो पहले एक स्वतन्त्र राज्य था। (५३) असीरिया का बादशाह।

(५४) एशिया खण्ड के पश्चिमी विभाग का एक प्राचीन राज्य।

(५५) यूनान के स्पार्टा नगर को लेसीडीमन भी कहते थे।

१ (ग्यारह) राजाओं के राज्य-काल का औसत १२ वर्षों की अवधि होती है जब कि उन्हीं के समकालीन प्रजातन्त्रीय एथेन्स में बारह प्रधानों के राज्य-काल का औसत २८३ वर्षों का हुआ।

इस प्रकार हम यहूदी स्पार्टन और एथीनियन तीन राज्य-काल देखते हैं जिनमें से प्रत्येक ईसा से लगभग १ वर्ष पूर्व प्रारम्भ हुआ जिनसे महाभारत के काल का आधी शताब्दी से अधिक का अन्तर नहीं था। तब हम ईसा पूर्व आठवीं शताब्दी में प्रारम्भ हुए बेबीलोनिया असीरिया और मेडिया वंशों के राज्य-काल देखते हैं लगभग इसी समय यूनानी राज्य-काल समाप्त हो जाता है और यहूदी राज्य-काल का अन्त ईसा से छठी शताब्दी पूर्व हो जाता है।

सूर्य और चन्द्र-वंशों से तुलना करने पर उपयुक्त राज्य-काल कितने ही छोटे क्यों न प्रतीत हों किन्तु उनको वर्तमान हिन्दू राज-वंशों के औसत राज्य-कालों से मिलाने पर हमारे विचाराधीन राज्य-कालों की अवधि निश्चित करने में सहायक होंगे और ब्राह्मणों द्वारा की गई असम्भव गणना के विपरीत प्रमाण देंगे।

इस प्रकार की गणना के अनुसार जीवन-काल की लम्बाई जल वायु और जीवन की सामग्री के अनुरूप दिखाई पड़ती है स्पार्टन में एक राज्य-काल की अधिक से अधिक अवधि १२ वर्षों की प्राप्त होती है और अधिक विलासिता पूर्ण एथेन्स में यह २८३ वर्षों की मिलती है। सॉल से प्रारम्भ कर बेबीलोन के समुद्र की निवासित किये जाने तक के काल में यहूदियों के राज्य-काल की अवधि २९३ वर्षों की होती है। मेडिया और सेलिडिमोनिया के राज्य-कालों में सम कालीनता और समस्त इतिहास में उनकी तुलना अणहिलवाड़ा के राजाओं से ही की जा सकती है जिनमें से एक राजा चामुँड (४६) ने लगभग दारा के बराबर काल तक शासन किया।

विद्रोह से लगा कर कैद किये जाने के काल तक विलग हुई दस जातियों के इजराइल में बीस राजा हुए, जो दो शताब्दियों में ही समाप्त हो गये और जिनके राज्य-काल की औसत अवधि दस वर्ष हुई।

स्पार्टन और असीरियन राज वंशों में अधिक से अधिक १२ वर्षों का राज्य-काल तथा कम से कम १८ वर्षों का राज्य-काल पाते हैं तदनुसार साधारणतः एक राज्य-काल की अवधि २५ वर्षों की हुई।

लगभग ७ वर्षों की अवधि में हमारे चार हिन्दू राज-वंशों के राज्य-कालों का औसत २२ वर्ष होगा।

इस समस्त गणना विधि के अनुसार मैं पचास राजाओं की गणनाओं में प्रत्येक राज्य काल की अवधि अनुमानतः २ से २२ वर्ष मानूंगा।

यदि यह परिणाम सन्तोषजनक है और भिन्न भिन्न प्रामाणिक ग्रन्थों से प्राप्त वंशावलियां सही हैं तो हम भी उसी निर्णय पर पहुँचेंगे जिस पर कि केन्टले पहुँचा है जो ज्योतिष विद्या और वंशावलियों को मिलाने की अधिक दार्शनिक विधि के द्वारा युधिष्ठिर के राज्याभिषेक का काल विश्व की उत्पत्ति से २८२५ वर्ष (४७) पीछे मानते हैं यदि यह ४ ४ में से (अर्थात संसार की उत्पत्ति से लगा कर ईसा के जन्म समय तक) निकाल लिया जावे तो युधिष्ठिर के संवत् का प्रारम्भ ईसा से ११७९ वर्ष अथवा विक्रमादित्य से ११२१ वर्ष पूर्व सिद्ध होगा।

---

(४६) ईरान के दारा और अणहिलवाड़ा के चामुण्ड का राज्य-काल समान नहीं था। रासमाला प्राचीन गुजरात प्रबन्ध चिन्तामणि आदि के अनुसार चामुण्ड ने १३ वर्ष के लगभग राज्य किया था। जिसको टॉड ने स्वयं अपनी पुस्तक 'ट्रेवल्स इन वेस्टर्न इंडिया' (पृ० १५०) में स्वीकार किया है, और दारा प्रथम ने ३६ दूसरे ने १९ और तीसरे ने ५ वर्ष राज्य किया था।

(४७) ईसाइयों के मतानुसार महाप्रलय के पश्चात ही संसार की उत्पत्ति मानी गई है।

✱

अध्याय ६

विक्रमादित्य के पश्चात् के राजपूत-कुलों का इतिहास -- विदेशी जातियां जो भारत में प्रविष्ट हुईं -- सीथियन राजपूत एवं स्कैंडिनेवियन जातियों में समानतायें

भारतवर्ष की प्राचीन सैनिक जातियों का अत्यन्त प्राचीन काल से युधिष्ठिर और कृष्ण तक उनसे ले कर विक्रमादित्य तक और फिर वर्तमान काल तक वंश-इतिहास प्रस्तुत करने के पश्चात उन जातियों के विषय में कुछ विचार करना अनुपयुक्त न होगा जो कि इस समय में भारत पर आक्रमण करती रहीं और अब जिनकी गणना राजस्थान के ३६ (छत्तीस) राज-कुलों में की जाती है इन में कुछ आश्चर्यजनक समानतायें भी हमें देखने को मिलेंगी।

ऊपर जिन-जिन जातियों का हमने उल्लेख किया है उन में हैहय अथवा अश्व तक्षक और जाट अथवा जिट्टी जातियां हैं जिनमें देवताओं प्राचीन महावीरों के नामों और अन्य कई पर्वों में चीनी तातारी मुगल हिन्दू और सीथियन जातियों से समानतायें मिलेंगी इससे ऐसा प्रतीत होता है कि इन सब का मूल उद्गम-स्थान एक ही है।

यद्यपि इन जातियों के भारत-प्रवेश के काल के सम्बन्ध में ठीक-ठीक कुछ नहीं कहा जा सकता किन्तु जिन जिन प्रदेशों से ये स्थानान्तर हो कर आईं उनके सम्बन्ध में अधिक आसानी से जानकारी प्राप्त की जा सकती है।

इतिहासकार अबुल गाज़ी द्वारा वर्णित तातार और मुगल जातियों की उत्पत्ति की हम पुराणों में वर्णित जातियों की उत्पत्ति से तुलना करेंगे।

तातारियों के आदि पुरुष का नाम मुगल था। उसके पुत्र का नाम ओगुज़[1] था। वह उत्तरी प्रदेशों में बसने वाली समस्त तातार और मुगल जातियों का मूल पुरुष था।

अगज़ अथवा ओगुज़[2] के छः पुत्र उत्पन्न हुए, जिनमें पहिला किउन[3] या सूरज' पुराणों में वर्णित सूर्य। दूसरा आय[4] (१) (अ) चन्द्रमा' पुराणों में वर्णित इन्दु।

पिछला नाम आयु (आ) (१) चन्द्र-वंश के पूर्व-पुरुष का यह नाम भी पुराणों (२) में मिलता है।

---

१ यदि मुगल और ओगुज़ को मिलाया जावे तो क्या (समास से) मेगास्थ नहीं बन जावेगा ? इंडोस में वर्णित बक्टेस का पुत्र।

२ अन्य चार पुत्र जाती के तत्त्व हैं, जिनका वर्णन मनुष्य के रूप में किया है जिन से तातार की छः जातियाँ निकली हैं। हिन्दुओं में बहुत काल तक दो ही जातियां थीं बाद में अग्नि-कुल की चार जातियों के मिलने से छः हो गईं और अब छत्तीस हैं।

३ अबुल गाज़ी के लिखे अनुसार तातारी भाषा में 'सूर्य और चन्द्र'। ४ दि गिग्नीज़।

---

(१) ये टॉड की नाम सम्बन्धी कल्पनायें हैं जो निम्न लिखित बातों से स्पष्ट हो जाती हैं:—
[अ] स्थान पर 'अय [Ay] लिखा। [आ] स्थान पर 'आयु' [Ayu] लिखा है। वंश-वृक्ष संख्या १ [परिशिष्ट] में 'आयु [Ayu] आर याऊ [Yaou] लिखा है।

(२) पुराणों में पुरुरवा के आठ पुत्रों में से एक का नाम आयु' मिलता है। [संक्षिप्त पद्मपुराणाङ्क पृ ७३]

समस्त तातारी अपने को अयु (चन्द्रमा) पुराणों के इन्दु से उत्पन्न मानते हैं अतः जर्मन जातियों की भांति उनमें भी चन्द्रमा सदैव एक पुरुष–देवता माना गया है।

तातार अय के युल्दूज नामक एक पुत्र हुआ। इसके पुत्र का नाम ह्यू था जिससे चीन देश का प्रथम राजवंश उत्पन्न[५] हुआ।

पुराणों में वर्णित आयु के एक पुत्र हुआ यदु (३) (जिसे यदु भी कहते हैं)। इसके तीसरे पुत्र ह्य (४) से कोई भी वंश शाखा निकली हो ऐसा कोई हिन्दू वंश नहीं बताते परन्तु इससे चीनी लोग अपने को इन्दु-वंश में उत्पन्न हुआ मान सकते हैं।

ऐल खाँ [अय से नवीं] के दो पुत्र हुए, प्रथम कायमान और दूसरा नगस जिनकी सन्तानें समस्त तातारी देश में फैल गईं।

कायमान के वंश में चंगेज़ खाँ की उत्पत्ति मानी जाती है।

नगस[६] सम्भवतः तक्षक अथवा सर्प जाति' का संस्थापक था जिसका वर्णन पुराणों और तातारी वंशावलियों में प्राप्त होता है। डि गिग्नीज ने इसे 'तक–ए–मुरु–मुगल्स्' लिखा है।

ऊपर हमने तीन वंशों की उत्पत्ति का तुलनात्मक अध्ययन किया है। अब हम उनकी देव व वंशावलियों की तुलना करें और यह देखें कि प्रत्येक में इन्दु-वंश के संस्थापक के जन्म के लिये क्या कल्पित कथा कही गई है।

१–हिन्दू पुराणों की कथा–

'जब सूर्य-पुत्र इक्ष्वाकु की कन्या इला (पृथ्वी) जंगलों में भ्रमण कर रही थी तो उसकी भेंट बुध से हुई और इला के साथ किये गये बलात्कार (५) से इन्दु-वंश की उत्पत्ति हुई।

९–अपने प्रथम राजा यु (आयु) के संबंध में चीनी वृत्तान्त —

यात्रा करते हुए एक तारा[७] [जो अथवा बुध] अपनी माँ से टकराया जिससे उसके गर्भ रह गया और यों चीन में राज्य करने वाले प्रथम राजवंश का संस्थापक 'यु' उत्पन्न हुआ। यु ने चीन को ९ (नौ) भागों में विभाजित किया और ईसा से २२०७ वर्ष पूर्व[८] राज्य करने लगा।

इस प्रकार तातारियों का 'अय' चीनियों का 'यु' और हिन्दू पुराणों का 'आयु' तीनों स्पष्टतः महान् इन्दु [चन्द्र] वंश की तीन शाखाओं के संस्थापकों (६) को इंगित करते हैं।

---

५ सर विलियम जोन्स का कथन है कि चीनी लोग अपने को हिन्दुओं से उत्पन्न मानते हैं किन्तु तुलना करने पर प्रकट होता है कि ये दोनों इन्दु जातियां सीथियन उत्पत्ति की थीं।

६ नाग और तक्षक सर्प के संस्कृत नाम हैं जो बुध के प्रतीक हैं। नाग जाति भारत में बहुत प्रसिद्ध है। सीरिया के तक्षिक अथवा तक्षकों की नाग जाति ने लगभग ईसा से पूर्व छठी शताब्दी में भारत पर आक्रमण किया था।

७ डी गिग्नीज् 'हस्तैस आर्मीनियन दैस हुन्स' भाग १ पृ ७।

८ पुराणों से गणित करके निकाले हुए समय के लगभग।

---

(३) यदु' आयु' का पुत्र नहीं था अपितु 'देवयानी' से 'ययाति' का पुत्र तथा 'आयु' का प्रपौत्र था।

(४) 'ह्य' यदु का तीसरा पुत्र नहीं था। 'यदु' के प्रपौत्र तथा शतजित के पुत्र का नाम अवश्य ही 'हय' मिलता है। [संक्षिप्त पद्मपुराणाङ्क पृ ७३]।

(५) बुध ने इला से बलात्कार नहीं किया अपितु अपना वंश–परिचय देकर अपने घर ले गया जहाँ वे बहुत समय तक साथ रहे। [संक्षिप्त पद्मपुराणाङ्क पृ ६१]

(६) चन्द्र (इन्दु) वंश की शाखायें 'ययाति' के पुत्रों से प्रारम्भ हुई थीं।

इन्दु (अथवा चन्द्रमा का) पुत्र 'बुध' (मरक्यूरी) अपने वंश का कुलपति और धर्म संस्थापक (७) बना। इसी भांति चीन में 'फो' तथा यूरोप में जा बसने वाली जातियों के वोडेन और ट्यूटेस[९] हुए।

इससे यह सार निकलता है कि बुध का धर्म इन जातियों का समकालीन होना चाहिये जबकि यह भारतवर्ष में (८) उन्हीं लोगों द्वारा लाया गया। यह उस समय तक उनका मार्ग दर्शन करता रहा जब तक कि धर्म के पूजक सूर्य (९) एवं कृष्ण के धर्म ने उसको दबा नहीं दिया। इसके पश्चात् बुध का धर्म अपने वर्तमान मध्यम स्वरूप जैन धर्म (१) के रूप में परिवर्तित हो गया।

अब हम इनकी सीथियन राजों की उत्पत्ति से तुलना करें, जिसका डायाडोरस[१०] ने वर्णन किया है। इस से हमें प्रतीत होगा कि जो कथायें उसे ज्ञात थीं वैसी ही पुराणों और अबुल गाजी के ग्रन्थ में मिलती हैं।

'सीथियनों का प्रथम निवासस्थान अरक्सीज[११] पर था। उनकी उत्पत्ति पृथ्वी [इला][१२] से उत्पन्न एक कुमारी से हुई जिसका कमर से ऊपर का स्वरूप मानव का और नीचे का भाग सर्प (बुध जाति का चिह्न) का था। जुपिटर से उसके सीथिस[१३] नामक पुत्र उत्पन्न हुआ जिसी के नाम पर जाति का भी यही नाम पड़ गया। सीथिस के दो पुत्र थे पालास और नापास [प्रश्न—यह तक्षक वंशावली की सर्प जाति का नापास तो नहीं था?]। ये दोनों ही अपने महान् कार्यों के लिये अत्यन्त प्रसिद्ध हुए हैं। उन्होंने देशों का विभाजन किया और उन्हीं के नामों के पीछे पालियन[१४] (प्रश्न—पाली?) और नापियन जातियों के नाम पड़ गये। वे अपनी सेनाएं मिश्र में ठेठ नील तक ले गये और उन्होंने कई राज्यों को अपने आधीन किया। उन्होंने सीथियन साम्राज्य का विस्तार ठेठ पूर्वीय समुद्र कैस्पियन सागर और मोइटिस झील तक किया। इस जाति में कई राजा हुए, जिनमें सैकेन्स [सके] मेसेगेटी [गेटे] अथवा जाट, एरी-मास्पियन [अश्वों की अश्व] तथा कई

९ 'तात' का अर्थ संस्कृत में 'पिता' है। प्रश्न — क्या अब तक और तात पिता के पुत्र को कहते हैं?

१० डायाडोरस—सिक्यूलस [Siculus] पुस्तक २।

११ पुराणों की अरवली; कैस्पियन् अथवा सिन्धुन। इस प्रकार पुराण शाकद्वीप अथवा सीथिया का वर्णन करते हैं। डायाडोरस (Lib,II) ने 'ईमोडस्' को सीथिया और भारत के मध्य की सीमा पर बताया है।

१२ चन्द्र-वंश की जननी 'इला' मनुष्य रूप में पृथ्वी का प्रतीक है। इसे सैक्सनों में 'अर्था' युनानियों में 'इरा' और यहूदियों में 'अर्ड' कहते हैं।

१३ तक्ताई से सीथियन अर्थात् शाकद्वीप और ईस अर्थात् स्वामी शाकद्वीप अथवा सीथिया का स्वामी।

१४ प्रश्न :— क्या सीथियन—पाली ही तो मिश्र के चरवाहे आक्रमणकारी नहीं थे? पाली अक्षर (११) अभी भी विद्यमान हैं और बुध लोगों के मिश्रों के अक्षरों के पुरुषों [जिनमें से कुछ मेरे पास हैं] के समान (११) ही प्रतीत होते हैं। बहुत से अक्षर कान्यिक लिपि से भी मिलते हैं।

(७) यदि टॉड का तात्पर्य यहाँ चन्द्रवंश से है तो यह 'चन्द्रमा' से प्रारम्भ हुआ था न कि बुध से। यदि बौद्ध धर्म से है तो वह शाक्यवंशी गौतम बुध (सिद्धार्थ) से चला था। ऐसा ज्ञात होता है कि टॉड ने दोनों को एक मान कर यह गड़बड़ की है।

(८) बौद्ध धर्म मध्य एशिया से भारत में नहीं आया अपितु वह भारत से मध्य एशिया में फैला था।

(९) सूर्य की उपासना भारत में अत्यन्त प्राचीन है। बौद्ध धर्म बहुत बाद में प्रचलित हुआ था।

(१) जैन धर्म बौद्ध धर्म का रूपान्तर न होकर उससे भिन्न और अधिक प्राचीन है। बौद्ध धर्म के संस्थापक सिद्धार्थ बुद्ध के समय के आस पास तो जैनियों के चौबीसवें तीर्थङ्कर 'महावीर स्वामी' हुए थे।

(११) पाली भाषा के नाम से ही टॉड ने प्राचीन लिपि को पाली लिपि लिख दिया है। इसका वास्तविक नाम ब्राह्मी लिपि है। एक विशेष बात यह भी है कि जिस किसी भी लेख की लिपि टॉड की समझ में नहीं आई उसी की लिपि को उसने पाली लिख दिया है।

अन्य जातियां प्रस्फुटित हुईं। इन्होंने असीरिया और मीडिया[१५] को विजय किया उनके साम्राज्य को उलट दिया और वहां के निवासियों को अरक्सीज् के पास ले जाकर बसाया जहां वे सोरोमेसियन[१६] कहलाये।

यूरोपियन सभ्यता के प्रारम्भिक काल में प्राप्त सामान्य नामों की भांति असे गेटे, अस्व और तक्षक (११) नाम हमारे ३६ राजवंशों (११) में भी प्राप्त होते हैं अतः हमें उनके प्रारम्भिक निवासस्थानों के सम्बन्ध में प्राचीनतम प्रामाणिक सूत्रों का पता लगाना चाहिए।

स्ट्रेबो[१७] कहता है अब कैस्पीयन सागर के पूर्व की समस्त जातियां सीथियन कहलाती हैं, किन्तु प्रत्येक जाति का नाम विशेष भी है जैसे समुद्र से आगे डाहे[१८] तथा अधिक पूर्व में मेसेगेटी [बड़ी जेटे] और सके। ये सभी जातियां खानाबदोश हैं किन्तु उन घुमक्कड़ों में भी असी[१९] पसियानी टोचरी और सकरोली अधिक प्रसिद्ध हैं, जिन्होंने यूनानियों से बैक्ट्रिया छीन लिया था। सके[२०] [जातियों] ने एशिया में किमेरियनों की भांति विस्फोटक आक्रमण किये इस भांति उन्होंने बैक्ट्रिया ले लिया और आर्मेनिया के सर्वोत्तम भाग पर अपना अधिकार कर लिया, जो उनके नाम से सकसेनी[२१] कहलाता है।

हम इस बात का पता लगाने के लिए नहीं रुकेंगे कि राजस्थान में कौन-कौन सी जातियां चन्द्र-वंश की अस्व और मीढ शाखाओं की सन्तानें हैं जो नये नाम धारण करके पुनः भारत में आईं। हमें अपने अनुमान को उनके आक्रमण-सम्बन्धी तथ्यों तक ही सीमित रखना है और यह पता लगाना है कि उनके इस आक्रमण का काल तथा उन्हीं जातियों की अन्य टुकड़ियों के यूरोप की ओर स्थानान्तरण होने का काल क्या एक ही था, इससे यह सार निकलता है कि राजपूत जातियों तथा यूरोप की प्राचीन जातियों की उत्पत्ति एक ही थी। जिसके लिये हम और अधिक प्रमाण उनकी समान पौराणिक गाथाओं युद्ध-प्रिय आचार-विचार, काव्य भाषा और यहां तक कि संगीत और शिल्प कला के नमूनों

---

१५ इन्दु (चन्द्र) वंश की अश्व भु जला से निकली तीन शाखाओं के नामों में मिढ अथवा मीढ़ अवश्य लगा हुआ है, पुरामीढ़ अजमीढ़ और देवमीढ़। अस्व—अश्व जाति (११) के वे लोग जिन्होंने असीरिया और मीडिया पर आक्रमण किया था क्या बाजस्व (१२) के पुत्र थे ? उनके बारे में यह स्पष्ट कहा गया है कि वे अपने पैतृक स्थान पांचालिक से निकल कर सिन्ध के पश्चिमी प्रदेशों में फैल गये थे।

१६ सूर्य के उपासक, सूर्यवंशी।

१७ स्ट्रेबो Lib, ११ पृ २५४।

१८ डाहिमा: (१४) छत्तीस जातियों में से एक, जो अब लुप्तप्राय हो गई है।

१९ असी और टोचरी जो पुराणों में वर्णित शाक द्वीप की अश्व और तक्षक अथवा तुरुष्क जातियां हैं।

"सम्भव है कि एम डी एन्विल को इस 'टोचरी' नाम से ऐसा प्रतीत हुआ हो कि 'टोचरीस्तान' नामक प्रदेश में ऐसे [टोचरी] नाम वाली जातियां रहती होंगी।" जिसके सम्बन्ध में प्रसिद्ध भूगोलवेत्ता लिखता है कि यह पहाड़ियों तथा बेहुत अथवा अमु नदी के मध्य स्थित है। स्ट्रेबन खण्ड ११ पृ २५५, नोट सं० ३।

२० मैं एक बार फिर कहूंगा कि संस्कृत में 'सकी' का अर्थ 'शाखा' है जिसका तात्पर्य शाखायें अथवा जातियां है।

२१ "सम्भवतः सैकेसेनी अल्बानिया और आर्मेनिया की सीमा पर आर्मीनिया का एक प्रदेश था"—स्ट्रेबन खण्ड १ नोट ४ पृ० ११९। 'सैकेसेनी सैक्सन जाति के पूर्वज थे'—टर्नर का एंग्लो सैक्सन जाति का इतिहास।

---

(१२) 'अस्व' या 'अश्व' दोनों ही जातियां चन्द्र-वंश में नहीं हैं। 'बाजस्व' का 'अस्व' पद देख कर टॉड ने यह प्रश्न किया है। इसी भांति 'मीढ़' शब्द से 'मीडिया' प्रदेश की 'मीढ' जाति से मिलान किया है।

(११) आगे सातवें प्रकरण में इस पर अधिक प्रकाश पड़ेगा। ये नाम ३६ राज-वंशों में नहीं हैं। टॉड ने सीथियनों से सम्बन्ध मिलाने के लिए ही उन्हें उलट-पुलट कर दिया है।

(१४) 'डाहिया' शब्द 'डाहिमा' से मिलता जुलता होने के कारण ही टॉड ने यह अनुमान लगाया है।

में प्राप्त कर सकते हैं।[१९]

इन्दु, सीथिक जैटे (२०) तक्षक और असी जातियों में से सर्वप्रथम शेषनाग देश [टोचरिस्तान ?] (२१) से शेष नाग [तक्षक] वंश ने भारत में प्रवेश किया। पुराणों में पहला वर्णन इन्हीं का मिलता है। गणना के अनुसार यह समय छ: शताब्दी ईसा पूर्व (२२) होना चाहिये। लगभग इसी काल में इन्हीं जातियों ने एशिया माइनर पर चढ़ाई करके विजय प्राप्त की तत्पश्चात् स्कैंडिनेविया और उसके तुरन्त ही बाद असी और टोचरी जाति ने बैक्ट्रिया के युनानी राज्य का तख्ता उलट दिया। असी[२१] काठी और किम्बी जातियों ने बाल्टिक समुद्र के तट से रोमन जाति पर कई आक्रमण किए।

यदि हम यह बता सकें कि जर्मन लोग प्रारम्भ में सीथियन अथवा जाट [जैटे या जाट] लोग ही थे तो शासन-व्यवस्था रीति-नीति आदि बातों की उत्पत्ति के सम्बन्ध में जिज्ञासा और खोज का एक विस्तृत क्षेत्र खुल जाएगा जिससे युरोप की समस्त प्राचीन बातें एक नवीन स्वरूप धारण कर लेंगी। माण्टेस्क्यू तथा अन्य महान

१९ हेरोडोटस [मेल्पोमेनि पृ ११०] कहता है :—मेसेजेटी लोगों द्वारा निकाल दिये जाने पर सिमेरियन लोग क्रीमिया (१५) में जाकर बस गये।" यहाँ मिसेजेटी अथवा पश्चिमी जेटी लोग रहते थे और तभी से सिम्री और किम्बी दोनों जातियों के लोग बाल्टिक समुद्र के किनारे जा बसे।

इन जातियों के निवास-स्थान जैटे किपचक (१६) में कोमानी जाति के स्मारक-चिह्नों का वर्णन करते हुए पादरी रुब्रुक्विस लिखता है 'उनके स्मारक-चिह्न और पाषाण के बने हुए चक्कर हमारे केल्ट (१७) या ड्रुइड (१८) लोगों में प्रचलित स्मारक-चिह्नों के सदृश हैं' (निकल्स न प्रश)।

कोमानी (१९) लोग सौराष्ट्र की काठी जाति की एक शाखा हैं जिनके पालिये अर्थात् अश्वमेध सम्बन्धी स्मारक-स्तम्भ प्रत्येक नगर और गाँव में झुण्ड के झुण्ड दिखाई पड़ते हैं। काठी जाति प्रारम्भिक जर्मन जातियों में एक थी।

२१ जैटे युट अथवा जट जातियों के लिए 'असि' नाम का उपयोग उस समय किया जाता था जबकि उन्होंने स्केंडिनेविया पर आक्रमण किया और जूटलैंड अथवा जटलैंड बसाया (देखिये 'ऐड्डा' मालेट की भूमिका)।

(१५) क्रीमिया युरोप के अन्तर्गत काले समुद्र में एक प्रायद्वीप।

(१६) मध्य एशिया में रहने वाली किपचक नामक मंगोलियन जाति का निवास-स्थान।

(१७) पश्चिमी युरोप की एक प्राचीन जाति जो पीछे जर्मनी रूसी स्पेन पुर्तगाल ब्रिटेन आदि भिन्न-भिन्न भागों में फैल गई थी।

(१८) केल्ट जाति के धर्म-गुरु जो अनेक देवी-देवताओं और अग्नि के पूजक थे।

(१९) काठियों की तीन मुख्य शाखाओं में से एक शाखा 'खाचर' है जिसको टॉड ने कोमानी लिखा है।

(२) इन्दु' शब्द का प्रयोग टॉड ने चन्द्र-वंश के लिये किया है 'चन्द्र-वंश' का नाम 'चन्द्रमा' से पड़ा था। चन्द्रमा की उत्पत्ति 'अत्रि' से है। बुध चन्द्रमा को सन्तान माने जाते हैं और ये कोई भी बाहर से नहीं आये थे। यहाँ टॉड ने भ्रमवश भिन्न कर यह लिखा है।

(२१) 'टोचरिस्तान' का नाम कहीं भी "शेषनाग देश' नहीं मिलता। पुराणों में शिशुनाग वंशी राजाओं के राज्य करने का वर्णन मिलता है। ऐसा ज्ञात होता है कि 'शिशुनाग' को टॉड ने 'शेषनाग' नाम दिया है।

(२२) टॉड की इस मान्यता का अर्थ होगा कि ईसा से छ: शताब्दी पूर्व शिशुनाग-वंशी राजा राज्य करते थे। किन्तु टॉड ने ही महाभारत का समय ११० वर्ष ई पू माना है देखें पृ० ८७।

लेखकों की भाँति जर्मनी की घुमक्कड़ जातियों में यूरोप की प्राचीन बातों की खोज न कर हम सीथियन जातियों की रीति-नीतियों में उनका पता लगायेंगे जिनका विस्तृत वर्णन हेरोडोटस ने किया है। सीथियन जातियों ने स्केंडिनेविया पर ईसा से पाँच सौ वर्ष पूर्व अधिकार कर लिया था। ये सीथियन वोडिन (ओडिन) अथवा बुध की उपासना करते थे और स्वयं को उनकी सन्तान मानते थे। तुलना करने पर यह सिद्ध होता है कि गॉथ लोगों के पौराणिक आख्यान यूनान के ही थे जिनके देवता कोहलस और टेरा [मन्यूंरी और इला][24] की सन्तान थे। वन देवियाँ देव और परियाँ तथा अन्य समस्त यूनानी और रोमन अन्ध-विश्वास-पूर्ण बातें स्केंडिनेविया के धर्म में देखी जा सकती हैं।[25] गॉथ लोग बलि किये पशुओं के हृदय से शकुन लेते थे और भविष्यवाणी करने वाले लोगों पर विश्वास करते थे। फ्रेया (२३) को वीनस (२४) के स्थान पर और वल्काइरी (२५) को पारसी (२६) के स्थान पर मानते थे।

इन पौराणिक सदृश्यताओं का विवेचन करने से पूर्व हम यूरोप की प्राचीन जातियों और सीथियन राजपूतों की एक ही उत्पत्ति के सम्बन्ध में भी कुछ विचार प्रस्तुत करेंगे।

अबुल गाज़ी की पुस्तक का अनुवादक अपनी भूमिका में लिखता है 'यदि हम इस बात पर विचार करें कि हमारा तातारियों से कितना निकट सम्बन्ध है तथा हम यह मानें कि हमारे पूर्वज प्रारम्भ में उत्तरी एशिया से आये थे हमारी प्रथायें नियम और आचार-विचार वैसे ही थे जैसे कि पहले तातारियों के रहे हैं तो उनके प्रति हमारी घृणा कम हो जायेगी। संक्षेप में हम यह कह सकते हैं कि हम तातारियों की एक बस्ती मात्र थे।

ये सभी जातियाँ तातार देश से आईं थीं जिन्होंने क्रमशः किम्मरन[26] केल्ट और गाल नामों को धारण कर सम्पूर्ण उत्तरी यूरोप को अपने आधीन कर लिया था। गाथ हूण अलान स्वीड वान्डल फ्रेंक आदि सभी कौन थे ? ये सभी एक ही छत्ते से निकलने वाली मधुमक्खियों के झुण्ड थे। स्वीडिश लोगों के ऐतिहासिक लेख बताते हैं कि स्वीड[27] लोग काशगर (२८) से आये थे। सैक्सन तथा किपचक भाषाओं में अत्यन्त निकटता है; केल्टिक भाषा जो अभी भी ब्रिटेन और वेल्स में बोली जाती है इस बात का प्रमाण है कि वहाँ के निवासी तातार राष्ट्रों की सन्तानें हैं।

२४ बुध और पृथ्वी।

२५ पिंकर्टन रचित "भाग दी गोल्ड्स" खण्ड २ पृ ९४।

२६. अबुल गाज़ी का कथन है कि केंद्र के आठ पुत्रों में से एक केमेरी था; अतः केमेरी सिमेरियाई अथवा सिम्ब्री इससे ही हैं। केमेरी तौराद की एक जाति है।

२७ डि गिन्गीज के लिखे अनुसार सुइयोनेस, सुएवी अथवा सू। अथवा सुवि अथवा सुवि जातियाँ देते हैं। मार्कोपोलो (२७) काशगर (२) को स्वीड लोगों का जन्म-स्थान बताता है जहाँ वह छठी शताब्दी में उपस्थित था। डी ला क्रोइक्स भी कहता है कि सन् १६६१ में स्वर्डिनस्टेस ने, जो पेरिस में स्वीडन का राजदूत था, उसे बताया था कि उसने स्वीडन के इतिहास ग्रन्थों में पढ़ा है कि काशगर उनका देश था। अब हम लोग उत्तरी चीन से जोड़े गये तो०

(२३) प्रेम और सौन्दर्य की देवी जिसको स्केंडिनेविया वाले अपने देवता ओडिन की स्त्री मानते हैं।

(२४) रोमनों की पौराणिक कथाओं में वर्णित प्रेम की देवी।

(२५) युद्ध में वीर-गति को प्राप्त हुए पुरुषों की सेवा करने वाली रूपवती अप्सरायें।

(२६) भाग्य की तीन देवियाँ।

(२७) मार्को पोलो का जन्म १२५४ ई० और देहान्त १३२४ ई० में हुआ था अतः वह काशगर में छठी शताब्दी में न होकर तेरहवीं शताब्दी में था।

(२८) चीन के पूर्वी तुर्किस्तान का प्रसिद्ध नगर, जो प्राचीन काल में एक स्वतन्त्र राजा की राजधानी था।

में इन्दु अथवा चन्द्र-वंश के संस्थापक की पूजा प्रचलित की।

हैरोडोटस का कथन है कि जेटे लोग ईश्वरवादी[३४] थे और बौद्धों की भाँति आत्मा के अमर होने में विश्वास रखते थे।

असी जेटे अथवा स्कैंडिनेविया के जट [जिससे सिम्बरिक चेरसोनीज का नाम पड़ा है], तथा सीथियन और भारतीय जेटों में धार्मिक साम्यताएँ दिखाने से पूर्व हम असी अथवा अश्व जाति के सम्बन्ध में कुछ लिखेंगे।

यह सम्भव है कि विशाल भूभाग एशिया का नाम इन्दु-वंश की अश्व जाति [देवमीढ़ और बाजस्व की सन्तानों] के नाम से ही पड़ा हो जो सिन्धु नदी के दोनों ओर के प्रदेशों में फैल गई थीं।

हैरोडोटस[३५] का कथन है कि यूनानियों ने प्रोमेथियस (३६) की पत्नी के नाम से एशिया का नामकरण किया था। कुछ अन्य विद्वान् मेनेस (३७) के एक पौत्र के नाम से ऐसा होना मानते हैं, जिससे कुलपति मनु की सन्तान अश्व जाति का ही बोध होता है।

माता "शाकम्भरी[३७] माता" शाखा की देवी है जो शाखा अथवा वंशों की रक्षक माता है।

प्रत्येक राजपूत किसी भी कार्य को करने से पूर्व अपनी आराध्य देवी के रूप में आश-पूर्णा [इच्छा-पूर्ति करने वाली देवी] की अथवा शाकम्भरी देवी की उपासना करता है।

अश्व लोग मुख्यतः इन्दु-वंश के ही थे किन्तु सूर्य-वंशियों की एक शाखा का भी यही नाम है। यह नाम उनका अत्युत्तम अश्वारोही[३८] होना प्रगट करता है। वे अश्व घोड़े की पूजा करते थे और सूर्य को उसकी बलि चढ़ाते

---

३४ सूर्य उनका आदि देव था, यद्यपि वे जेमीलक्सीज को डिस् प्लूटो (३५) अर्थात् यम के समान भयानक मानते थे सीथिक जाति के केल्ट लोगों का मुख्य देवता सम्भवतः था। पिन्कर्टन 'आन दी गोथ्स' खण्ड २, पृ २१२।

३५. 'मेलपोमेनी' अध्याय १४ पृ ४२।   ३६. अथवा।

३७ शाकम्भरी (३८) शाखा का बहु वचन शाकम्-अंश शाखाएँ तथा अम्बर-रक्षा करना।

३८ आशा-पूर्णा।

३९. अश्व और 'तुरग' (३९) संस्कृत में घोड़े के पर्यायवाची हैं; फारसी में अस्प। नदी इस्टीकीस (४०) ने इस शब्द का प्रयोग ईसा पूर्व छठी शताब्दी में सीथिया पर जेटे आक्रमण के लिये किया था। डायोडोरस (४१) लिखता है— 'तोगरमाह (४२) के पुत्र घोड़ों पर सवार थे।" यह वही समय है जब कि तक्षकों ने भारत पर आक्रमण किया था।

---

(३५) यूनानियों की देव कथाओं में वर्णित काले रंग का भयानक देवता, जो हिन्दुओं के 'यम' देवता के समान है।

(३६) यूनानियों का एक बुद्धिमान पौराणिक देवता जिसने मिट्टी के मनुष्य बनाये और स्वर्ग से अग्नि चुरा कर उनको जीवन-दान दिया।

(३७) रोमन लोगों की पौराणिक कथाओं में वर्णित उनका कुल देवता।

(३८) शाकम्भरी चौहानों की प्रमुख देवी है जो साँभर [चौहानों की प्रथम राजधानी] में है। 'शाकम्' शब्द शाखा का बहुवचन नहीं है और न अम्बर का अर्थ रक्षा करना ही है।

(३९) देखें—अध्याय पहला पृ ४१ की टिप्पणी सं १४।

(४) ईसाइ धर्म-ग्रन्थों के अनुसार जेरुसलम निवासी बुजी [Bud] का पुत्र। इसका जन्म ६२४ ई० पू० में माना जाता है।

(४१) यूनान का प्रसिद्ध इतिहास-लेखक जो प्रथम शताब्दी ई पू में हुआ था

(४२) जैवी लोगों का प्रसिद्ध पूर्वज।

। यह महान् महोत्सव अश्वमेध यज्ञ जो शीत–संक्रान्ति (४२) के त्यौहार पर किया जाता था अकेला ही इस बात का उदाहरण है कि उनकी और केल्टिक लोगों की एक ही उत्पत्ति थी। पिंकर्टन का यह कथन सत्य था कि एक महान् (४३) केस्पियन सागर से गंगा नदी तक फैला हुआ था।

ईसा से बारह सौ वर्ष पूर्व भी गंगा और सरयू के तटों पर सूर्य-वंशी राजाओं द्वारा अश्वमेध यज्ञ किया जाता था। इसी भांति साईरस के काल में गेटी जातियां किया करती थीं। हेरोडोटस लिखता है कि सृष्टि के प्राणियों में सब से शीघ्रगामी प्राणी को देवताओं के स्वामी को भेंट करना ठीक समझ कर वे इस महोत्सव को किया करते थे। यह पूजा और घोड़े के बलिदान की प्रथा आज भी राजपूतों में प्राप्त होती है। इस महोत्सव का वर्णन कर हम इन सादृश्यताओं का वृत्तान्त समाप्त करेंगे।

गेटी जाति के असी लोग अपने सूर्य देवता की प्रतीक अश्वमेध की यह प्रथा स्कैंडिनेविया में ले गये और जर्मनी के वनों में तथा एल्ब और वेसर (४४) नदियों के किनारे पर जाकर बसने वाली सु, सुएवी कटी गुथिन्दरी गेटी आदि जातियों ने भी यही किया।

दुग्ध वर्ण और श्वेत अश्व (४५) देवताओं का उपकरण माना जाता था जिसके हिनहिनाने से वे भावी घटनाओं का आभास प्राप्त कर लेते थे। यही धारणायें गंगा और यमुना पर रहने वाली बुध [बोधिन] की सन्तति अश्व जाति में उस काल से मिलती हैं, जब कि स्कैंडिनेविया की चट्टानों और बाल्टिक सागर के तट का मनुष्य को पता भी नहीं लगा था। इसी शुभ शकुन से डेरियस हिस्टास्पस (४६) [हीसना=हिनहिनाना अस्प=घोड़ा] को राज्य सिंहासन प्राप्त हुआ। भाट कवि चन्द इस शकुन को प्रमुख वीरों की मृत्यु का शकुन मानता था।

स्कैंडिनेविया के युद्ध देवता का घोड़ा अपसाला (४७) के मन्दिर में रक्खा जाता था और सदैव युद्ध के पश्चात् हाँफता हुआ और पसीने से लथपथ पाया जाता था"। टेसिटस (४८) का कथन है "जर्मन लोग मुद्रा तभी

---

(४२) देखें अध्याय पहला पृ० ६१ की टिप्पणी संख्या १२। इसके प्रमाण में हम दो अश्वमेध यज्ञों की तिथियां देते हैं –

(अ) मर्यादा पुरुषोत्तम श्री रामचन्द्र जी को अश्वमेध यज्ञ का विधान बताते हुए अगस्त्य जी कहते हैं– वैसाख मास की पूर्णिमा को अश्व की पूजा कर के पत्र लिखे' –संक्षिप्त पद्मपुराणाङ्क पृ ४०२।

(आ) सवाई जयसिंह (जयपुर) के यज्ञ की तिथि नीचे लिखे अनुसार दो मिली हैं –

(क) यज्ञ का आरम्भ विक्रम संवत् १७६१ श्रावण सुदी ६ [२८ जौलाई १७३४ ई०] को हुआ। ओझा निबन्ध संग्रह भाग ३–४, प १००।

(ख) कितने ही महत्त्वपूर्ण कार्य संपादन करने के पश्चात् सं० १७८८ में उन्होंने अश्वमेध यज्ञ किया यह राजकीय अभिलेखों में 'फर्द करार मिती वैसाख शुक्ला ४ सं० १७६८ में दर्ज है।

[ईश्वर विलास महाकाव्य गोपालनारायण बहुरा का परिशिष्ट सं २ पृ० ६१।]

उपयु क्त टिप्पणियों से स्पष्ट हो जाता है कि (अश्वमेध यज्ञ) शीत संक्रांति का त्यौहार न था।

(४४) ये नदियां जर्मनी में हैं।

(४५) अश्व के सम्बन्ध में अगस्त्य जी ने बताया 'जिसका रंग गंगा-जल के समान उज्ज्वल तथा शरीर सुन्दर हो जिसका कान श्याम मुख लाल और पूछ पीले रंग की हो तथा जो देखने में भी सुन्दर जान पड़े ऐसे उत्तम लक्षणों से लक्षित अश्व ही अश्वमेध में माना है। (संक्षिप्त पद्मपुराणाङ्क पृ० ४१३)

(४६) ईरान का बादशाह दारा (प्रथम) ५२२-४८६ ई० पू०। (४७) यूरोप के स्वीडन देश में एक प्रसिद्ध नगर।

(४८) रोमन इतिहासकार जन्म ई० सन् ५५ के लगभग और देहान्त ई सन् १२० के लगभग।

स्वीकार करते थे जब कि उस पर घोड़े की आकृति बनी हुई होती थी"।

पहुना ने लिखा है कि जिन जिट लोगों ने स्कैंडिनेविया में प्रवेश किया था वे असि कहलाते थे और उनकी प्रथम बस्ती असगर्ड [४] थी।

पिंकर्टन पहुना की प्रमाणिकता को स्वीकार नहीं करता किन्तु थार्डियस की मान्यता को स्वीकार करता है जो आइसलैंड के ऐतिहासिक लेखों और वंशावलियों के आधार पर यह निर्णय करता है कि [बुध] स्कैंडिनेविया में ईसा से ५ वर्ष पूर्व डेरियस हिस्टास्पस के काल में आया था।

यह अन्तिम बुध अथवा महावीर का काल था जिसका संवत् विक्रम से ४७० वर्ष (४६) तथा ईसा से ५३३ वर्ष (८६) पूर्व चला था।

स्कैंडिनेविया में ओडिन का उत्तराधिकारी गौतम था और गौतम अन्तिम बुध महावीर [५१] (५०) का उत्तराधिकारी था जो गौतम अथवा गौदम के नाम से आज भी मलक्का के जलडमरूमध्य से लेकर केस्पियन सागर तक पूजा जाता है।

पिंकर्टन का कहना है कि अन्य प्राचीन वृतान्त दूसरे ओडिन के सम्बन्ध में बताते हैं जिसे ईसा से १ वर्ष पूर्व मुख्य देवता के रूप में माना जाता था।

मैलेट के मतानुसार दो ओडिन हुए थे किन्तु पिंकर्टन के विचारानुसार उसे थार्डियस का मत स्वीकार कर लेना चाहिये था जिसके अनुसार ओडिन ५ ई पू में हुआ था।

एक विशिष्ट तथ्य यह है कि दोनों स्कैंडिनेवियन ओडिनों के काल बाइसवें बुध नेमीनाथ और चौबीसवें तथा अन्तिम बुध महावीर काल से मिलता है। प्रथम १ अथवा ११०० वर्ष (५१) ईसा पूर्व कृष्ण का समकालीन था तथा दूसरा ५३३ ईसा पूर्व (५२) में हुआ था। यूरोप की केल्टी आदि जातियां मर्करी [बुध] को अपने वंश मस्य एक [कुलपति] के रूप में पूजती थी इस से पहले की अस्सी तक्षक और जेटिक जातियां भी ऐसा ही करती थीं।

चीनी और तातारी इतिहासकार भी बुध अथवा 'फो' को ईसा से १ २७ वर्ष पूर्व (५२) आया बताते हैं।

---

४ असी-गढ़ अर्थात असी लोगों का गढ़। ५१ महा—बड़ा वीर=युद्ध करने वाला।

(४६) जैनों के अन्तिम तीर्थंकर महावीर स्वामी के निर्वाण के समय से जैनों में वीर निर्वाण संवत् चला इसका प्रारम्भ ४७ वि० पू० है न कि ४७० वर्ष वि पू० अतः ईसा से भी ५२६ वर्ष पूर्व होगा।

(५) (अ) गौतम बुद्ध बौद्ध धर्म का संस्थापक था अतः वह किसी का भी उत्तराधिकारी नहीं हो सकता।

(आ) बुद्ध चन्द्र-वंश का पूर्वज था न कि किसी धर्म विशेष का संस्थापक।

(इ) महावीर स्वामी जैन धर्म के अन्तिम तीर्थंकर हुए हैं और जैन धर्म बहुत प्राचीन है, अतः उत्तराधिकारी का प्रश्न ही नहीं उठता।

(५१) कृष्ण महाभारत में थे अतः महाभारत के समय के सम्बन्ध में देखें—अध्याय दूसरा पृ० ४८ हमारी टिप्पणी संख्या १८।

(५) ऊपर टाड ने दो 'बुध' होने की कल्पना की है; प्रथम १ २७ ई० पू० में तथा दूसरा ५०० ई० पू में। जिसका कारण यह ज्ञात होता है कि चीनियों में यह प्रचलित है कि तथागत 'बुद्ध' का निर्वाण १ २७ ई प के लगभग हुआ किन्तु लंका आदि कुछ अन्य देशों में बुद्ध का निर्वाण ५४४ ई० पू० में हुआ मानते हैं। तथागत बुद्ध के निर्वाण सम्बन्धी मतभेदों के उदाहरण देखें:—

प्रथम यात्री फाहियान लिखता है 'मूर्ति की स्थापना बुद्ध देव के परिनिर्वाण काल से ३० वर्ष पश्चात् हुई उस समय हान देश में चाव-वंशीय पिंग का राज्य था। पिंग का शासन ७५०—७१९ ई पू में था (अतः ७५०+३० =१ ७०)। दूसरे यात्री ह्यूनसांग का कथन है कि "उसके" काल से

बक्ट्रिया तथा अक्सू नदी के किनारे-किनारे बसी हुई यूचि जाति ने अन्त में जेटा अथवा येटाम ४२ अथवा जटी नाम धारण कर लिया। उनका साम्राज्य एशिया के इस भाग में लम्बे समय तक स्थापित रहा और यहां भारत तक में भी फैल गया। ये वही लोग थे जिन्हें यूनानियों ने इण्डो-सीथियन नाम दिया था। उनके आचार-विचार तुर्कों ४३ के समान ही हैं। पूर्वीय देशों में जो राज्य विप्लव फूट पड़े उनके परिणामों का प्रभाव दूर-दूर तक पड़ा।४४

इन समस्त ग्रन्थकारों के अनुसार यूरोप में इन सीथियन जातियों के प्रवेश का काल वही है जो उनके भारत प्रवेश का था।

शेषनाग देश से तक्षक जाति के भारत-प्रवेश का काल छठी शताब्दी ई० पू० माना गया (४४) है। इसी घटना और काल के सम्बन्ध में पुराणों में लिखा है 'इस समय से कोई शुद्ध रक्त का राजा नहीं मिलेगा केवल शूद्र तुरुष्क तथा यवन राजा ही सर्वत्र फैल जायेंगे'।

ये सभी इण्डो सीथियन आक्रमणकारी बुध के धर्म को मानने वाले थे। इसी कारण स्केंडिनेवियन अथवा जर्मन जातियों और राजपूतों के मध्य आचार-विचार और पौराणिक विश्वासों में सादृश्यता मिलती है जो उनके युद्ध सम्बन्धी काव्यों के मिलान करने पर अधिक बढ़ जाती है।

मूल उत्पत्ति की सादृश्यता देखने की दृष्टि से धार्मिक आचार विचार की समानता अधिक उत्तम प्रमाण है।

---

४२ युटलैंड (४३) यह नाम है जो सम्पूर्ण सिम्ब्रिक चेर्सोनीज़ या बरमेंड का रक्खा गया था। पिकर्टन; ष्माम की यॉम्स्।

४३ तुर्क तुरुष्क तक्षक अथवा टाकक ये तुर्कों के नाम हैं। अबुल गाजी तातारियों का इतिहास।

४४ हूणों का इतिहास खण्ड १ पृ ४२।

---

* १२०० १३०० १४४२ और ६०० से १००० वर्ष पूर्व तक का काल भिन्न-भिन्न विद्वान् मानते हैं। इस सम्बन्ध में सर्वपल्ली राधाकृष्णन' ने लिखा है [आजकल मासिक पत्र, दिसम्बर १६५६ में] "थर वाद बौद्ध मत के अनुसार बुद्ध का परिनिर्वाण ५४४ ई० पू० में हुआ"। "यद्यपि बौद्ध मत के विभिन्न निकाय विभिन्न प्रकार की काल-गणना मानते हैं फिर भी गौतम बुद्ध के 'महापरिनिर्वाण की ढाई हजारवी पुण्य-तिथि वे सन मई १६५६ ई० की पूर्णिमा को ही मानते हैं।

तिथियों की इतनी बड़ी भिन्नता एक ही बुध के विषय में है, यह बात टॉड को संभव न जंची होगी अतः उसने दो बुध होने की कल्पना कर ली क्योंकि टॉड महाभारत का समय ११०० ई० पू० के लगभग मानते हैं अत उन्होंने कृष्ण समकालीन नमीनाथ को पहला बुध मान लिया।

(४३) इस समय यूरोप के अन्तर्गत डेनमार्क देश ही युटलैण्ड या जटलैण्ड माना जाता है, परन्तु पहले डेनमार्क के अतिरिक्त एशिया का कुछ भाग का भी यही नाम था।

(४४) (क) जनमेजय का 'नाग-यज्ञ' प्रसिद्ध है स्वयं टॉड ने इसे नाग जाति से युद्ध माना है [इसका वर्णन आगे आयगा]। यह जनमेजय ने अपने पिता परीक्षित के तक्षक नाग द्वारा मारे जाने पर किया था। यह घटना महाभारत के बाद की है। टॉड ने ही महाभारत का समय ११०० ई० पू० के लगभग माना है अत यह दोनों बातें एक दूसरे के विरुद्ध पड़ती हैं।

(ख) तीसरे अध्याय में पृ० ४८ पर टॉड ने अपनी टिप्पणी संख्या १३ में लिखा है "महाराज ने तक्षक तुरुष्क अथवा 'नाग पुत्र' के बारबाटक का जीता एवं नर्मदा पर स्थित——— महाराज ने इन पुरा' में था। अतः यह ३६०० ई० पू० से भी पूर्व का समय होता है।

भाषा और आचार-विचार निरन्तर परिवर्तित होते रहते है। किन्तु यदि एक ऐसी प्रथा अथवा धार्मिक रीति जो स्थानीय जलवायु के प्रतिकूल है और फिर भी वहां प्रचलित है तो यह एक ऐसा प्रमाण है जिसे अस्वीकार नहीं किया जा सकता।

आचार विचार और वेश-भूषा —

जब टैसिटस यह लिखता है कि प्रत्येक जर्मन प्रातः उठने के पश्चात् प्रथम कार्य हाथ मुंह धोने और स्नान आदि करने का करता है तो यह स्वीकार करना पड़ेगा कि यह आदत जर्मनी की शीत जलवायु में नहीं पड़ सकती थी यह निश्चय ही पूर्वीय देशों [४४] में उत्पन्न आदत रही होगी इसी भांति ढीले लटकते हुए चोगे सिर पर गूंथ कर जूड़ा बना कर बांधे गये केश तथा इसी प्रकार की अन्य प्रथाएं व्यक्तिगत आदतें और कई प्रकार के अन्धविश्वास जो सीथियन जिन्धी जातियों में दिखाई पड़ते हैं जिनका वर्णन हेरोडोटस जस्टिन और स्ट्रेबो ने किया है वे सभी आज भी राजपूत राज-वंशों के आचार-विचार और वेश भूषा आदि में देखे जा सकते हैं।

हम इतिहास द्वारा प्रस्तुत धार्मिक अथवा रीति रिवाजों की सादृश्यता की तुलना करें। सर्व प्रथम धर्म को लें।

देव-उत्पत्ति —ट्यूस्टो [बुध] और अर्था [पृथ्वी] प्राचीन जर्मन लोगों के प्रधान देवता थे।

ट्यूस्टो [४५] पृथ्वी [इला] तथा मैनस [मनु] से उत्पन्न हुआ था। प्राय इसको तथा पूर्व की जातियों के

---

४४ यद्यपि टैसिटस जर्मन जातियों को प्रारम्भ में वहीं की रहने वाली बताता है किन्तु उसने एक स्थान पर कहा है कौन एशिया के सुखदायक स्थान को छोड़ कर जर्मनी जाना पसन्द करेगा जहां प्रकृति विरूपता के अतिरिक्त कुछ भी नहीं देती"। इस उक्ति से यह सार निकलता है कि टैसिटस को उनकी एशियाई उत्पत्ति की मान्यता का पता था।

४५ सलिन्द्र पुर [सूलपुर] के जेटी अथवा जिट पांचवी शताब्दी के एक शिला-लेख (५५) में इसको तुष्टा [ट्यूस्टो ?] बता कर बताया गया है। यह लेख उस प्राचीन कील के समान सिर वाली लिपि में लिखा गया है, जिसका प्रयोग भारत के प्राचीन बौद्ध लोग करते थे और जो अब तक तातारी लामाओं की पवित्र लिपि है, अर्थात् 'पाली लिपि'। अग्नि-कुल के चौहान परमार सोलंकी और परिहारों के जितने प्राचीन शिला-लेख मेरे पास हैं वे सभी इन्हीं अक्षरों में हैं। जिट राजा के एक शिला-लेख में उक्त राजा को 'जिट कथीदा' (५६) [कैदे का (डा) ?] लिखा है। ट्यूस्टो और वोडेन से हमारे दिनों के नाम ट्यूज डे और वैडनस डे पड़े हैं। भारत में हम दोनों को मंगलवार और बुधवार कहते हैं। कांसिसियों में मंगलवार का नाम मर्दी है।

---

(५५) उपर्युक्त शिला-लेख कोटा से ५ मील उत्तर में कणसवा (कण्वाश्रम) के शिव मन्दिर में लगा हुआ है। इसका अनुवाद आगे के खण्ड में छपेगा। यह लेख भली भांति पढ़ा नहीं जाने के कारण यह गड़बड़ी हुई है। वास्तव में यह मौर्य वंश के राजा धवल के समय का है जिसके मित्र राजा संकुक के पुत्र शिवगण ने यह मन्दिर बनवाया था। इसके दूसरे श्लोक में पान्तु शंभाज्जटा पः तथा तीसरे श्लोक में "शंभोर्जटा पान्तु व" लिखा हुआ है। इसी जटा शब्द से जाट जिट या जेटी राजा की कल्पना कर ली है। इसी भांति 'सोगीन्द्रस्य कण्वाश्रमशिवमि' में मानीन्द्र को शालीन्द्र पढ़ लेने से शालीन्द्रपुर का राजा ठहरा दिया है। इसी भांति इस पर जो ७९५ खुदा है उसे ५९७ पढ़ कर उसमें से अपनी इच्छानुसार १२२ घटा कर उसे ई० सन ४०९ का ठहरा दिया है। ऐसे ही तुष्टा आदि का नाम नहीं है। (ओ० टा० रा० हि० भा० पृ १२ टि ९६)

डॉ मोतीचन्द्र इस शिला-लेख का समय ७३८ ई० इण्डियन एन्टिक्वेरी १९ पृ ५५ के आधार पर मानते हैं। (शृंगार हाट भूमिका पृ ८)

(५६) उक्त शिला-लेख के भी शुद्ध न पढ़े जाने के कारण ही ऐसा हुआ है। इसका अनुवाद भी आगे के खण्ड में छपेगा।

व ओडिन या वोडिन को एक ही कह कर लिख दिया गया है यह अत्यन्त भ्रमपूर्ण है व एक न हो कर इन शब्दों क मस और बुध हैं।

ार्मिक विधियां —

सुयोनीज अथवा सुएवी को स्कैंडिनेविया की सर्वाधिक शक्तिशाली जट जाति थी कई वंश-परम्पराओं में विभाजित हुई। उनमें एक स [सूवी अथवा सिन] अपने पवित्र वाटिकाओं [४७] में श्रया [इसा] को नर-बलि अर्पित करती थी जिसकी सभी पूजा करते थे। इसका रथ एक गऊ [४८] द्वारा खींचा जाता था।

सुएवी जाति ईसिस [ईशा गौरी अथवा राजस्थान के ईसिस और सीरीज] नामक देवी की पूजा करते थे जिसकी पूजन विधि में एक जलपोत का भी प्रयोग होता है। टसिटस के अनुसार यह विधि उनकी विदेशी उत्पत्ति की प्रतीक है।" ईश्वर की भार्या भगवती ईशानी अथवा गौरी की पूजा का त्यौहार उदयपुर में झील के किनारे मनाया जाता है। ठीक इसी प्रकार का वर्णन हेरोडोटस ने मिश्र के ईसिस (५७) और ऐसिरिस (५८) की पूजा के त्यौहार का किया है। इस अवसर पर ईश्वर (ओसिरिस) का स्थान उसकी पत्नी के पश्चात् होता है तथा इसके हाथ में प्याज के खिले फूलों की छड़ी होती है जिसको मिश्र वाले पवित्र मानते हैं किन्तु हिन्दू उससे साधारणत घृणा करते हैं।

ुद्धप्रिय प्रथाएं —

वे हरक्यूलीज (५९) तथा इरस्टो अथवा ओडिन की स्तुति के गीत गाते व जिनकी पताकायें एवं प्रतिमायें वे युद्ध भूमि में ले जाते थे और अपने-अपने वंश-कुलों की ओर से लड़ते थे। दूर अथवा पास दोनों प्रकार क युद्धों में वे खड्ग (बरछा) काम में लेते थे। वे इन समस्त बातों में बुध के वंश-धर और यादव वंश की प्रमुख शाखा से उत्पन्न हरिकुल जाति के लोगों से समानता बनाये हुए थे जो सिन्ध के पश्चिमी प्रदेशों में न रह थे और जिनक अत्यधिक आबादी धीरे-धीरे पूरब और पश्चिम में फैल गई थी।

सुएवी अथवा सुयोनीज लोगों ने विख्यात अपसाला मन्दिर का निर्माण किया। इसमें उन्होंने थार (६०) वोडिन और फ्रेया की मूर्तियां स्थापित कीं। सूर्य-वंशी और चन्द्र-वंशियों के देवताओं के समान ही य स्कैंडिनेविया की असी जाति के त्रिमूर्ति (६१) देवता थे। प्रथम [थोर, युद्ध का देवता अथवा संहारकर्ता] हर अथवा महादेव है। दूसरा देवता [वोडिन] बुध [४९] है जो पालन करता है तीसरी [फ्रेया] उमा देवी सृष्टिकर्ता शक्ति है।

बसन्त ऋतु में जब सम्पूर्ण पृथ्वी हरी-भरी हो जाती थी तो फ्रेया का विलास महोत्सव मनाया जाता था। इस अवसर पर स्कैंडिनेवियन सूअर की बलि देते थे मैदे के सूअर बनाये जाते थे और कृषक उन्हें खाते थे।

---

४७. टेसिटस ३८।

४८ गौ अथवा गाय पृथ्वी का चिन्ह है। इस सम्बन्ध में (अध्याय दूसरा) पृष्ठ ४६ टिप्पणी संख्या ७ द्रष्टव्य है।

४९ हिन्दुओं के प्रमुख त्रिदेवों में कृष्ण रक्षा करने वाले देवता हैं। कृष्ण बुध के इन्दु-वंशीय हैं जिनकी पूजा वे स्वयं देवतावत् माने जाने से पूर्व करते थे।

---

(५७) प्राचीन काल के मिस्र वासियों की एक देवी जो पृथ्वी की अधिष्ठात्री मानी जाती थी। गाय इसका क्षिप पवित्र मानी जाती थी। उक्त देवी की मूर्ति गाय के सींग सहित स्त्री के रूप में बनाई जाती थी। पीछे से इसका पूजन रोम में भी प्रचलित हो गया था।

(५८) मिश्र का बड़ा देवता ईसिस का पति।

(५९) देखें अध्याय दूसरा पृ० ५० हमारी टिप्पणी संख्या २५।

(६०) स्कैंडिनेविया की पौराणिक कथाओं में वर्णित गर्जन का देवता ओडिन और फ्रेया का पुत्र।

(६१) त्रिमूर्ति देवों में ब्रह्मा विष्णु महेश हैं बुध और उमा त्रिमूर्ति देवों में नहीं हैं।

हर की सहचरी वासन्ती अर्थात् बसन्त ऋतु की मानवीय रूप में (६२) पूजा करते हैं। इस ऋतु का प्रारम्भ करने के लिए राजा और उसके सरदार एक विशाल शिकार [५०] का आयोजन करते हैं उस दिन वे सूअर का पीछा करते हैं, उसे मारते हैं और खाते हैं। उस दिन व्यक्तिगत सुरक्षा का अधिक विचार नहीं रखा जाता क्योंकि उस दिन की असफलता अमंगलकारी होती है जिसके परिणाम स्वरूप 'महामाता' वर्ष भर उनकी प्रार्थनाओं पर ध्यान नहीं देती।

यासमी [जो टेसिटस के पच्चास वर्ष पश्चात् हुआ था] का उद्धरण देते हुए पिंकर्टन कहता है– 'जुटलैंड अथवा कटलैंड में जो जातियां बसी हुई थीं वे सब जट जातियां थीं, जिन में सकासिगई [टुरनी [५१] अथवा टुरयोनीज् कही और हैमेन्श्री जातियां एल्ब और वेजर नदी के मुहाने तक बसी हुई थीं, वहां पर उन्होंने 'युद्ध-देवता' के निमित्त इरमनसिडल का स्तम्भ बनाया जिसके सम्बन्ध में सेमीस [५२] का कहना है– 'कुछ लोग उसे मार्स [मंगल] का स्तम्भ तथा अन्य उसे हरमीज् साल अर्थात् हर्मेस अथवा मक्यू री का स्तम्भ मानते हैं। तब वह स्वाभाविक प्रश्न करता है 'सेक्सन लोगों ने यूनानी नाम मक्यू री को कैसे ग्रहण कर लिया?'

संस्कृत में यज्ञ-स्तम्भों को सूर (६४) अथवा सूल (६४) कहते हैं। इसे युद्ध के देवता हर [५३] के साथ मिला देने से हर-सूल हो जाता है। राजपूत त्रिशूल-धारी हर [महादेव] से संग्राम में रक्षार्थ प्रार्थना करता है और युद्ध स्थल में 'मार-मार' का घोष करता है।

जुटलैंड की छः प्रसिद्ध जातियों में किम्बी सबसे अधिक प्रसिद्ध है उसका यह नाम उनके अत्यन्त युद्ध प्रिय [५४] होने के कारण पड़ा।

सेनापति कुमार [५५] राजपूतों के युद्ध–देवता (६७) हैं। हिन्दू पुराणों में उनके सात सिर (६८) बताये

५० मुहूर्त का शिकार (६३)।

५१ बैरिटस ने इसे थीबी लिखा है।

५२ सेमीज कृत 'सैक्सन एंटीक्वीटीज'।

५३ 'हर' स्कैंडिनेविया का 'थोर' है; 'हरि' बुध हर्मीज् या मरक्यूरी है।

५४ मैलेट के मतानुसार यह नाम कम्फर (Kempfer)–लड़ना से पड़ा है।

५५ 'कु' उप-सर्ग का अर्थ 'बुराई' होता है; इसी से कु-मार का अर्थ बुराई को मारने वाला हुआ। अतः सम्भव है यह रोम का मार्स हो। हिन्दू देवताओं के देव-सेनापति कुमार की उत्पत्ति भी ठीक उसी प्रकार से है जैसी कि यूनानियों के युद्ध देवता की हुई थी जो बिना यौनाचार (६५) किये ही जाह्नवी देवी (६६) [जूनो] से उत्पन्न हुआ। कुमार के साथ सर्वदा मोर रहता है; जो जूनो का भी पक्षी है।

(६२) वासन्ती देवी शिव की अर्द्धांगिनी का नाम नहीं है।

(६३) मुहूर्त का शिकार बसन्त के प्रारम्भ में नहीं होता। वर्षा ऋतु में तो राजपूत बहुधा शिकार करते ही नहीं।

(६४) संस्कृत में यज्ञ-स्तम्भों को सूर' अथवा 'सूल' नहीं कहते अपितु 'यूप' कहते हैं।

(६५) सं पद्मपुराणाङ्क प १६२ पर लिखा है–"अत भगवान् शङ्कर के अ श से उमा देवी जिस पुत्र को जन्म देंगी·······।

(६६) कुमार [कार्तिकेय] की उत्पत्ति उमा (पार्वती) शंकर (शिव) से है। टॉड ने 'जाह्नवी देवी' शब्द का प्रयोग गङ्गा के लिए किया है।

(६७) कुमार देव सेनापति थे। राजपूतों में वे कभी युद्ध देवता नहीं माने गये। ऊपर के पैरा में स्वयं टॉड हर [महादेव] को युद्ध–देवता मानते हैं।

(६८) छः सेनापति कुमार के सात सिरों का वर्णन कहीं प्राप्त नहीं होता।

गये हैं। सेक्सनी के युद्ध–देवता के छः सिर [६६] होते हैं।

सिम्ब्री चेसोर्नीज (६८) के छः सिर वाले युद्ध देवता मार्स के निमित्त वेजर के किनारे इरमनस्थिउल का स्तम्भ निर्मित किया गया था। जिसकी पूजा सेकेसनी कट्टी सीमी अथवा सुएवी, जेगी और सिम्ब्री आदि जातियां करती थीं। इस युद्ध-देवता का नाम तथा उसकी धार्मिक पूजा विधियाँ इस बात का प्रमाण हैं कि उनकी और भारत की युद्ध प्रिय जातियों की उत्पत्ति का स्रोत एक ही था।

समर विलासी राजपूतों का धर्म एवं उनके युद्ध-देवता शिव की पूजा-पद्धति अन्य सौम्य-वृत्ति वाले हिन्दुओं की रीति-नीति से बहुत कम साहश्यता रखती है। कन्हाई देवता के अनुयायी गऊ की पूजा करते हैं तथा कन्द मूल फल और पानी पर जीवन यापन करते हैं जब कि राजपूत रक्त बहाने में आनन्द लेता है देवता को चढ़ाया जाने वाला प्रसाद रुधिर और मदिरा (७०) होता है तथा मनुष्य का कपाल जप देने का पात्र होता है। राजपूत इन उपकरणों को पसन्द करता है क्योंकि उसके विचार में ये सब उसके प्रिय देवता की इच्छित वस्तुएँ हैं जिसकी वह पूजा करता है राजपूतों के विश्वास के अनुसार उनका युद्ध देवता शिव मनुष्य के कपाल से रण क्षेत्र में शत्रु का रुधिर पान (७१) करता है तथा शान्ति के काल में वही देवता मदिरा और स्त्री का संरक्षक होता है। उसकी अर्धांगिनी पार्वती उसकी जंघा पर विराजमान है। उसके नेत्र अफीम तथा धतूरे के सेवन से लाल-लाल हो कर चकाचमान हैं। उसके एक हाथ में नर-कपाल है तो दूसरे में त्रिशूल। जो गले एवं सिर पर सर्प धारण किये हुए हैं। शिव जी का ऐसा भयंकर रूप होता है। क्या यह हिन्दू धर्म भारत के सप्त मैदानों का हो सकता है? क्या यह स्केंडिनेविया वीरों के रीति-रिवाजों की अच्छी खासी नकल नहीं है?

राजपूत भैंसों का वध तथा सूअर और हिरणों का आखेट करते हैं उनका मांस खाते हैं। वन के पक्षियों और वन कुक्कुट का भी आखेट करते हैं। वे अपने अश्व तलवार तथा सूर्य की उपासना करते हैं। भारत के स्तोत्र पाठ की अपेक्षा भाट के वीर रसात्मक काव्य में अधिक रुचि लेते हैं। स्केंडिनेविया की युद्ध सम्बन्धी पौराणिक गाथाओं तथा वीर रसात्मक काव्य में और यहां के भाट कवियों के काव्य में बहुत कुछ समानता प्राप्त होती है। इसी भांति पूरब एवं पश्चिम के असी लोगों के अवशिष्ट काव्यों में प्राप्त समानता उनकी एक ही उत्पत्ति की बात को प्रमाणित करने के लिए यथेष्ट होगी।

भाट-कवि—

राजपूतों में पूर्व कन्हाई की भांति प्राचीन सेक्सनी के भी भाट होते थे जो वीर रसात्मक कवितायें गाया करते थे। उनके सम्बन्ध में टेसिटस लिखता है 'युद्ध के समय वीर रसात्मक छन्दों को अपनी उत्तेजित शैली में गाकर वे उनके चित्तों पर प्रभाव उत्पन्न करते थे।

उनके सभी रीति-रिवाजों और धार्मिक विचारों का समावेश करने वाली विस्तृत तुलना का विषय हम किसी

---

[६६] स्केंडिनेविया के युद्ध-देवता के चित्र के लिए, मैलोज की पुस्तक का अवलोकन करें।

(६८) जटलैण्ड का प्राचीन नाम।

(७०) वैष्णव शिवजी को यहीं भी रुधिर और मदिरा का प्रसाद नहीं चढ़ाते।

(७१) वैष्णव ऐसा नहीं मानते। विशेष इसी अध्याय में आगे पृ० १०८ पर टिप्पणी सं० ८० में देखें।

अन्य प्रण के लिए छोड़ देते हैं।[५७] युरुषों अथवा सीथी लोगों की माया हर अश्वारूढ़ी बहिने उन दो अप्सराओं के समान हैं जो राजपूत योद्धा को रण-क्षेत्र से बुला कर सूर्य-लोक में ले जाती हैं, जो यूनान के देशवासी लोगों के एल्यूसियम[५८] (स्वर्ग) के समान है। इस फल प्राप्ति की महत्ता तथा स्कैंडिनेविया में ओडिन की सन्तानों में तथा सीथिया और गंगा के मैदानों में रहने वाले बुद्ध और सूर्य के पुजारियों में समान रूप से प्राप्त होती है।

युद्ध-काल में यश के लिए उत्साह और मृत्यु के प्रति तिरस्कार का एक सा भाव इन समस्त जातियों में दिखाई पड़ता है इस भाव के ये सभी नाटकीय पात्र चाहे देवता हों अथवा मनुष्य एक ही प्रकार से चलते फिरते एवं नाच करते दिखाई देते हैं। यदि हम गर्भधारी पोर को रण में सीथी लोगों का नेतृत्व करते देखते हैं तो बीस अर्थात् भारतीय हर (शिव) को उनके पुजारियों (शिव-सैन्य) का नेतृत्व करते हुए पाते हैं जिसमें कि फ़ोया अथवा भवानी और कभी-कभी तो रक्षक देवता स्वयं कृष्ण को भी भाग लेते पाते हैं।

युद्ध-रथः-

युद्ध-रथ भारतीय हिन्दुओं और सीथियनों में विशेष रूप से प्रयुक्त होता हुआ देखते हैं। महाराज दशरथ[५९] तथा महाभारत के योद्धाओं से लेकर मुसलमानों की भारत-विजय के काल तक उसका प्रचलन रहा कुरुक्षेत्र के मैदान में भी कृष्ण अर्जुन के सारथी बने थे जिस समय काकासीज के केटी लोगों ने जरक्सीज़ की यूनान में सहायता की तथा जब दारा का आर्बेला[६०] (७४) के युद्ध में साथ दिया, उस समय उनकी सैन्य-शक्ति का मुख्य साधन रथ ही था।

---

५७ मेरा विचार है कि मैं भारत के अन्तिम हिन्दू सम्राट् पृथ्वीराज के अन्तिम बड़े भाट कवि चन्द की कविताओं की ६९ पुस्तकों में से कुछ को सर्वसाधारण के सम्मुख प्रस्तुत करूं। वे सभी वीर-रस से परिपूर्ण हैं। प्रत्येक पुस्तक अपने युग के सब से बड़े योद्धा राजा के एक-एक वीर कार्य का वृत्तान्त देती है। जन से राजपूत भाट कवियों और स्कैंडिनेविया के भाट कवियों के मध्य तुलना करने में सहायता मिलेगी और वे इस बात को प्रकट करेंगी कि प्रोवेन्स (७२) के ट्राबडर, न्यूस्ट्रिया (७३) के ट्राउवियर और जर्मनी के मिनेसिंगर से राजपूतों के बरदाई की कितनी समानता है।

५८ एल्यूसियोस शब्द इलियस से निकला है जिसका अर्थ सूर्य है। यह अपोलो भारत के हरि की भी उपाधि थी।

५९ राम के पिता का यह नाम बन्हें एक उत्तम सारथी होना बतलाता है।

६० हेरोडोटस कहता है 'डेरियस [दारा] का भारतीय प्रदेश उसके समस्त फारसी प्रांतों से अधिक वैभवपूर्ण था। उस से उसे ६०० टैलेंट (७५) स्वर्ण प्राप्त होता था। एरियन का कथन है—"सिकन्दर के विरुद्ध किये गये संग्राम में दारा की सेना में इण्डो-सीथियन जाति के लोग ही सबसे उत्तम सैनिक थे। लेकसेनी के अतिरिक्त हमें जातियों के ऐसे नाम भी मिलते हैं जो ३६ राज-कुलों के नामों के समान हैं विशेष रूप से दाही [दाहिमा ३६ कुलों में से एक है]।

इण्डो-सीथियन सेना में २०० युद्ध-रथ और १५ हाथी थे, जो बार्क्टियन लोगों के साथ दाहिनी ओर तथा दारा के निकट रखे गये थे। इस प्रकार की व्यूह-रचना से वे उस सैन्य दल के सम्मुख पड़े जिसका संचालन स्वयं सिकन्दर कर रहा था

---

(७२) फ्रान्स देश के प्रोवेन्स नामक स्थान के निवासी।

(७३) यूरोप में प्राचीन फ्रेन्क लोगों के आधीन म्यूज और लॉयर नदियों के मध्य का प्रदेश।

(७४) असीरिया देश का एक नगर जिसे आर्बिल कहते हैं, इससे ५ मील की दूरी पर ३३१ ई० पू० में सिकन्दर और ईरान के बादशाह दारा के युद्ध हुआ था इसमें दारा की हार हुई थी। यह युद्ध ही 'आर्बेला युद्ध' के नाम से प्रसिद्ध है।

(७५) एक टेलेंट=२४० पौण्ड।

प्राचीन काल में युद्ध रथों का उपयोग दक्षिण-पश्चिमी भारत में भी होता रहा है। सौराष्ट्र की काठी[११] कोमानी और कोमारी जातियों ने इस भांति अभी तक अपने सीथियन रीति-रिवाजों को जीवित रखा है जैसा कि उनके स्मारकों के पाषाण-स्तम्भों पर खुदा हुआ है जो युद्ध में शत्रुओं के हाथों रथ पर मारे गये।

स्त्रियों के प्रति व्यवहार*—

प्राचीन जर्मनों स्कैंडिनेवियन जातियों रसवाकुरे राजपूतों तथा पुरानी गेटी जातियों के मध्य और किसी बात में इतनी अधिक सादृश्यता नहीं दिखाई पड़ेगी जितनी कि उन के स्त्री जाति के प्रति शिष्ट व्यवहार में।

टैसिटस ने लिखा है 'जर्मन लोग विपत्ति के समय स्त्री की सम्मति को अत्यन्त महत्वपूर्ण मानते थे। यही बात राजपूतों में भी मिलती है। भाट कवि चन्द ने इस बात के कई उदाहरण प्रस्तुत किये हैं और इसलिए उन्होंने स्त्री नाम के साथ देवी (अथवा संक्षेप में 'दे') शब्द जोड़ दिया है जिसका अर्थ देवता के समान होता है। टैसिटस का कथन है 'जर्मन लोग स्त्री को बन्दी बनाने नहीं देख सकते थे। स्त्रियों के सतीत्व की रक्षा का महत्व राजपूत कितना मानते हैं इसका पता इस बात से लग जायेगा कि आवश्यकता पड़ने पर वे अपनी प्रियतमाओं का जो केवल उन्हीं के लिए जीवित हैं वध भी कर देते हैं यद्यपि इस घोर विपत्ति से बचने की आशा वे स्वयं भी न रखते थे। ऐसे अवसर पर वे 'जौहर' करते हैं जब कि प्रत्येक साका कर मरती है और इसीलिए राजपूत साका-बन्द उपाधि में प्रतिष्ठा मानते हैं जो कि उस लोमहर्षक कार्य अर्थात 'साका' के करने से प्राप्त होती है। यह पूर्णतया रुद्रबो[१२] द्वारा वर्णित सीथियन और गेटी लोगों की मैसिया रस्म के समान ही थी।

---

१० "रथियों ने युद्ध आरम्भ किया फारसियों के बांयी ओर के सैन्य दल को खदेड़ने की सिकन्दर की चाल को उन्होंने असफल कर दिया।" उनके अश्वारोही दल का भी बड़ा प्रतिष्ठापूर्ण वर्णन किया गया है जो शत्रु सेना में घुस गये जहां पर अर्तमियो नेतृत्व कर रहा था और जिसकी सहायता के लिये सिकन्दर को कुमुक भेजनी पड़ी।

यूनानी इतिहासकार इन्डो-सीथियन लोगों की वीरता के सम्बन्ध में भी प्रशंसापूर्वक वर्णन करता है 'अश्वारोहियों की वीरता का कोई कार्य देखने में नहीं आया और न भालों द्वारा दूर से लड़ने के दृश्य ही दिखाई पड़े किन्तु फिर भी वे प्रत्येक यूनानी से युद्ध में ऐसे भिड़ रहे थे मानो विजय केवल उनके भुजबल पर है।

किन्तु अर्बेला के रण क्षेत्र में दारा का साम्राज्य समाप्त हो गया। शक एवं सीथियनों को अपने देश से दूर राजराजेश्वर के लिए लड़ते हुए ग्रीक यवनों द्वारा मारे जाने की प्रतिष्ठा प्राप्त हुई।

११ काठी लोगों ने सिकन्दर के युद्ध में बड़ी प्रसिद्धि पाई। काठियावाड़ के काठियों का पता 'मूलथान' (प्राचीन निवासस्थान) से लगाया जा सकता है। वालिया (वाही) खोखिया (पिछले हून) और काठी १६ राज-कुलों में हैं। ये सभी छः सौ वर्ष पूर्व पांच नदियों के मध्य के प्रदेश और मारा के दक्षिण की मरु-भूमि में रहते थे। इन में से अन्तिम दो का तो अब नाम ही शेष रह गया है।

१२ सेटी लोगों ने पोन्टिक सागर की सीमा वाले प्रदेशों पर आक्रमण किया था। जिस समय वे लूट के माल का बटवारा कर रहे थे ईरानी सेनापतियों ने अचानक रात्रि में आक्रमण कर उन्हें नष्ट कर दिया। इस घटना की स्मृति को अमर करने के लिए ईरानियों ने उस क्षेत्र में जहां युद्ध हुआ था एक चट्टान के चारों ओर मिट्टी का एक ढेर लगा दिया और उस पर दो मन्दिर बनवाये एक तो अनाहित देवी का और दूसरा ओमेनस और अमेन्डेट नाम के देवताओं का। सेसिया नामक वार्षिक त्यौहार तभी से प्रचलित हुआ जिसे जेला के अधिकारी अब तक मानते हैं। सैसिया त्यौहार की उत्पत्ति का उपर्युक्त वर्णन कुछ लेखकों द्वारा किया गया है। दूसरों के लिखे अनुसार इसका प्रारम्भ साइरस के राज्य-काल से ही है। वे इसका यह कारण बताते

द्यूत कर्म —

राजपूतों में द्यूत प्रियता अतिशय मात्रा में रही है जिसके परिणाम स्वरूप अत्यन्त प्राचीन काल से वे इसके अनर्थकारी प्रभाव को सहते रहे हैं। उनकी इस द्यूत-प्रियता की तुलना सीथियन लोगों और उनकी जर्मन सन्ततियों से की जा सकती है।

जर्मन लोग अपनी स्वाधीनता को दाँव पर लगा देते थे और विजेता उन्हें सम्पत्ति की भाँति बेच सकता था। इसी कुव्यसन के कारण पाण्डवों ने अपनी राज-सत्ता और स्वाधीनता खो दी थी अन्त में इसका परिणाम यह हुआ कि समस्त इन्दु-वंशियों का सर्वनाश हो गया। अब भी इस दुर्व्यसन का चाव कम नहीं है यहाँ तक कि राजपूत धर्म में इस दुर्व्यसन का विधान भी है। वर्ष में एक बार दीपावली के अवसर पर लक्ष्मी की प्रसन्नता के लिए यह खेल खेला जाता है।

बौद्धिक कार्यों में प्रवृत्त न रहने के कारण समर-विलासी राजपूत प्रायः आलसी होते हैं और मौनाचार में प्रवृत्त हो जाते हैं और जब वे किसी युद्ध-कार्य के लिए आहूत किए जाते हैं, तो वे एक दम आवेश में आकर अपनी शक्ति का भीषण रूप से प्रयोग करते हैं। परन्तु जिस समय उनके वैभवपूर्ण राज्य में शान्ति और व्यवस्था रहती है तो जीवन का प्राचीन स्वरूप प्रचलित रहता है और वे उसका आनन्द उठाते रहते हैं। यह व्यवस्था राजपूतों, वेहून के किनारे रहने वाले गेटियों और स्कैंडिनेविया के निवासियों में समान रूप से दिखाई पड़ती है।

शकुन एवं भविष्योक्तियाँ —

हेरोडोटस के मतानुसार गैटी जातियों में टैसिटस के अनुसार जर्मनों में और इसी प्रकार राजपूतों में भी चिट्ठियाँ डाल कर, सामुद्रिक गणना करा कर अथवा चिड़ियों के पंख फड़फड़ाने से अपने शुभाशुभ का विचार करने की

१२० ई०—"साइरस राजा ने सेकी [हेरोडोटस के लिखे हुए मैसेजेटी] देश पर आक्रमण किया परन्तु हार के कारण अपने कोठार से पीछे हटना पड़ा जिसमें बहुत से खाद्य पदार्थ विशेष रूप से मदिरा थी। अपनी सेना को विश्राम देने के लिये उसने शत्रु-सेना के सामने अपना कोठार छोड़ कर भाग जाने का नाटक रचा। सेकीयों ने उन तम्बुओं में प्रवेश कर उस मदिरा और खाद्य पदार्थ का उपभोग किया और मदमस्त हो गये। साइरस लौटा और उसने उन मदोन्मत्त मूर्ख एवं आलसी पर अचानक आक्रमण कर दिया। कई सैनिक घोर निद्रा में होने के कारण सरलता से काट डाले गये कई मदिरा-पान और नृत्य में मग्न होने से अपनी सुरक्षा न कर सके और शत्रु-दल के हाथों में पड़ गये। इस प्रकार वे सब नष्ट हो गये। विजेता ने इस विजय का कारण दैवी सहायता को मान कर इस दिन को अपने देश की माननीय देवी के नाम पर मनाने की आज्ञा प्रचारित की 'यह दिन सैसिया का दिन' कहा जावे।" (१)

राजपूत आख्यानों में उन समस्त युद्धों का साका कहा गया है, जिनमें विनाश निश्चित होता है। जब वे घिर जाते हैं और सहायता की कोई आशा नहीं रहती तो निराशा के अन्तिम क्षण में वे अपनी स्त्रियों का वध कर देते हैं और समस्त वीर केसरिया बाना पहिन कर अन्तिम मृत्यु के मुख में कूद पड़ते हैं जहाँ प्रत्येक साका कट जाती है। इसको साका करना कहते हैं। चित्तौड़ में ढाई तीन बार साका होने का गर्व किया जाता है। गोहिलोत राजपूतों की सब से बड़ी शपथ 'चित्तौड़ मारे का पाप' है।

यदि डैमिरिस की सैकी जाति के विनाश से इस त्योहार की उत्पत्ति है, तो सिन्धु के पूर्वीय और पश्चिमी देशों के सैकीयों के जन्म की समानता पर, इसे प्रमाण स्वरूप माना जावे, जो विवादास्पद है।

---

(१) यह वही युद्ध है जिसका हेरोडोटस ने वर्णन किया है और जिसका उल्लेख स्ट्राबो भी करता है, जो ईरान के बादशाह और सीथियों की रानी टौमिरस के मध्य हुआ था।

प्रथा समान रूप से मिलती है। यह सम्भव है कि राजपूतों के एतद् विषयक ग्रन्थों[६३] से ही जर्मन एवं रोमन लोगों ने शकुनों और अपशकुनों को प्राप्त किया हो।

मादक द्रव्यों से प्रीति —

स्कैंडिनेविया के असी लोगों और जर्मन जातियों में मदिरा पीने का चाव और उसमें अतिशय आसक्त रहना अत्यधिक मात्रा में प्राप्त होता था जो उनके सैटो-वंश की उत्पत्ति को प्रकट करता था। इस बात में राजपूत लोग अपने सीथियन अथवा युरोपियन भ्राताओं से किसी भी प्रकार कम नहीं हैं। मदिरा के अबाध सेवन तथा राजपूतों में मिलने वाली इसी प्रकार की अन्य आसक्तियों के कारण जिनका हिन्दू शास्त्रों में निषेध है मैं इस विश्वास की ओर प्रवृत्त हुआ कि इन समर-विलासी जातियों की अधिकांश प्रथायें भारतवर्ष से बाहर उत्पन्न हुई हैं।

राजपूत अपने अतिथि का स्वागत 'मनुहार प्याला' (प्रार्थना का प्याला) पिला कर करता है जिसमें वे अपनी प्राचीन शत्रुता को भी डुबो देता है। ओडिन की वीर सन्तति भी मीड (मदिरा) पान में इतना आनन्द नहीं लेती थी जितना कि राजपूत अपने अम्लपान[६४] (मदिरा पान) में लेते हैं। स्कैंडिनेविया और रजवाड़े के भाट कवियों ने मदिरापान की प्रशंसा में समान रूप से अपनी काव्य-धारा बहाई है। इसकी प्रशंसा में बरदाई ने प्रत्येक सम्भव अलङ्कार का प्रयोग किया है और इसे अमृत का प्याला तक कहा है। भाट कवि यह अमृत[६५] का प्याला पीकर, जिसमें माणिक्य की भांति प्रकार के लाल–लाल रङ्ग चमकते थे इस निडर वीर की कीर्ति का वर्णन करते लगा[६६] 'भाट और शत्रु को समान रूप से उदारता के साथ दान देने वाला राजा चिरायु हो।

इतना ही नहीं रण में मृत्यु प्राप्त करने के पश्चात् जब राजपूत योद्धा इन्द्र के स्वर्ग में स्थान प्राप्त करता है, तो वहाँ सुन्दर अप्सराएं उसको मदिरा-पान कराती हैं। ठीक यही कल्पना जेटी लोगों में मिलती है जिनका वलहल्ला (७८) राजपूतों का स्वर्ग है। स्कैंडिनेविया की स्वर्गीय हीबी (७९) की चोखी बहनें अप्सरायें हैं। जेटी योद्धा

६३　मैंने रायल एशियाटिक सोसायटी को एक ग्रन्थ इस विषय का और दूसरा सामुद्रिक शास्त्र आदि का भेंट किया है।

६४　अम्ल एक प्रकार का उन्मादक रस है, यह मधु(६९) शब्द से निकला है। संस्कृत में मधु का अर्थ है मधु-मक्खी। प्रसिद्ध है कि मीड नामक मद्य शहद से बनाया जाता था यदि जर्मन लोगों का मीड शब्द हिन्दुस्तानियों के मधु (मधु-मक्खी) से बना हो तो यह आश्चर्यजनक बात होगी। उस दशा में प्याला (अर्पर) और रस दोनों ही शब्द यहाँ की भाषा के न होकर बाहर से लिए गए होंगे।

६५　अमृत (अमर) [अ] प्रारम्भिक निषेधवाची उपसर्ग है और 'मृत' का अर्थ मृत्यु है। इस प्रकार इमरतल अर्थात् अमृत का अर्थ म्यूरुचेटस (७०) में है, संस्कृत और जर्मन का एक सा शब्द प्रतीत होता है।

६६　मारवाड़ के राजा अभय सिंह (निडर वीर) ने जब अपने भाट कवि को भोजन के समय स्वयं अपने हाथ से मदिरा का प्याला दिया तो भाट ने (उपर्युक्त) शब्द कहे थे।

(६९) संस्कृत में 'मधु' शब्द का अर्थ 'शहद' 'मद्य' आदि है न कि 'मधु-मक्खी'।

(७०) फ्रांस की सीमा के निकट स्विटजरलैंड देश के बीस जिलों में से एक।

(७८) स्कैंडिनेविया की पौराणिक कथाओं में वर्णित वीर पुरुषों का स्वर्ग जहाँ वे युद्ध में मृत्यु के पश्चात् जाकर वास करते हैं।

(७९) यूनानियों की पौराणिक कथाओं में वर्णित युवावस्था की देवी जो जुपीटर तथा जूनो की पुत्री और देवताओं को प्याला पिलाने वाली मानी जाती है।

अन्त्येष्टि क्रिया —

मृतक की अन्त्येष्टि-क्रिया की विधियों की तुलना करने से मौलिक सादृश्यता के प्रमाण प्रस्तुत होंगे। स्कैंडि-नेविया में भिन्न-भिन्न युगों में विभिन्न अन्त्येष्टि-क्रिया की विधियाँ थी जैसे मैक-युग[७२] में शव को गाड़ा जाता था और अग्नि-युग में शव को जलाया जाता था।

ओडिन [बुध] ने दाह-संस्कार की द्वितीय प्रथा प्रारम्भ की। जब शव जल जाता था तो उस पर गोलाकार वेदियां बना दी जाती थीं उसी प्रकार मृत पति के साथ उसकी अर्धांगिनी के सती होने की प्रथा भी प्रचलित थी। ये रीति-रिवाज जम्बू द्वीप अथवा सीथिया से यहाँ पहुँचे थे। हेरोडोटस के कथनानुसार वहाँ गेटी लोगों का शव चिता पर जलाया जाता था तथा पत्नी अपने स्वामी के साथ सती हो जाती थी।

गेटी सीथी अथवा मुगली जातियों में यदि मृतक व्यक्ति के एक से अधिक पत्नियां होती तो पटरानी ही पति की देह के साथ सती होने की अधिकारिणी होती थी।[७३] इस प्रकार नाना अपने पति के साथ सती हुई थी जो ओडिन का साथी था। स्कैंडिनेविया के निवासी अपनी एशियायी उत्पत्ति के चिह्न को भुलाने के लिए उत्सुक थे। वे सदैव पति की देह के साथ उसकी पत्नी के जीवित जल मरने जैसी क्रूर तथा असभ्य बलिदान की प्रथा को चालू रखना नहीं चाहते थे। सती प्रथा का यह विचार उनके पूर्वजों का प्रचलित किया हुआ था जो कि एशिया के गरम जल वायु वाले भागों के रहने वाले थे जहाँ कि उनका आदि निवास-स्थान था।[७४]

हेरोडोटस लिखता है 'जब सीथियन गेटी लोग मरते हैं तो उनके घोड़े भी उनके साथ उनकी चिता पर जला दिये जाते थे। इसी प्रकार स्कैंडिनेविया के गेटी लोगों के मरने पर उनके साथ उनके अस्त्र और शस्त्र भी गाड़ दिये जाते थे क्योंकि उनकी धारणा थी कि वे स्वर्ग में ओडिन के पास पैदल नहीं पहुंच सकेंगे।[७५] राजपूत योद्धा की मृत्यु पर उसकी अन्त्येष्टि क्रिया करने से पूर्व वह अपने प्रिय अस्त्र-शस्त्रों से वैसा सुसज्जित कर दिया जाता था जैसा कि वह जीवित अवस्था में रहता था। उसकी ढाल पीठ पर लगा कर हाथ में भाला दे दिया जाता था। उसका घोड़ा यद्यपि बलि नहीं किया जाता था किन्तु वह देव अर्पित कर दिया जाता था इससे वह देव-पुजारी की सम्पत्ति हो जाता था।

मृत योद्धा का दाह-संस्कार तथा उसके साथ उसकी पत्नी के सती होने की प्रथाएं अत्यन्त प्रसिद्ध हैं। दाह संस्कार के स्थानों पर निर्मित स्मारक वेदियाँ राजपूत राज-वंशों तथा उनके राज्यों की उन्नति तथा अवनति की दृष्टि से सर्वोत्तम प्रमाण हैं। किन्तु वे यूरोपियनों को न तो ज्ञात हैं और न वे उन्हें देखने ही जाते हैं। राजपूत योद्धा की मृत्यु के पश्चात् उसका पुत्र उसकी स्मृति में स्मारक बनवाता है जो मृत व्यक्ति के प्रति आदर भाव का प्रतीक तथा अर्थाभाव आत्म-गौरवता का द्योतक होता है। निर्माण में वह अपनी निधि की स्थिति के अनुसार व्यय कर देता है। अपने पिता की स्मृति में निर्माण की जाने वाली उस वेदी में वह राज-पुत्र अपने राज्य-काल के वैभव का प्रमाण भी देता था अतः उसकी बनाई हुई छतरी प्राय पड़ने की छतरियों से अधिक भव्य और उन्हें प्रकाशित करने वाली होती है। यह बात रजवाड़े के प्रत्येक राजा और सामन्त के लिए सही है।

वे दाह स्थान अत्यन्त पवित्र माने जाते हैं जिन्हें महा सतियाँ का स्थान कहते हैं। इन स्थानों में भूत प्रेत आदि के

---

७२ मालेट कृत नार्दर्न एन्टिक्विटिज अध्याय १२।

७३ मालेट; अध्याय १२ खण्ड १ पृ २८९।

७४ पूर्वत

७५. मालेट कृत नार्दर्न ऐंटिक्विटिज अध्याय १२ गेटा जाति के प्राचीन बस्तियों में भी यह प्रथा प्रचलित थी। सिल्सीरिक के मकबरे से शस्त्र और उस घोड़े की हड्डियां निकली हैं जिस पर चढ़ कर वह ओडिन के सम्मुख प्रस्तुत होने वाला था।

वास करने सम्बन्धी अनेक प्रकार के उपाख्यान प्रचलित हैं। उन स्थानों पर जहां सुन्दर स्त्रियों और वीर पुरुषों का दाह-संस्कार हुआ है आत्माएँ[७६] अपना निवास-स्थान बना लेती हैं। जो मन्दगामी ज्वर का निकलना है वे उसे अपना शिकार बना लेती हैं और उनके हृदय का रक्तपान करती हैं। सिवाय दाह संस्कार के अवसर के अथवा प्रति वर्ष जब वे अपने पितृगणों को जल एवं पुष्प चढ़ाने जाते हैं राजपूत कभी इन शून्य स्थानों में प्रवेश नहीं करते।

मौडिन[७७] अपने उपासक योद्धाओं के समाधि स्थलों की चोरी के भय से बचाने के लिए समाधि स्थानों के चारों ओर घूमती हुई अग्नि लपटों से रक्षा करते थे। नैतिक विधान के दसवें अध्याय में समाधि स्थानों से विस्तर आदि की चोरी करने पर दण्ड देने की व्यवस्था की गई है। इस प्रकार के धर्म द्रोही लुटेरा के लिए अग्नि और पानी बन्द कर देने का दण्ड विधान है।

युद्ध के मैदान में महासतियों के स्थान पर यह बहुधा अथवा स्वप्न घूमती हुई उल्का के समान आग की लपटें एक आनन्ददायक दृश्य उत्पन्न करती हैं किन्तु दर्दनाक (कष्ट जनक) प्रभाव भी डालती हैं। ये हिन्दुओं में अन्ध-विश्वास पूर्ण भय और आदर का भाव उत्पन्न करती हैं किन्तु उनकी उत्पत्ति का स्वाभाविक कारण नहीं है जो 'मौडिन की घूमती हुई अग्नि लपटों' का है और वह है मृत देह से विच्छेदन से उत्पन्न अन्धेरे में चमकने वाला लवण!

स्कैंडिनेवियन निवासी मृत देह पर पुष्पक चुनवाते थे और यही केल्टाटीज के केटी लोगों तथा हिन्दू युद्ध देवता शिवजी के उपासकों में भी प्रचलित था।

इतिहासकार गिबन ने अलेरिक अमारिक (८१) के समाधि स्थल का जो चित्र खींचा है उसकी समानता महान् चंगेज खां (८२) की कब्र ही कर सकती है। जब समाधि स्थान का ऊँचा टीला खड़ा कर दिया गया तो उसके चारों ओर दूर दूर तक जङ्गल लगा दिये गये जिससे कि कोई मनुष्य उसकी समाधि के निकट न जा सके।

रणक्षेत्र में वीर गति को प्राप्त होने वाले राजपूत पर सूच्याकार स्तूप अथवा स्तम्भ की समाधि अब भी

७६ डाकिन [सिन्ध की किमर लोर] असली नर भक्षक पिशाचिनी होती है। कैप्टन वाघ ने उदयपुर की घाटी में काफी पीछा करने पर एक लकड़बग्घे का वध किया था। इस पशु का वास समाधि-स्थानों में था और यह प्रसिद्ध था कि उस पर सवार होकर रात्रि में डायन घूमती है। इस वध से लोगों ने दुष्परिणाम की आशंका प्रकट की। उपर्युक्त कैप्टेन वाघ में एक बारहसिंगे का पीछा करते हुए बुरी तरह गिर गये तो लोगों ने उसका कारण उपर्युक्त वध ही बताया।

७७ नार्वेस अध्याय १२।

७८ ग्वालियर के अत्यन्त प्रसिद्ध दुर्ग के पूर्व में जहाँ असंख्य योद्धाओं की मृत्यु के कारण मिट्टी उर्वर हो गई है मैंने और मेरे मित्रों ने रात्रि में इन झिलमिलाती अग्नि-लपटों को एक स्थान पर बुझते तथा अन्य स्थान पर पुनः जलते हुए देखा है। कभी-कभी तो हमने भ्रम में पड़कर उन्हें मशालें लिये हुए दिन की लूटमार के बाद अपने राजा के साथ लौटते हुए मराठा सैनिक समझ लिया था। मैंने एक वीर राजपूत को उस प्रकाश की ओर चलने को कहा किन्तु वह जीवित मनुष्यों का सामना करने को तो तैयार था परन्तु युद्ध में मरे हुये योद्धाओं की प्रेतात्माओं का सामना करने को तैयार न था। सामान्यतया ये प्रकाश वर्षा के पश्चात् दृष्टिगोचर होते हैं जब दलदली मिट्टी और उसमें मिश्रित लवण से भाप बनकर उठती है और जो अग्नि का रूप धारण कर लेती है।

(८१) पश्चिमी गाथों का प्रसिद्ध राजा जो कई बार इटली पर आक्रमण करके रोमन राज्य का स्वामी बना। उसका देहान्त ४१ ई में होना माना जाता है।

(८२) तातार का प्रसिद्ध मुगल बादशाह जिसका जन्म सन् ११६२ ई में और देहान्त १२२७ ई में हुआ था। यह उत्तरी चीन पूर्वी ईरान और सारे तातार देश का स्वामी था।

बनाई जाती है। ये समाधियां सम्पूर्ण रजवाड़े में दृष्टिगत होती हैं। जिनमें योद्धा समस्त शस्त्रों से सुसज्जित प्रभावक होता है उसके निकट ही उसकी सती स्त्री चिता पर बलिदान होने की अवस्था में स्थित होती है सूर्य और चन्द्र उसके दोनों ओर अमर प्रतिष्ठा के प्रतीक स्वरूप खुदे हुए होते हैं।

सौराष्ट्र की काठी कोमानी अथवा तथा अन्य सीथियन जातियों में प्रत्येक नगर की प्राचीर(परकोटे) के समीप ही पंक्तियों के अनियमित समूहों में अथवा वृत्ताकार रूप में चतुर्भुजाकार पालिये अथवा जूझार (समाधि स्तम्भ) पाये जाते हैं। प्रत्येक स्तम्भ पर योद्धाओं की मरण रीति के चित्र अंकित हैं हाथ में बर्छा लिए प्रायः अश्वारोही और कहीं कहीं रथारूढ़ स्थिति में अथवा बुध के जहाजी लुटेरे ⁵(८३) मस्तूल के रस्सों द्वारा समुद्र के तट पर उतरते दिखाये गये हैं।

तातार के कोमानियों से ईसाई पादरियों ने प्रायः वैसे ही पाषाण के चक्राकार स्मारक पाये जैसे केल्टिक जाति की प्राचीन जाति देश में थे। इन दुर्गों और इनके सीथियन स्मारकों के भग्नावशेषों में यदि सुमेरुता नहीं तो भी आकार साम्य स्वतःसिद्ध है।

न्याय वृत्त के केन्द्र का आसन या सिंहासन हर बल या सूर्य के पवित्र नाम वाली संख्या से बनाया जाता है और उसके पुजारी न्याय की व्याख्या करते हैं।

शस्त्र विद्या में प्रवेश

राजपूत अब भी अपने शस्त्रों का वैसे ही आदर करता है जैसे अपने अश्व का। वह अपनी खड्ग की शपथ लेता है और अपनी रक्षक ढाल कवच भाले तलवार तथा कटार को भक्तिपूर्वक प्रणाम करता है।

एशिया महाद्वीप नाम पड़ने का कारण यह हो सकता है कि पूजा का विभाजन तलवार (असि) और घोड़े (अश्व) के मध्य होता है। यह प्रथा सीथियन जेटी लोगों में प्रचलित थी ऐसा हेरोडाटस ने लिखा है। पेन्टार्जिक के जेटी लोग इस प्रथा को डेसिया (८५) और थ्रेस (८६) में ले गये और इन स्वतन्त्रता-प्रेमियों ने इसका वहां प्रचलन उस समय किया जब कि इनके दल योरोप भर को रौंद रहे थे।

गेथिक के एक्रोपोलिस में जेटी अटीला (८७) बड़ी सजावट और धूमधाम से तलवार की पूजा करता था जो रोम के पतन और ध्वंस के इतिहास से एक प्रशंसनीय घटना है। यदि इतिहासकार गिबन से मेवाड़ के राणा का शौर्य और उसकी दुधारी तलवार (खांडे) की पूजा का दृश्य देखा होता तो उसका मंगल की प्रतीक 'तलवार' की पूजा का यह वर्णन और भी सजीव और अनूठा बन जाता।

शस्त्रपूजा और तलवार

शस्त्र धारण करने और सैनिक बनने की विधि जर्मनों और राजपूतों में एक प्रकार की ही मिलती है

७५ द्वारिका में चोरों के देवता का नाम बुध त्रिविक्रम (८४) है और मिस्र में उसका नाम तीन सिर वाला मर्करी है जिसको हर्मीज ट्रिसमेजिस्टस कहते हैं।

(८३) यहां टॉड का अभिप्राय द्वारिका के आसपास के कच्छ आदि में रहने वाले काबों से है।

(८४) त्रिविक्रम विष्णु का नाम है। 'बुध' टॉड ने अपनी ओर से जोड़ा है।

(८५) यूरोप में डेन्यूब नदी के उत्तर में एक देश का प्राचीन नाम।

(८६) पूर्वीय यूरोप का एक प्रदेश का प्राचीन नाम। जो इस समय सोवियत रूस राज्य के अन्तर्गत रोमेनिया जिला कहलाता है।

(८७) हूण जाति का प्रतापी राजा जिसने यूरोप में बड़ी-बड़ी विजय प्राप्त की थी। इसका जन्म ४०६ ई. और देहान्त ४५३ ई. में हुआ था।

अर्थात नवयुवक भाइयों के हाथ में बरछा दिया जाता है अथवा बाल कण्ठ पर तलवार बँधाई जाती है। हम इस समारोह का पूरा वृत्तान्त राजस्थान के सामन्ती रीति-रिवाजों के वर्णन में देंगे। अभी हम इस सम्बन्ध की अन्यान्य बातों की चर्चा करेंगे। समान प्रकार की प्रथाओं को छूने की कोई सीमा नहीं है जैसे भोजन में ये जातियाँ भिन्न-भिन्न पदार्थों* को पसन्द नहीं करतीं यह बात भी प्राचीन केल्ट लोगों और राजपूतों के मध्य समानता प्रस्तुत कर देगी किन्तु हम अपने को अत्यन्त प्राचीन रीति-व्यवहार की बातों के वर्णन तक ही सीमित रखेंगे।

अश्वमेध अथवा घोड़े का बलिदान

प्रकृति की सजीव और निर्जीव कुछ ऐसी वस्तुएँ रही हैं जिनको पृथ्वी के लगभग सभी राष्ट्रों ने अपनी पूजा का पात्र बनाया है जैसे सूर्य चन्द्र तथा आकाश स्थित अन्य नक्षत्र तलवार रेंगने वाले प्राणियों में सर्प पशुओं में उत्तम अश्व आदि। अश्व की भक्ति किसी साक्षात वस्तु की भाँति न करके प्रतिभावान सूर्य-मण्डल के चिह्न के रूप में की जाती है जिसके प्रति प्रकृति का प्रत्येक बालक भी आदर भाव रखता आया है। तातारी मैदानों सीथिया (९) की मरु-भूमि फारस की चट्टानों गङ्गा की घाटी और मारिनोको (९१) के वनों आदि प्रत्येक स्थान में इस तेजपुञ्ज (सूर्य) की उत्कृष्ट भक्ति करने वाले उपासक उत्पन्न हुए हैं जो— 'इस महान् विश्व के उभय चक्षु और आत्मा' रहे हैं।

सूर्य के उपासकों की भेंट और पूजा की विधियाँ काल वायु और प्रथा के अनुसार भिन्न-भिन्न स्थानों पर भिन्न भिन्न रही हैं। जब कि गलिया में बल की बलि वेदी पर तथा माल और ब्रिटेन के केल्ट लोगों के बेमिनस की बलि वेदियाँ मानव बलिदान के रक्त से आप्लावित होती थीं बेबीलोन में मिथराज पर बैल *१ को बलि चढ़ाया जाता था और जेग्जार्टीज एवं गंगा के किनारे सूर्य की बलि वेदी पर अश्व समर्पित किया जाता था।

* सीजर हमें बताता है कि ब्रिटेन की केल्ट जाति खरगोश कलहंस अथवा पालतू मुर्ग नहीं खाती। राजपूत खरगोश (८८) का आखेट कर लेगा किन्तु वह हंस (८८) और शिव के प्रिय कलहंस (८९) को नहीं खायेगा। मेवाड़ के राजपूत जङ्गली कुक्कुट को खा लेते हैं किन्तु पालतू को नहीं।

*१ जैसा कि प्राचीनकाल में 'बालनाथ' (९२) (बल के देवता) को भी यह भारत में चढ़ाया जाता था। सांडदान (९३)[Bul-dan] अर्थात् सूर्य को सांड चढ़ाना अभी भाँति किया जाता है। राजस्थान में बालिम(९४) के अनेक मन्दिर हैं तथा सौराष्ट्र के बालपुर (९५) (महादेव) में भी कई हैं। ये समस्त सूर्य का प्रतिनिधित्व करते हैं।

(८८) राजपूत खरगोश का आखेट करते हैं और उसे खाते भी हैं।

(८९) हंस महादेव के लिये नहीं अपितु ब्रह्मा के लिए प्रिय है क्योंकि वह ब्रह्मा का वाहन माना जाता है।

(९) अफ्रीका का प्राचीन यूनानी नाम लिबिया की मरु-भूमि से अभिप्राय अफ्रीका के सहारा से है।

(९१) दक्षिण अमेरिका की प्रसिद्ध नदी जो परिमा पर्वत से निकल कर तथा १४८ मील बह कर अटलांटिक सागर में गिरती है। यह नदी खास कर 'वेनेज्जूला' देश की मानी जाती है।

(९२) टॉड ने यह नाम सूर्य तथा महादेव के लिये प्रयोग किया है। ऐसा प्रतीत होता है कि उन्होंने यह नाम सूर्य को 'बेलेनस' से मिलाने के लिए किया है क्योंकि संस्कृत में सूर्य तथा महादेव के लिए यह नाम कहीं नहीं मिलता है।

(९३) वास्तव में यह 'सांड-दान' की प्रथा को गलत समझा गया है। इसमें उत्तम जाति के सांड को स्वतन्त्र छोड़ दिया जाता है ताकि उत्तम जाति के गाय और बैल उत्पन्न हों।

(९४) इस नाम का कोई मन्दिर राजस्थान में कहीं भी नहीं मिलता है।

(९५) सौराष्ट्र में 'बालपुर' कहीं ज्ञात नहीं है। सम्भव है उन्होंने वल्लभीपुर का नाम 'बल' से पढ़ा मान कर इसे बालपुर लिखा हो क्योंकि वल्लभी के राजा सूर्योपासक थे।

इतिहास के पिता (९६) का कथन है कि मध्य एशिया के महान् जेटी लोग सृष्टि के प्राणियों में सब से शीघ्रगामी पशु अश्व को असृष्टि क्रम पदार्थों में सब से शीघ्रगामी सूर्य की भेंट करना उचित समझते थे। इससे यह सार निकालना उचित ही होगा कि जेक्सर्टीज् के जेटी तथा अश्व लोगों और स्कैंडिनेविया की जातियों का यह सूर्य का त्यौहार शीतकाल की संक्रान्ति (९७) पर होता था जिसे राजपूत और सामान्य हिन्दू संक्रांति कहते हैं।

हि, हय, हयवर, अश्व आदि शब्द संस्कृत और उससे निकली हुई भाषाओं में घोड़े के पर्यायवाची शब्द (९८) हैं। गाथिक में 'हिरसा' अथ टानिक में 'हार्स' तथा सैक्सन में भी 'हार्स' कहते हैं।

बाल्टिक की जर्मन-जातियों का महान् त्यौहार (जैसा कि पहले कहा जा चुका है) 'हिरस' अथवा 'हिएल' कहलाता था। जिसे गंगा तट पर के सूर्य-वंशी अश्वमेध[८२] कहते थे।

अश्वमेध का उत्सव अत्यन्त ही व्ययकारक और संकटपूर्ण होता था। आजकल के राजाओं के लिए इसका करना बड़ा कठिन है। इस उत्सव के विनाशकारी परिणामों के सम्बन्ध में भारतीय इतिहास के प्रारम्भ से लगा कर अन्तिम हिन्दू सम्राट् पृथ्वीराज तक कई ऐतिहासिक ग्रन्थ भरे पड़े हैं। रामायण महाभारत और कवि चन्द की कविताएँ ये समस्त इस महान् उत्सव का वर्णन करते हैं और इसके परिणाम प्रस्तुत करते हैं।[८३]

---

८१० कहते हैं.– 'Peor his other name when he enticed
Israel in sittim on their march from nile"—Paradise Lost, Book, 1

सोलमन का मन्दिर 'बल' के ही नाम पर था। ऐसा प्रतीत होता है कि उस समय के समस्त मूर्ति-पूजक हिन्दू धर्म के विश्वासों को अपनाये हुए थे।

८२ अश्व [सिंध का अर्थ भारत] में हमें बाजस्व के पुत्रों से उत्पन्न प्राचीन जातियों के नामों की उत्पत्ति प्राप्त होती है जो सिन्धु नदी के दोनों किनारों के देशों में बसती थी और सम्भवतः यही शब्द एशिया के नाम की उत्पत्ति का भी मूल कारण है। अस्सकेनी जिसको सिकन्दर के इतिहासकारों ने अरिमस्पी लिखा है, और अस्पासियानी; जिसकी शरण में आमसिन्न (९९) मेलपकम (१) के पास से भाग कर, गया था; इसे स्ट्रबो ने एक जेटी जाति लिखा है दोनों एक ही मूल से निकली हैं। अतएव असी यह अर्थात् असी लोगों का पद (जिसको दुन से हांसी कहते हैं) और अतएव स्कैंडिनेविया में जेटी जाति के असी लोगों की पहली बस्तीयां थीं।

मार्को पोलो जिस से जिसका ने अपना भूगोल लिखा है, के कथनानुसार, सिकन्दर ने इन सब जेटी जातियों की प्राचीनता तक लेवा "नगरों की माँ" बलख में स्वीकार की थी जहां पर कैंपियन बाग [मेरे शिलालेख का जिह कैंपीजा] की राजधानी थी।

८३ आमेर के राजा सवाई जयसिंह ने यह यज्ञ अन्तिम बार किया था, किन्तु मेरा विश्वास है कि सफेद घुमिया घोड़ा नहीं छोड़ा गया अन्यथा मारवाड़ के राठौड़ अवश्य चुनौती स्वीकार करने के लिये पकड़ते।

---

(९६) हेराडोटस को 'इतिहास का पिता' (Father of History) कहा जाता है वाल्मीकि को भी प्रायः इतिहासकार 'आदि इतिहास लेखक' मानते हैं।

(९७) देखें—पहिले अध्याय की टिप्पणी संख्या ९२, पृ ४१।

(९८) देखें—पहले अध्याय की टिप्पणी संख्या ९४ पृ० ४१।

(९९) पार्थिया का राजा जिसने ईसा से ९२० वर्ष पूर्व के लगभग इस राज्य को अपने आधीन किया था।

(१००) मैल्पकम कैलिनिकर होना चाहिये जो इसका वंशज और मीरिया तथा ईरान का राजा था।

(१ १) सवाई जयसिंह के अश्वमेध यज्ञ के सम्बन्ध में विशेष ज्ञातव्य निम्न है —

(क) कल्पद्रुम महाकाव्य सर्ग ११ (अप्रकाशित) के अनुसार जयपुर बसाने के पश्चात् वाजपेय यज्ञ

'रामायण' अश्वमेध यज्ञ का एक भव्य चित्र प्रस्तुत करती है। अयोध्या के सम्राट् राम के पिता दशरथ इस यज्ञ के लिए इस प्रकार आज्ञा देते हुए दिखाये गये हैं, 'यज्ञ की तैयारी करो और सरयू नदी[८४] के उत्तरी तट से घोड़े[८५] को छोड़ो।"

---

८४ सरयू अथवा गडक (१०२) कुमाऊ के पर्वतों से निकल कर दशरथ के राज्य कोशल देश में हो कर बहती है।

८५ एक दूध के समान श्वेत वर्ण अश्व का निर्वाचन होता था। उसे बन्धन मुक्त कर उसकी इच्छानुसार भ्रमण करने के लिये छोड़ दिया जाता था उसके साथ रक्षक सेना चलती थी। जो भी उसे पकड़ता था वह उस घोड़े के राजा को चुनौती देता था। उसे रक्षक सेना से लड़ना पड़ता था। युधिष्ठिर द्वारा छोड़ गये अश्व की रक्षा ●

१०१क संवत् १७९२ में किया गया। इस यज्ञ की पूर्णाहुति भाद्रपद शुक्ला १२ को हुई थी। उसी समय यज्ञ स्तम्भ स्थान पर आमेर के रास्ते में श्री वरदराज की मूर्ति स्थापित की गई थी जो यज्ञ के ठाकुर कहलाते हैं। श्री जगदीशसिंह गहलोत के अनुसन्धानानुसार यह यज्ञ संवत् १७९१ में हुआ था। [गोपाल नारायण बहुरा का लेख नागरिक (जयपुर) वर्ष १ अंक १ २]

(ख) 'आपने श्रावण शुक्ला ६ से वाजपेय यज्ञ का आरम्भ करके भाद्वा सुदी १२ को पूर्ण किया। पुण्डरीक जी रत्नाकर यज्ञ के प्रधान आचार्य थे। इस अवसर पर मारवाड़ के श्याम पाण्डे भी आये थे। [हनुमान शर्मा नाथावतों का इतिहास पृ० ११८ ११६]

(ग) 'कितने ही महत्वपूर्ण कार्य सम्पादन करने के पश्चात् संवत् १७९८ में इन्होंने अश्वमेध यज्ञ किया यह जयपुर राजकीय अभिलेखों में 'फर्द करार मती वैशाख शुक्ला ४ संवत् १७९८ में दर्ज है। इस अवसर पर निम्नलिखित राजाओं को निमन्त्रण के रूप में ५० मोहरें भेजी गई थी ११)) महाराणा उदयपुर, ७)) महाराज दुर्जनसाल जी ७)) राव राजा जी ५)) राजा गोपाल सिंह जी ५)) राजा इन्द्रसिंह जी ५) राव कीर्तसिंह जी ५)) राजा छत्रसिंह जी ५)) राजा विक्रमादित्य जी।

कहा जाता है कि इस अश्वमेध में जो अश्व घुमाया गया था उसी की पाषाण निर्मितमूर्ति 'कल्कि जी के मन्दिर' के सामने प्रतिष्ठित है।—श्री गोपालनारायण बहुरा की टिप्पणी 'ईश्वरविलास महाकाव्य' (परिशिष्ट १) पृ० ६१।

(घ) मीणों द्वारा दक्षिण से वरदराज विष्णु की मूर्ति मंगाई गई। यज्ञ का आरम्भ १७९१ श्रावण सुदि ६ ई सन् १७३४ ता २८ जौलाई को मानसागर के जल में तीर्थोदक मिला कर महाराज ने अवभृथ स्नान किया। (कच्छवंश महाकाव्य सर्ग ११)।

ऐसा भी प्रसिद्ध है कि यज्ञ का घोड़ा नगर और उसके आसपास फिराया गया और सेना पीछे रही तो भी कुम्भाणियों ने उस घोड़े को पकड़ लिया। महाराज की सेना ने उसको छोड़ देने को समझाया किन्तु वे टस से मस न हुए और उन्होंने नम्रता पूर्वक उत्तर दिया कि घोड़े के सिर पर लगे हुए स्वर्ण पत्र में यह लिखा है कि कोई क्षत्रिय हो तो उसे पकड़े क्या हम निःक्षत्रिय हैं? यदि यह स्वर्ण-पत्र हटा दिया जावे तो हम सहर्ष घोड़ा छोड़ देंगे। महाराज की सेना ने यह बात स्वीकार न की। अन्त में मुट्ठी भर कुम्भाणियों ने जयपुर की विशाल सेना से युद्ध कर अनुपम कीर्ति प्राप्त की —ओझा निबन्ध संग्रह' भाग ३-४ पृ १ ७।

(१०२) गंडक सरयू का नाम न होकर एक भिन्न नदी का है जो यू० पी और बिहार में होकर बहती है।

एक वर्ष समाप्त होने पर यज्ञ का अश्व भ्रमण करके वापस[८६] आया। अश्व को छोड़े जाने के स्थान पर यज्ञ भूमि तैयार की गई। कैकियराज[८७] काशी[८८] नरेश अङ्गदेशाधिपति[८९] लोमपाद मगध[९०] देशाधिपति व कोशल सिन्धु[९१] सौवीर[९२] सौराष्ट्र[९३] आदि के समस्त नृपतियों को अयोध्या पधारने का निमन्त्रण भेजा गया।

का भार अर्जुन पर था परन्तु उसके पौत्र परीक्षित द्वारा छोड़े गये अश्व को 'उत्तर के तक्षक लोगों ने पकड़ लिया था'। यही दशा दशरथ के पिता सगर (१०३) की हुई थी। जिससे उसका राज्य जाता रहा (१०४) था।

८६ एक वर्ष के उपरान्त घोड़े का लौटना स्पष्ट रूप से ज्योतिष सम्बन्धी एक भ्रमण अथवा सूर्य का सौर मण्डल में पुनः उसी स्थान पर लौट कर आना प्रकट करता है। सूर्य का दक्षिणायन से लौटना सीथियन और स्कैंडिनेविया वासियों में सर्वत्र आनन्द का दिन माना जाता होगा। क्योंकि मिल्टन कहता है वे अपने विशाल निवासस्थान को जब उत्तरी शीतल वायु चलता होगा नरक से भी अधिक दुखदायी समझते होंगे। वे दक्षिण की ओर इस देवता (सूर्य) के लिए ताकते रहते थे। इससे यह परिणाम निकलता है कि राजपूतों में भी घर का द्वार उत्तर की ओर रखना धर्म विरुद्ध माना जाता है।

८७ अनुवादक डॉ बीरे के मतानुसार कैकय (१०५) ईरान का राजा होना चाहिये 'कै' वंश दारा से पूर्व हुआ है। हिन्दुओं के अधिकांश सम्बन्धित दोहों में कै उपाधि प्राय मिलती है। एक दोहा जो मुझे स्मरण है, जयपुर राज्य के अन्तर्गत आमनेर के प्राचीन खण्डहरों से सम्बन्ध रखता है इसमें उसके एक राजा का विवाह कैकय की बेटी से होने का उल्लेख है— 'तू बेटी कैकय की नाम परमला मो।" इत्यादि।

यद्यपि इसकी कैकय की पुत्री का यह नाम परी कथाओं का रूपक है किन्तु 'कै' ईरान के एक राज-वंश की उपाधि भी थी। प्रश्न :— क्या कायकस्स पुनानियों का कैम्बिसिस नहीं है?

८८ बनारस। ८९ मिथिला अथवा भागा (१०६)। ९० बिहार।
९१ सिन्ध की घाटी। ९२ मुझे ज्ञात नहीं (१०७) ९३ काठियावाड़ का प्रायद्वीप (१०८)

---

(१०३) सगर दशरथ का पिता नहीं था। टॉड ने ही अपने वंशवृक्ष में (परिशिष्ट संख्या १) सगर को ३२ वां तथा दशरथ को ६७ वां राजा लिखा है।

(१०४) सगर का राज्य नहीं गया था। यज्ञ-अश्व उसका पौत्र वापस ले आया उसी से यज्ञ सम्पूर्ण हुआ था।

(१०५) (क) कैकय सिन्ध के निकटवर्ती प्रदेश का नाम था। —डा रा हि० अ टि स० ६७, पृ ११८।
(ख) व्यास के पास का प्रदेश होना चाहिए। मा० का पृ०इ भाग १ पृ १७२।
अतः इसका ईरान के कै वंश से कोई सम्बन्ध नहीं है।

(१०६) देखें अध्याय तीन पृ० ६६ की टिप्पणी संख्या १५ तथा अध्याय ४ पृ० ६६ की टिप्पणी संख्या २६।

(१०७) सरवेन लेवी ने निम्न श्लोक के आधार पर 'रोरुक' को सौवीर की राजधानी माना है।
"चम्पापुर कलिङ्गानां मास्सकानाञ्च पोटनम्। माहिस्मती अवन्तीनां सोवीराणां च रोरुकम्॥
— Notes indiennes, Jan-Mars 1925, पृ० ४८।
अरबी ग्रन्थों में इस नगर का नाम 'अल-रूर' है। स्टेन कोनो आदि विद्वानों के अनुसार वर्तमान "रोड़ी या रोहरी" ही यह स्थान है। (जर्नल ऑफ इण्डियन हिस्ट्री भाग १२ संख्या १ पृ १८)
अलबेरूनी 'मुलतान तथा जाहाबार' को 'सौवीर' मानता है। (अलबेरूनी भाग १ पृ ३)
हेमचन्द्र आचार्य ने 'मुलतान' को 'सौवीर' देश लिखा है। (अभिधान चिन्तामणि ४ भूम काण्ड २६)

(१०८) यह सारे काठियावाड़ का नाम नहीं। वर्तमान सोरठ को सौराष्ट्र कहते थे।

जब बलि-वेदियां बन गईं तो यज्ञ प्रारम्भ हो गया। स्तम्भ का यह नाम यूप चर्चा कहलाता है, जिसका पूरा वर्णन इस प्रकार है :—'इक्कीस यूप अथवा स्तम्भ[१४] खड़े किये गये प्रत्येक षष्टकोण वाला इक्कीस फीट ऊँचा और चार फीट व्यास का था, स्तम्भ शिखरों पर पुरुष हाथी अथवा बैल की मूर्तियां रखी हुई थीं। ये पवित्र वृक्षों के उपयुक्त विभिन्न प्रकार की लकड़ियों के बने हुए थे जिन पर स्वर्ण मढ़े हुए थे ये कलावत्तू के काम वाले वस्त्र तथा फूलों के तोरण व बन्दनवार से आच्छादित थे। जब कि यूप बन रहे थे बलि यज्ञ के आचार्य होत्री के आदेश से अध्वर्यु ने सस्वर मंत्रोच्चारण प्रारम्भ किया।

यज्ञ कुण्ड तीन पंक्तियों में थे। उनकी संख्या अट्ठारह थी और उन्हें गरुड़ के आकार में बनाया गया था। यहीं बलिदान के लिये वध किये जाने वाले जीव रखे गये थे जिन में पक्षी जल-जन्तु और एक अश्व भी था।

राजा दशरथ ने इस अश्व को तीन बार कौशल्या द्वारा प्रज्वलित पवित्र अग्नि के चारों ओर घुमाया और ज्यों ही पुजारियों ने मन्त्रोच्चारण किया वह अश्व हर्षोल्लास में बलि कर दिया गया।[१५]

राजा और रानी को आचार्य ने घोड़े के निकट बैठाया जहाँ पर वे रात्रि भर बैठ कर चिड़ियाओं को देखते रहे। आहुति देने वाले पुजारी ने उसके हृदय भागों को निकाल कर धर्म ग्रन्थों के आदेशानुसार उनकी आहुति दी। सम्राट ने आहुति दिये गये हृदयों के धुएं की सुगन्ध ली और स्वयं द्वारा किये गये अपराध पूर्ण कार्यों को उसी क्रम में जिस क्रम से किये गये थे स्वीकार किया।

तब यज्ञ करने वाले सोलह पुजारियों ने अश्व के अंगों को अग्नि में होमा [जैसा कि धर्म ग्रन्थों में उल्लेखित है] समस्त वस्तुओं की आहुति लकड़ी के चम्मे से दी गई केवल अश्व की आहुति बेत के चम्मे से दी गई।

यज्ञ की समाप्ति पर बलि करने वाले ऋषियों और भविष्यवक्ताओं (११०) को पृथ्वी का दान दिया गया

---

१४ मैंने बहुत प्राचीन काल में बनाये गये कई यज्ञ स्तम्भ देखे हैं। बहुत वर्षों पूर्व जब कि राजपूत राज्यों में मराठों का उत्पात बढ़ा हुआ था सूरत के एक विदेशी कुटुम्ब के योग्य और समझदार कोठी वाले ने कुरूप और राज की सन्तानों पर लुटेरों द्वारा होने वाले अत्याचारों को देख करबद्ध हो आँखों में आंसू लाकर मुझ से कहा था "जयपुर की विपत्ति का कारण यह है कि यहाँ के राजा जगतसिंह ने यज्ञ-स्तम्भों के स्वर्ण पत्र उखड़वाकर अपने खजाने में जमा कर भारी पाप किया है। यह कर्म रोहिल्ला के कुकर्म से भी अधिक निकृष्ट समझा गया है, जिसने (कि) 'सोमनाथ की लगाई हुई स्वर्ण की ढालों को मन्दिर में से लेकर उसके स्थान पर पीतल की ढालें रखवा दी थीं। जब उनके [स्वर्ण पत्रों के सिक्के ढाले गये तो वे या तो अरबों के पास चले गये या उनकी रामपुर (१ ९) नामी पालकी के निमित्त लगाये गये। यह कार्य इस राजा के अन्य मूर्खतापूर्ण कार्यों में से एक था। जयसिंह ने इन स्तम्भों को बनवा कर देश की प्रतिष्ठा बढ़ाई थी जिसका कि यह दूसरा संस्थापक था और जिसके राज्य काल में इस देश की उन्नति हुई थी। किन्तु अब उसकी अवनति हुई है।

१५. नौ रोजा अथवा नये साल के त्यौहारों पर मुगल सम्राट अपने हाथ से ऊँट का वध करता था, जिसका माँस दरबारियों में बाँट दिया जाता था और वे उसका भोजन करते थे।

(१ ९) देखें—टॉड की भूमिका पृ सं० ८ की टिप्पणी संख्या ११।

(११०) रामायण में भविष्यवक्ताओं की चर्चा नहीं है। यह सवाई जयसिंह के यज्ञ की प्रचलित किंवदन्तियों से लिया है। इसके लिये देखें—भाभावतों का इतिहास पृ० १६।

किन्तु पवित्र पुरुषों ने स्वर्ण मुद्रायें ही लेना स्वीकार किया अतः एक करोड़ जम्बूनद[१६](१११) उनको अर्पित किये गये।

यह अश्वमेध यज्ञ का घटना क्रम के अनुसार (११२) वर्णन है जो इतिहास का अत्यन्त विचार और, सब से प्राचीन उत्सव रहा है। इस उत्सव तथा अन्य जातियों के चुने हुए लोगों से लेकर रोम के औरोस्पेक्स लोगों तक में एवं कैथोलिक धर्म को पाप स्वीकार करने की रस्मों के मध्य समानताओं को वर्णित करना अधिक महत्त्वपूर्ण नहीं होगा।

संक्रांति[१७] अथवा शिवरात्रि का दिन शरद ऋतु का प्रथम काल का दिन होता है उसी दिन सूर्य अथवा बलनाथ को अश्व की बलि (११३) भी दी जाती थी।

स्केंडिनेविया के निवासियों का विश्वास है कि सबसे लम्बी रात्रि को ही पृथ्वी की उत्पत्ति हुई अतएव वे उसे मातृ रात्रि[१८] कहते हैं। इसीलिए बल या बेलीनस का अग्नि-उत्सव—बेलटानी उत्तरी राज्यों का हि-यूल अश्वमेध के बलिदान का अग्नि उत्सव अथवा गङ्गा तट के सूर्यों द्वारा तथा भू-मध्य-सागर के तट पर सिरियनों तथा सीरोमार्गियों द्वारा सूर्य पूजा, सब में समानता प्राप्त होती है।

---

१६ यह एक प्रकार का ऐसी स्वर्ण है जिसका रङ्ग श्यामलता लिये हुये चमकीला होता है, जिसकी उपमा जम्बूफल [जैम्सन नामक फल के समान] से दी जाती है। हिन्दुओं में समस्त वस्तुएं रूपक के रूप में वर्णित की जाती हैं इस धातु के उत्पन्न होने का वही समय माना गया है जब कि जाह्नवी अर्थात् गंगा देवी ने अग्नि कुमार से गर्भ धारण कर कुमार अर्थात् युद्ध देवता को उत्पन्न किया जो देव-सेना का सेनापति है। यह घटना उस समय हुई थी जब कि गंगा ने अपने जन्म-स्थान हिमालय (जो सर्व प्रकार के खनिज पदार्थों का भण्डार है) को छोड़ा जिसकी वह बेटी है। निस्संदेह यह घटना किसी अत्यन्त ही प्राचीन काल की ओर संकेत करती है जब कि गंगा ने अपने शिलामय मार्ग को खंडित कर अपनी पार्श्व से इस बहुमूल्य धातु की खान को प्रगट किया।

१७ इस अवसर पर राजा लोग छोटे-छोटे कमखाब के बटुये जिनमें तिल के दाने और तिल के लड्डू भी रक्खे जाते हैं अपने मित्रों को भेजते हैं जिस समय लेखक यह लिख रहा है उसके सम्मुख युवक मरहठा महाराजा होल्कर के भेजे हुए दो बटुये रक्खे हैं।

१८ शिवरात्रि का अर्थ होगा पितृरात्रि। शिव—ईश्वर अर्थात् विश्व पिता।

---

(१११) जम्बू नद' जम्बू नामक फल के रंग जैसे सोने का नाम नहीं अपितु जम्बू नामक नदी के रेत से निकाले हुए स्वर्ण का है। (वाल्मीकि रामायण बालकांड सैंतीसवां सर्ग श्लोक सं. २१) इसी प्रकार सिन्धु नदी के स्वर्ण के सम्बन्ध में देखें — टॉड की भूमिका पृ. १ पर टि. सं. ७७।

(११२) टॉड ने यह वर्णन वाल्मीकि रामायण बालकांड सर्ग १२ से १४ तक के आधार पर किया है, किन्तु रूपान्तर में उन्होंने कई अन्तर और फेर-फार आदि कर दिये हैं।

(११३) अश्वमेध संक्रान्ति या शिवरात्री को कभी नहीं हुआ न ही ऐसा कोई विधान ज्ञात होता है। हम नीचे कुछ अश्वमेधों का समय देते हैं जिस से यह स्पष्ट हो जायेगा —

(क) दशरथ के अश्वमेध के सम्बन्ध में लिखा है 'पुनः प्राप्ते वसन्ते तु पूर्णः संवत्सरोऽभवत्।' अर्थात् पुनः बसन्त ऋतु आने पर (वाल्मीकि रामायण बालकांड चतुर्दश सर्ग श्लोक १)।

(ख) रामचन्द्र जी के अश्वमेध के सम्बन्ध में-अगस्त्य जी का कथन है 'वैशाख मास की पूर्णिमा को' (संक्षिप्त पद्मपुराणाङ्क पृ. ४२३)।

(ग) सवाई जयसिंह के अश्वमेध के सम्बन्ध में देखें — अध्याय छठा पृ. ११४ टिप्पणी १०१।

फीनीसिया (११४) के हेलियोपोलिस (११५) बालबेक[९] (११६) अथवा टाडमोर[१०] (११७) की पवित्र बलिवेदिका उसी देवता की थी जिसकी वेदियाँ सरयू के किनारे अथवा सौराष्ट्र के बलभपुर (११८) में थीं जहाँ कि सूर्य के घोड़े सूर्य कुण्ड से निकलते थे और वहाँ के ५ राजाओं को विजय प्राप्ति के लिए दे जाते थे।

सीरिया मे कैल्टिक द्रुइड लोगों के धर्म-गुरु आए, जो नर-बलि करते थे जिन्होंने केम्ब्रिया (११९) और केलीडोनिया (१२०) के पर्वतों पर बेलेनस के स्तम्भ स्थापित किए थे।

जब "जुडाह (१२१) ने ईश्वर की दृष्टि में दुष्कर्म किया तो उसने प्रत्येक ऊँचे पर्वत और प्रत्येक वृक्ष के नीचे ऊँचे ऊँचे स्थान मूर्तियाँ एवं कुञ्ज बनाए बाल ईश्वर 'बल' था और स्तम्भ (लिंगम्) उसका प्रतीक। वे उसकी बलिवेदी पर धूप जलाते थे 'मास के पन्द्रहवें दिन'[११] (हिन्दुओं की अमावस्या को) बछड़े की बलि देते थे। इजराइल (१२२) का बछड़ा बालेश्वर अथवा शिव जी का बैल (नन्दी) है अथवा मिस्र के ओसिरिस (ईश्वर) का एपिस है।

पश्चिम मे सूर्य-देवता के लिए एक वृक्ष (एक प्रकार का चिनार) पवित्र था। पीपल[१२] का पेड़ पूर्व

---

९ फरिश्ता, जो भारत के बादशाहों का इतिहास लेखक है इसको फारसी या अरबी शब्दों का बना हुआ बताता है 'बाल' से सूर्य तथा बेक से मूर्ति।

१० यह शब्द बिगड़ कर पाल्मायरा हो गया है। मेरे विचार से इस शब्द की उत्पत्ति कभी नहीं की गई, यह 'टाडमोर' का ही दूसरा रूपान्तर है। ताड़ के वृक्ष को संस्कृत में ताल अथवा ताड़ कहते हैं, तथा मोर का अर्थ मुख्य है। भारत में एक से अधिक नगरों के नाम 'ताड़ों के नगर' (तालपुर) हैं और वह जाति जो सिन्ध के हैदराबाद में शासन करती है जहाँ से वह प्रथम बार निकली उस स्थान के कारण 'तालपुरी' कहलाती है।

११ किम्ब, १४ २१।

१२ पीपल—यह इटली और जर्मनी के पोपल (पोपलर) वृक्ष के साथ जिसकी एक जाति आस्पेन है, पूर्णतः मिलता है। समानता इतनी है कि केरोलिना (१२३) से लाया हुआ पीपल का एक नमूना बेगोनियागियोर के आइसोला बेला में पापुलस एंगुलाटा कहलाता है और दूसरा डोलम के बार्डिन डेस प्लांटीज में काइकल पापुली ग्रीसिया, म्राव ग्रिगुइर म्राव बाम्पुलियर कहलाता है। आस्पेन अथवा ऐस का वृक्ष जिसे केल्ट जाति के पुजारी पवित्र मानते हैं उसे पहाड़ी ऐस बतलाते हैं।

पीपल के नीचे प्रायः बन का बछड़ा रखा जाता है और हिन्दुओं की कथा के अनुसार यह उसका कभी न सूखने वाला पवित्र पेड़ है, जो उस स्थान को बताता है, जहाँ पर कि हिन्दुओं के ऐपोलो हरि (सूर्य) सौराष्ट्र के समुद्री तट पर जंगली भील के हाथ से मारे गये थे।

---

(११४) सीरिया देश का एक भाग।
(११५) मिस्र देश का एक प्राचीन नगर, जो सूर्य मन्दिर के लिए बहुत प्रसिद्ध था।
(११६) इस शब्द का अर्थ वहाँ की भाषा में सूर्य का नगर है। सीरिया का एक प्राचीन नगर।
(११७) सीरिया का एक प्राचीन नगर जिसको यूनानी लेखकों ने 'पल्माइरा' लिखा है।
(११८) यह वल्लभी के लिये प्रयुक्त किया ज्ञात होता है। क्योंकि वर्णन वल्लभी की घटना से मिलता है।
(११९) इङ्गलैण्ड के वेल्स नामक प्रदेश का प्राचीन नाम।
(१२०) ब्रिटेन के उस भाग का प्राचीन नाम जो फर्थ आफ फोर्थ और क्लाइड नदी के मध्य में है।
(१२१) यहूदियों की धर्म पुस्तक में वर्णित जैकब का चौथा पुत्र और इजरायल जाति का नाम।
(१२२) जैकब का दूसरा नाम जो यहूदियों का मूल पुरुष था। इजराइल नाम इसी से पड़ा है।
(१२३) प्रशान्त महा सागर के मध्य का एक टापू।

की धर्म पुस्तकों के अनुसार यम (शिवजी) का प्रिय वृक्ष है। उसके पवित्र कुंजों[153] को दूषित करने वाले की मृत्यु अथवा अङ्ग-भङ्ग हो जाता था वहाँ एक स्तम्भ खड़ा कर दिया जाता था जिसमें इन के न काटने की सूचना होती थी।

---

१५३ राजपूतों की धार्मिक भावनाओं को यद्यपि कई शताब्दियों तक मुसलमानों और पठान लेखकों ने बुरी तरह कुचला है, फिर भी वे पीपल और सघन वट वृक्ष पर बिना अभिशापित किये किसी को भी कुल्हाड़ी नहीं चलाने देते। जो कोई भी इतने प्राचीन काल से चले आ रहे विश्वासों पर जानबूझ कर आघात करता है, उसे विकृत मस्तिष्क का ही मानना चाहिए। इस पर भी हमारे देशवासी सारी विदेशी भावनाओं के प्रति घृणा का भाव रखते हैं उनके धार्मिक विश्वासों पर आघात पहुँचाने वाले कार्य करते हैं वे भारतीय मार्स की पवित्र चिड़िया को मारते हैं वन के बछड़ों का वध करते हैं तथा इतर देशवासियों के सम्मुख जान बूझ कर बिना पश्चात्ताप के पीपल के वृक्ष को काट कर गिराते हैं।

इन विश्वासों के प्रति जो तार्किक बुद्धि से परे हैं जो ऐसा बेचारा व्यवहार करता है, वह अराजनीतिक और बुद्धिहीन है जो इनका आदर नहीं करता वह अनुदार है। जो इस प्रकार के कार्यों को रोकने के लिए आलस्य अथवा प्रमादवश पूर्ण प्रयत्न नहीं करता, वह कुशल नीतिज्ञ नहीं। ऐसा करना उनकी कमजोरी का अनुचित लाभ उठाना तथा हमारी शक्ति का दुरुपयोग करना है। हमें यह स्मरण रखना चाहिये कि शिव मन्दिरों उनके पीपल के वृक्षों और पवित्र पक्षी (मोर) का रक्षक कौन है? सूर्य–चन्द्र की सन्तानें! प्राचीन ऋषियों के वंशधर!! जो हमारी सेना के सब स्थानों में हैं। वे ध्यानपूर्वक चुपचाप हमारे कार्यकलापों को देखते हैं। ये मनुष्य जाति में हमारे सर्वाधिक स्वामी भक्त अत्यन्त आज्ञाकारी तथा अत्यधिक लाभ देने वाले हैं। हमें इनको आज्ञाकारी और स्वामी भक्त बनाये रखने के लिए इनके विश्वासों के प्रति आदर और इनके आत्म गौरव को मान्यता देनी चाहिए। हमारा भारतवर्ष का साम्राज्य इन्हीं बातों के निबाह पर निर्भर करता है। किन्तु गत पन्द्रह वर्षों में हमारे प्रति इनकी भक्ति बढ़ी नहीं है। हमें यह प्रश्न स्वतन्त्र विचार वालों के सम्मुख रखना चाहिये 'क्या हमारे लिए विजय किये गये राज्यों की तुलना में उनका कल्याण भी उसी अनुपात से हुआ है। कहीं यह उसी अनुपात से घटा तो नहीं? क्या उनका भत्ता और सुख कम नहीं हुआ है? क्या रुपयों और जीवनोपयोगी वस्तुओं का अन्तर अभी तक वही है जो बीस वर्ष पूर्व था? क्या प्रथम (जीवनोपयोगी वस्तुओं) में २५ प्रतिशत महँगाई वैसे ही नहीं बढ़ी जैसे आधे भत्ते वाली छावनियां और उसके कर्त्तव्य?" शासक और सेवक दोनों के कल्याणार्थ हमें इसमें संशोधन करना चाहिए। मैं इन बातों को सबके कल्याण हेतु पूर्ण सच्चाई और दृढ़ता से कहता हूं। मैंने अपनी राज्य सेवा प्रेमपूर्वक की है मैंने देशी सिपाहियों से भी प्रेम किया है। मैंने यह प्रमाणित कर दिया है कि जहां उन्हें नियुक्त किया जाता है वे वहां कैसे कार्य करते हैं—सन् १८१७ ई० में मेरी गार्ड के ११ बन्दूकचियों ने १५ शत्रुओं के पड़ाव पर आक्रमण करके उन्हें पराजित कर तितर-बितर कर दिया तथा अपने से तीन गुना (१) शत्रुओं को मार गिराया। मैंने तो

---

(१) *भारतीय धर्मावली कोरीगांव के सम्बन्ध में क्या कहती है? जहां पांच सौ बन्दूकचियों ने बीस हजार मनुष्यों का मुकाबला किया। क्या नेपोलियन के इतिहास में भी इससे अधिक ज्वलंत उदाहरण मिल सकता है? इस स्मरणीय दिन के लिए यूरोपीयन और भारतीय योद्धाओं के नाम पर क्या कोई स्तम्भ खड़ा किया गया है? जिससे भविष्य में ऐसा ही करने की प्रेरणा प्राप्त हो नागपुर के युद्ध-स्थल में पोरका दिलाम के उपलक्ष में छोर फिट्जक्लेरड की छाती पर कौन सा पदक चमक रहा है? किसी और दूसरे स्थान पर उसके ये शब्द उसकी टोप पर अंकित किये जाते 'मेरे उत्तरदायित्व पर भरोसा रख कर आक्रमण करो।" इन बातों में सुधार आवश्यक है।*

हम यहाँ इण्डो-सीथियन वंश के राजपूतों तथा उसी वंश की प्राचीन यूरोपियन जातियों के मध्य की तुलना समाप्त करेंगे यद्यपि कई अन्य बातें प्रमाण स्वरूप प्रस्तुत की जा सकती हैं। यदि स्कैंडिनेविया के पुराने धार्मिक केल्टिक और गोथी अथवा रून स्कन्ध शिलालेखों की राजस्थान और सौराष्ट्र के मन्दिरों और स्तम्भों पर मिलने वाले लेखों से तुलना करें तो मौलिक सादृश्यता की दृष्टि से इससे भी अधिक महत्वपूर्ण प्रमाण प्राप्त किए जा सकते हैं। जर्मन लोगों के नाम (वैर-युद्ध[1] [2]) राजपूतों के (बर-कलह युद्ध) और वैरी (शत्रु) से निकला हुआ पाया जा सकता है।

यदि ये सादृश्यताएँ केवल संयोग वश ही मिल गई तो ऊपर जो कुछ कहा गया है वह मनोरंजक है यदि नहीं तो जो प्रामाणिक सूत्र यहाँ दे दिए गए हैं तथा अनुमान स्थापित कर दिए गए हैं उन में अन्य लेखकों की सहायता प्राप्त हो सकेगी।

सर्वदा के लिए वह कार्य प्रेम त्याग दिया है अतएव मैं अपने विचार एक के हित में और दूसरे के स्वामित्व की दृष्टि से बिना किसी पक्षपात के प्रस्तुत करता हूँ।

१ ४ डी एम्विले ने वैर (युद्ध) और मैनस (मनुष्य) से जर्मन व्युत्पत्ति की है।

अध्याय—७

छत्तीस राजकुलों का विवरण

राजस्थान की सैनिक जातियों की प्राचीन वंशावलियों पर विचार करने तथा उनके चरित्र एवं-धर्म आदि बातों में यूरोप की प्राचीन जातियों से तुलनात्मक अध्ययन करने के पश्चात् अब हम राजस्थान के छत्तीस राजकुलों की वंशावली पर विचार करते हैं।

जो तालिका पाठकों के संमुख प्रस्तुत की गई है, उसमें एक साथ वे सभी सूत्र दिये गये हैं, जिनके आधार पर उसे प्रस्तुत किया गया है। वे सभी उत्तम और यथेष्ठ हैं। प्रथम नामावली एक प्राचीन ग्रन्थ के पृथक हो गये एक पृष्ठ से ली गई है, जो मारवाड़ के प्राचीन नगर नाडोल (१) के जैन-मन्दिर के एक यति से प्राप्त हुआ था। द्वितीय नामावली दिल्ली के अन्तिम हिन्दू सम्राट् पृथ्वीराज के भाट कवि चन्द [1] (२) की कविताओं के आधार पर बनाई गई है। तीसरी

---

१ मेरे पास उसकी रचनाओं की एक सर्वथा सम्पूर्ण प्रति मौजूद है।

---

(१) जोधपुर राज्य के गोड़वाड़ जिले का एक प्राचीन नगर जो साँभर के चौहानों की एक राजधानी था।

(२) इस सम्बन्ध में यह बात ध्यान रखने योग्य है कि भिन्न-भिन्न विद्वानों ने इसके भिन्न-भिन्न अर्थ किये हैं मूलछप्पय निम्न है—

रवि ससि जादव बंस। ककुत्स्थ परमार सदावर ॥
चहुवान चालुक्क। छंदक सिलार अभीयर ॥
दोयमत्त मकवान। गरुअ गोहिल गोहिलपुत्त ॥
चापोत्कट परिहार। राव राठौर रोस जुत ॥
देवरा टाँक सैंधव अनिग। यौतिक प्रतिहार दधिपट् ॥
कारट्टपाल कोटपाल हुल। हरितट गौर कमाप भट ॥
धन्य पालक निकुम्भवर। राजपाल कविनीस ॥
कालच्छुर के आदि दे। बरने बंस छत्तीस ॥

इसके अर्थों के लिये देखो—डॉ० राजबली पाण्डे का ग्रन्थ 'गोरखपुर के जनपद की क्षत्रिय जातियों का इतिहास' पृ १११ से २०१ तथा श्री गोपालनारायण बहुरा का किया हुआ अर्थ 'रासमाला' प्रथम भाग पूर्वार्द्ध पृ १९० १९१ मूल छप्पय के भी अनेक पाठ भेद हैं।

नामावली ग्रन्थ के समकालीन प्रतिष्ठित ग्रन्थ कुमारपाल चरित [१] (३) से भी गई है। यह ग्रन्थ 'अणहिलवाड़ा पट्टण

१ रायल एशियाटिक सोसायटी को भेंट किया। (४)

(३) 'अणहिलवाड़ा पट्टण के इतिहास सम्बन्धी जिस संस्कृत पुस्तक में ३६ राजवंशों की नामावली दी है उसका नाम 'कुमारपाल चरित' नहीं किन्तु 'कुमारपाल प्रबन्ध' है। यह ई० सन् की बारहवीं शताब्दी में नहीं बरन् वि सं० १४९२ (ई सन् १४३५) में बना था। इसके कर्ता का नाम 'जिन मण्डनोपाध्याय' मिलता है जो 'सोमसुन्दर सूरि' का शिष्य था। 'कुमारपाल चरित' नाम की तीन पुस्तकें मिली हैं जिनमें से किसी में भी ३६ राज-वंशों की नामावली नहीं है। (मो टा० रा० हि० पृ० २०१ टि० सं० २)
इस सम्बन्ध में गोपालनारायण बहुरा से निम्न जानकारी प्राप्त हुई है—

(१) कुमारपाल चरित' द्व्याश्रय प्राकृत काव्य' इसके कर्ता 'हेमचन्द्र सूरि' हैं और यह बम्बई सीरीज में सन् १९३६ ई में प्रकाशित हो चुका है।

(२) कुमारपाल चरित महाकाव्य' इसके कर्ता 'जयसिंह सूरि' थे। इस काव्य की रचना १३६७ ई० में हुई यह 'शान्ति विजय गणि' द्वारा सम्पादित होकर १९२६ ई० में प्रकाशित हो चुका है।

(३) कुमारपाल चरित' जिसका 'रासमाला' में कई बार उल्लेख हुआ है यह 'मेरुतुंगाचार्य' कृत 'प्रबन्ध चिन्तामणि' के अन्तर्गत है।

(४) कुमारपाल प्रबन्ध' 'जिनमण्डन गणि' कृत है। यह 'प्रबन्ध संग्रह' के अन्तर्गत 'मुनि चतुर्विजय' द्वारा सम्पादित होकर संवत् १९७१ में भावनगर से प्रकाशित हो चुका है। 'जिन मण्डन गणि' व 'जिन मण्डन उपाध्याय' एक ही व्यक्ति है।

(५) 'कुमार विहार प्रशस्ति' के कर्ता 'रामचन्द्र' थे जो 'कुमारपाल' के समसामयिक थे और 'हेमचन्द्र' के शिष्य थे।

(६) कुमारपाल प्रतिबोध' इसके कर्ता 'सोम प्रभाचार्य' थे यह 'मुनि जिनविजय' द्वारा सम्पादित होकर बड़ौदा से सन् १९२ में प्रकाशित हुआ है।

(७) कुमारपाल चरित संग्रह'—नामक एक पुस्तक मुनि जिनविजय ने सम्पादित की है यह सिंघि जैन सीरीज में प्रकाशनाधीन है
टॉड के पास 'जयसिंह सूरि' कृत 'कुमारपाल चरित' की प्रति थी ऐसा टॉड कृत Travels in Western India से ज्ञात होता है।
आपकी जानकारी के लिए राजस्थान प्राच्य विद्या प्रतिष्ठान की ग्रन्थ सं १३७२५ में छत्तीस कुली राजाओं की हकीकत और ज्योतिरीश्वर ठाक्कुर, प्रणीत मैथिल ग्रन्थ 'वर्ण रत्नाकर' में से ३६ कुली व ७२ कुली वंशों की नामावली साथ में भेज रहा हूँ। इनका सदर्भ डॉ वासुदेव शरण ने 'पद्मावत' में प्रयुक्त किया है।

(उमरावसिंह मगम के नाम गोपाल नारायण बहुरा का पत्र)

(४) MSS NO-81—KUMARPALA—RAJA RSI—RAS or KUMARAPAL—RAS a Jain poem on the Exploits of the Chalukya King Kumarapala of Anahilla Pattana, Composed in V Samvat 1670 by Rsabhadas, son of Sangana, 186 fols. Copied in V Samvat 1746 Magh Su. 5 Paper 10 ×5½ Hindi. ed ✽

के राज्य का इतिहास' है। चौथी नामावली खीची राजवंश के भाट कवि [3] से ली गई है तथा पांचवी सौराष्ट्र के एक भाट कवि से।

राजस्थान के प्रत्येक भाट-कर्म कर्ता से तथा समस्त संग्रहों के संग्रहकर्ताओं से नामावली प्राप्त कर उन्हीं के आधार पर छठी नामावली का निर्माण किया गया है, जिसे वंशजों ने किसी भी अन्य नामावली से अधिक पूर्ण होना

---

३ चोकजी वर्तमान काल के अत्यधिक बुद्धिमान् भाटों में से एक है। यद्यपि आजकल इसके पास टूटा हुआ दिल और अपनी जाति के पुर्खों का वर्णन यही कुछ रह गया है किन्तु इस पर भी यह अपनी स्वामी-भक्ति के कारण अम्बर के तौर पर अपने प्राणों की बलि देने वाले परसंग के वीरता पूर्ण कार्यों का वर्णन करते समय एक क्षण के लिये इसको भूल जाता है; उस समय भवानी का प्रहस्य आवरण उसके शरीर पर लिपटा हुआ होता है और उसके प्राचीन काल के वीरतापूर्ण कार्यों को स्वछन्द धारा प्रवाह के साथ वर्णन करने में यह उनकी वर्तमानकालीन अवनति और दैव काल आदि सबको भूल जाता है। परन्तु वह समय शीघ्र आ रहा है जब कि यह कैम्ब्रियन भाटों की भांति इस प्रकार गाने लगेगा—

"ओ! मेरी विद्यावली के खोये हुए साथियो! तुम कहाँ अदृश्य हो गये?"

---

(४) ॥ संवत १७८६ वर्षे माह सुदि ५ दिने लिपत पंडित श्री सत्यविजय गणि शिष्य पंडित श्री जयविजय गणि शिष्य पंडित मेघ विजय ग पंडित भीमविजय शिष्य गणि सुख विजय पंडित सोभाग विजे भाई अमृतविजे मोत्रमणि प्रभु (लि) रा रास साधीमे खो योग वाचनार्थ।

(L D Barnett s Catalogue of Tod Collection of Ind. Manuscripts, 186.)

किन्तु Travels in Western India के ८ वें अध्याय में पृ १४१ पर, लिखा है—

'अब हम 'कुमारपाल चरित्र' से वे उद्धरण प्रस्तुत करते हैं जिनसे वंश और राजधानी के परिवर्तन का ज्ञान प्राप्त होता है। यह ग्रन्थ अड़तीस हजार श्लोकों का है और इसका मूल संस्कृत में है। इसके रचयिता जैनों के प्रसिद्ध गुरु सालिंग सूरि आचार्य ने मुख्यत: जिस राजा का चरित्र वर्णन करने के लिए इसकी रचना की है उसने ११४३ ई से ११६६ ई तक राज्य किया था।

'ग्रन्थ' शब्द पर टॉड की टिप्पणी इस प्रकार है—

'इस ग्रन्थ का एक संस्करण गुजराती भाषा में है और इसी की संवत् १४१२ (१४१६ ई) में लिखित अनुलिपि उदयपुर राणा के पुस्तकालय से प्राप्त करके सर्वप्रथम मैंने अनुवाद किया था। यह स्पष्ट है कि इसी संस्करण के आधार पर अबुल फजल ने अपने 'गुजरात के पूर्व इतिहास' का ढांचा तैयार किया था और उसमें राजवंशों की तालिका दी थी। बाद में अणहिलवाड़ा के पुस्तकालय में मुझे संस्कृत की मूल पुस्तक भी मिल गई जिसका भी मैंने जैन यति की सहायता से अनुवाद कर डाला था। ये दोनों ही अनुवाद मैंने Royal Asiatic Society को भेंट कर दिये थे।

उपर्युक्त लेख पर गोपाल नारायण बहुरा का मत इस प्रकार है—

ऐसा ज्ञात होता है कि जो संस्कृत मूल टॉड साहब को अणहिलवाड़ा के पुस्तकालय से प्राप्त हुआ था वह जयसिंह सूरि कृत 'कुमारपाल चरित' ही था। 'सालिंग सूरि' ने उसका गुजराती रूपान्तर किया होगा। क्योंकि 'हेमचन्द्र कृत 'कुमारपाल चरित' अथवा 'द्व्याश्रय' के इतने पुराने गुजराती रूपान्तर की सूचना प्राप्त नहीं है। बाद में २०वी शताब्दी में ला 'माना भाई' ने इसका अनुवाद किया था जो टॉड साहब के बाद का है।

(उमरावसिंह मगन के नाम श्री गोपाल नारायण बहुरा का पत्र दि २९–१०–६०)।

स्वीकार किया है। इसी नामावली के आधार पर हम एक के पश्चात् एक राजकुल का तीव्र गति से वर्णन करेंगे, यद्यपि प्रत्येक राजकुल से सम्बन्धित मूल सामग्री पुस्तक के कई पृष्ठ भर सकती है।

प्रथम नामावली के प्रारम्भ में 'माता शाकम्भरी देवी' अथवा राजकुलों की रक्षक देवी की स्तुति की गई है।

प्रत्येक राजकुल (शाखा) का अपना गोत्रोच्चार [४] होता है, जो उस राजकुल के वंश का संक्षिप्त वर्णन है और जिसमें उस कुल की प्रमुख विशेषताएँ धार्मिक विश्वास और प्राचीन निवास-स्थान आदि दिया होता है। प्रत्येक राजपूत के लिए इसको मौखिक याद रखना आवश्यक है यद्यपि अब कुल-पुरोहित अथवा राजवंशज तक ही यह बात सीमित रह गई है। वर्तमानावस्था के इन दिनों में अपने गोत्रोच्चार को बोलने के लिये कहने पर अधिकांश सरदार लोग आश्चर्य में पड़ जायेंगे और अपने भाट की ओर संकेत कर देंगे जो आपसी सम्बन्धों की कसौटी तथा परस्पर विवाह आदि की दृष्टि से धर्म-विधि का प्रदर्शक है। जब उस गोत्र में विधि द्वारा निषेध सम्बन्ध हो जाता है, तो गोत्रोच्चार द्वारा ही उस भूल को सुधारा जाता है, यद्यपि वहाँ (इस सम्बन्ध का) त्याग ही आवश्यक था।[५]

अधिकांश राजकुल अनेक शाखाओं [६] में विभाजित हैं ये वंश-शाखायें फिर अनेकानेक गोत्रों [७] में बंट गई

---

४ इसके एक या दो नमूने उचित स्थान पर दिये जायेंगे।

५ बूंदी के एक राजा ने 'मालण' (५) जाति जिसका नाम अब अज्ञात है की एक राजकुमारी से विवाह किया था। किन्तु एक भाट के गोत्रोच्चार करने पर यह ज्ञात हुआ कि यह जाति भी आठवीं शताब्दी पूर्व चौहान वंश की एक शाखा थी जिस वंश के बूंदी के हाड़ा हैं। इसका परिणाम यह हुआ कि बड़े खेद के साथ इस स्त्री का परित्याग और प्रायश्चित करना पड़ा। इसमें और एक स्त्री के अनेक पति करने की अपवित्र प्रथा में कितना अन्तर है जिसका पाण्डवों सीथियनों वर्तमान काल के सिरमौर–निवासियों तथा सीजर (६) कालीन ब्रिटेन-निवासियों में प्रचलित होने का उल्लेख मिलता है। इस द्वीप के निवासियों का वर्णन करते समय यथार्थ कहने वाला यह लेखक लिखता है "दस-दस बारह-बारह पुरुष साझे में पत्नियां रखते थे मुख्यतः भाई मिल कर अथवा माता पिता तथा सन्तान मिल कर ऐसा कर्म करते थे। पहली बार जो जा जिससे विवाह होता था सन्तान उसी की समझी जाती थी।" इस वर्णन में बहुपति और बहुपत्नियां रखने की प्रथा का एक अद्भुत सम्मिश्रण है।

६ 'अपार शाख' (७) जिसका अर्थ 'अनन्त शाखा' बनता है, गुहिलोतों की एक प्राचीन प्रशस्ति में खुदा हुआ है।

७ गोत्र अथवा खाँप का अर्थ अखाड़ा है इसकी उपशाखाओं के अन्त में 'ओत' 'आवत' 'सोत' आदि चिन्ह-सूचक प्रत्यय रहते हैं इनसे केवल उच्चारण की सुविधा देखी जाती है, जैसे सक्तावत–'शक्ता की सन्तान'; कर्मसोत–'कर्मा के'; मेरावत या मेरोत पर्वत निवासी 'पर्वत की सन्तान' (८)। इसी भांति यूनानी शब्द मेना से मैनोत निकला है, जिसका अर्थ यूनान से निकली प्राचीन मस्मेनियम (९) भाषा में एक पर्वत है।

---

(५) मालण अथवा मालहण–चौहानों की एक शाखा है। टॉड ने आगे चौहानों की शाखाओं में इसका नाम नहीं दिया है। किन्तु मुहता नैणसी की ख्यात आदि में इस शाखा का नाम मिलता है।

(६) ज्यूलियस सीजर रोम का सुविख्यात सेना नायक जिसने फ्रांस और इंगलैण्ड पर चढ़ाई की थी। इसका जन्म १ ई पू में हुआ था। इसकी मृत्यु ४४ ई पू रोम में हुई थी।

(७) राणा कुम्भा द्वारा निर्मित चित्तौड़ के कीर्ति-स्तम्भ के पास समाधीश्वर मन्दिर के परकोटे में एक प्राचीन द्वार पर यह प्रशस्ति लगी हुई है। इसी में 'अपार शाख' खुदा हुआ है। यह प्रशस्ति मेवाड़ के रावल समरसिंह (वि सं १३३१) के समय की है। (ओझा टॉ० रा हि प्र पृ २ १ टि सं ५)।

(८) 'मेरावत' या 'मेरोत' का शुद्ध अर्थ मेरा नामक पुरुष के वंशज होना चाहिये न कि 'पर्वत की सन्तान'। मेर अर्थात् पर्वत के निवासियों को 'मेरावत' या 'मेरोत' नहीं कहते हैं।

(९) अम्बासिया-यूनान से पश्चिम एवं एटोल्माकिया से दक्षिण में है।

है जिनमें से सबसे महत्वपूर्ण गोत्रों का ही हम वर्णन करेंगे।

कुछ राज-कुलों का शाखा-विभाजन कभी नहीं हुआ। ऐसे कुलों को इकका अथवा अकेला कहा जाता है। लगभग एक तिहाई राज-कुल ऐसे हैं।

चौरासी वणिक जातियों की एक नामावली भी दी जायेगी जिनकी उत्पत्ति राजपूत वंश में हुई थी। इनमें कुछ कुलों की स्मृति सुरक्षित रह गई है, अन्यथा वह नष्ट हो जाती। आदिवासी कृषक और चरवाहा जातियों की नामावलियाँ भी विषय-पूर्ति की दृष्टि से जोड़ दी गई हैं।

प्रारम्भिक काल में केवल दो कुल थे, सूर्य और चन्द्र; इनमें चार अग्नि कुल * और मिल गये इस भाँति छः कुल हो गये। अन्य वंश सूर्य और चन्द्र की शाखाओं से उत्पन्न कुल हैं, अथवा इण्डोसीथियन उत्पत्ति की वे शाखायें हैं, जिन्होंने मुस्लिम काल प्रारम्भ होने से पूर्व राजस्थान के छत्तीस राज कुलों में स्थान प्राप्त कर लिया (यद्यपि यह निम्न श्रेणी का ही था)। काल की दृष्टि से यदि हम प्रथम को भारत की केल्टिक और दूसरी को गोथिक जाति मान लें तो कुछ अनुचित न होगा। जहाँ तक सूर्य और चन्द्र के सामान्य नामों का सम्बन्ध है, मुझे कुछ अधिक कहने की आवश्यकता नहीं है।

ग्रहिलोत या गुहिलोत (१२)—छत्तीस कुलों के भूषण चित्तौड़ के स्वामी सूर्य-वंशी राणा के राजवंश की वंशावली[१]।

इस कुल के राजा सर्वमान्य एवं जनश्रुत्यानुसार सूर्य-वंशी राजा राम की सन्तान माने जाते हैं। यह वंश-शाखा राम से सुमित्र तक पहुँचती है, जो पुराणों में इस वंशावली में अन्तिम नाम है।

चूँकि इस कुल की उत्पत्ति और उसका क्रमिक इतिहास हम विस्तृत रूप से 'मेवाड़ के इतिहास' में देंगे, अतः यहाँ केवल इस कुल के पत्रिक नामा के परिवर्तनों तथा इन के आधिपत्य में रहे प्रदेशों का वर्णन करेंगे। हमारा वर्णन

---

* अग्नि [प्रकाश—अग्नि ?] से आग, बलकल (१) का पुत्र जैसे वर्तमान इन्दु (चन्द्र) वंश अपने पूर्वज सोल (सूर्य) के मौन परिवर्तन (१०) के कारण दूसरे वंश सुमा या सुमत (चन्द्र) में चला गया।

१ 'वंशावली—सूर्य-वंशी राजकुली रासा चित्तौड़ का धणी छत्तीस कुल सिरणगार'—राणा के पुस्तकालय की 'खुमाण रासो' (१३) नामक हस्तलिखित पुस्तक से।

---

(१) रोमन लागा का पौराणिक अग्निदेवता जो ज्यूपीटर तथा जूनों का पुत्र माना जाता है।

(११) यहाँ टॉड ने वैवस्वत मनु के पुत्र 'इल' का मौन परिवर्तन द्वारा इला' बनने सम्बन्धी पौराणिक घटना की ओर संकेत किया है। इला और बुध की सन्तानों से ही चन्द्रवंश चला' ऐसा मानते हैं।

(१२) (क) टॉड ने अपनी नामावली (पृ १२२ पर) में इसे तीसरे नं पर लिखा है।

(ख) चन्द बरदाई ने इसे गोहिल (पृ० १२१ पर मूल छप्पय देखें) टॉड के गुरु ने गुहिलोत मूहता नैणसी ने गेहलोत और बांकीदास ने गहलोत लिखा है (देखें पृ० १३१ की तालिका)।

(ग) टॉड ने इस वंश की २४ शाखाओं में इसका नाम नहीं दिया है जब कि इनके गुरु मूहता नैणसी तथा बांकीदास ने नाम दिया है (देखें शाखाओं की तालिका पृ० १३१ पर)।

(१३) देखें टॉड की भूमिका पृ० ७ पर हमारी टिप्पणी सं १४। ओझाजी के मतानुसार इसमें खुमाण सम्बन्धी वृत्तान्त अधिकतर कल्पित है।

उस काल से प्रारम्भ होगा जब कि दूसरी शताब्दी (१४) में राजा कनकसेन ने अपनी जन्म भूमि कोसल को छोड़कर (१४) सौराष्ट्र में सूर्य-वंशी राज्य स्थापित किया।

विराट (१५) भूमि में जहां कि पाण्डवों ने अपना वनवास-काल व्यतीत किया था इक्ष्वाकु के उस वंशधर ने अपनी वंश-शाखा स्थापित की इसकी कुछ पीढ़िया के पश्चात् उसके वंशधर राजा विजय ने विजयपुर ११ का निर्माण किया।

यद्यपि वे वल्लभी के संस्थापक नहीं थे तथापि वे वल्लभी देश के सम्राट (१६) अवश्य हुए, जिस वल्लभी का अपना एक वल्लभी संवत् था जो वि सं ३७५ ११ में प्रारम्भ हुआ था। इस प्रकार वे बालक राय (१६) अथवा वल्लभीपति बने। 'बालकराय' उपाधि को इस काल से लगभग एक हजार वर्ष तक उसके क्रमागत राज-वंश धारण करते रहे इस तथ्य को प्रमाणित इतिहास एवं शिलालेखों से पूर्णतया सिद्ध किया जा सकता है।

गजनी अथवा गयनी (२) उनकी दूसरी राजधानी थी जहां उसका अन्तिम राजा शिलादित्य (जो मारा

१ यह शब्द 'विराट' के साथ मिला कर बोला जाता है—"विजयपुर विराटगढ़।"

११ ई स ३१९; इस संवत् वाले शिलालेख को तथा वल्लभी नगर और इसके संवत् से सम्बन्धित अन्य शिलालेखों को मैंने सौराष्ट्र में पाया तथा इस प्राचीन राजधानी के स्थान का पता लगाया। यह उसी स्थान पर है जहां कि टोलमी (१७) ने अपने भारत के भूगोल में बाइजेण्टियम (१८) को दिखाया है। ये शिलालेख रायल एसियाटिक सोसायटी के (Transactions) ट्रान्सेक्शन में दिये जायेंगे।

(१४) यहाँ पर कोसल छोड़ कर' लिखा है वंशावृक्ष सं २ (परिशिष्ट) में उसे 'सौराष्ट्र विजेता लिखा है किन्तु इसका कोई विवरण नहीं मिलता। ईसा की दूसरी शताब्दी से चौथी शताब्दी तक शक क्षत्रपों के शासन का प्रमाण अवश्य मिलता।

(१५) यहां टॉड का तात्पर्य कच्छ के वागड़ नामक स्थान के गेड़ी (धून पत्री) नामक स्थान से दिखता है क्योंकि यह भी 'विराट नगर' कहलाता है। बिहार प्रान्त मे दीनाजपुर और रंगपुर ग्राम जयपुर डिविजन में बराठ और भावाड़ में हिंगलाज से सब भी 'विराट नगर' कहलाते हैं [देखें रासमाला (हिन्दी) प्रथम भाग-पूर्वार्द्ध पृ २१]।

(१६) मेवाड़ के गुहलोत राजवंश के पुरखों का वल्लभी म कोई सम्बन्ध नहीं रहा। मेवाड़ में गुहिल वंश का संस्थापक गुहिल अथवा गुहदत्त गुजरात के आनन्दपुर नामक नगर से आया था।

(१७) मिश्र देश क सिकन्दरिया नामक नगर का निवासी था। इसने सिकन्दरिया में बैठे-बैठे ही यात्रियों और नाविका स सुनी हुई बातो तथा पहले की पुस्तकों के आधार पर ईसा की दूसरी शताब्दी में भूगोल का ग्रन्थ लिखा था।

(१) टॉड ने बाइजेण्टियम' का 'वल्लभी' होना अनुमान किया है किन्तु वस्तुत' यह दक्षिण का वैजयन्ती नगर होना चाहिये।

(१६) यह उपाधि भी टॉड की कल्पना मात्र ही है।

(२) "आधुनिक गजनी के पास बसाया था। किन्तु राजस्थानी होना सही नहीं मालूम होता है। वल्लभी क नाश के साथ ही यह भी नष्ट हो गया। [रासमाला (हिन्दी) प्रथम भाग पूर्वार्द्ध—पृ २१]

गया) और उसका कुटुम्ब छठी शताब्दी में पार्थियन आक्रमणकारियों (२१) द्वारा निष्कासित कर दिया गया।

इस मरणोत्तर-जात पुत्र ग्रहादित्य ने ईडर का छोटा सा राज्य प्राप्त किया तब से सूर्यवंशी राम के कुल का पैतृक नाम भी बदल कर इसी के नाम पर ग्रहिलोत (२२) का अपभ्रंश रूप गुहिलोत पड़ गया।

विपत्तियों में ईडर से आहाड़ [12] आने के कारण गुहिलोत बदल कर अहाड़िया (२४) हो गया। इस वंश का यह नाम बारहवीं शताब्दी में उस समय तक प्रचलित रहा जब कि ज्येष्ठ भ्राता राहप (२५) ने चित्तौड़ के सिंहासन से अपना अधिकार त्याग किया। जिसको उन्होंने मोरी [13] (२६) वंश से लड़ कर अपने आधीन [14] किया था। राहप के वंशधर डूंगरपुर में जा रहे, आज भी डूंगरपुर का राजवंश अहाड़िया कहलाता है। कनिष्ठ भाई माहप ने अपना राज्य सीसोदा में स्थापित किया जहाँ से 'अहाड़िया' और 'गुहिलोत' दोनों नाम समाप्त होकर इस वंश का नाम 'सीसोदिया' पड़ गया।

---

१२ आनन्दपुर (२३) आहड़ या आनन्द का नगर आहड़। घटनाओं के परिवर्तन स्वरूप इस वंश को अपनी अन्तिम राजधानी उदयपुर, आहड़ के निकट ही स्थापित करनी पड़ी।

१३ परमार (२६) वंश का राजा। १४ आठवीं शताब्दी के मध्य में।

---

(२१) वल्लभी का नाश छठी शताब्दी में न होकर आठवीं में हुआ था। यह आक्रमण पार्थियों का न होकर अरबों का था। वल्लभी के अन्तिम राजा शिलादित्य छठे का एक दान पत्र वल्लभी (गुप्त) संवत् ४४७ (ई ७६६) का मिला है अत इसके पश्चात् ही नाश सम्भव है। विस्तृत विवरण हेतु देखें—रासमाला (हिन्दी) प्रथम भाग पूर्वार्द्ध पृ २१ से ३३।

(२२) देखें इसी अध्याय में पृ १२६ की टिप्पणी सं० १२ तथा आगे पृ० ११० पर वंश शाखाओं की तालिका।

(२३) प्राचीन पुस्तकों और शिलालेखों में आहड़ के वास्ते आघाटपुर लिखा मिलता है। एक लेख में आटपुर भी लिखा है जो आघाटपुर का अपभ्रंश ज्ञात होता है। गुजरात में इस नाम के दो नगर हैं। एक तो आनन्द (अंकलाव) दूसरा बड़नगर जिसे भी आनन्दपुर कहते हैं।

(२४) गुहिलोत वंश ईडर के वनों से सीधा आहड़ आकर नहीं बसा इसके पूर्व उनकी राजधानी नागदा थी। ९५१ ई के आसपास अल्लट ने आहड़ में रहना प्रारम्भ किया तब से यह वंश अहाड़िया कहलाया होगा।

(२५) राहप न तो बड़ा भाई था और न चित्तौड़ की गद्दी का अपना अधिकार छोड़कर डूंगरपुर में राज्य स्थापित किया था। घटनाचक्र का वर्णन निम्न है—

राजा विक्रमसिंह के उत्तराधिकारी रणसिंह से जिसको करणसिंह भी कहते थे दो शाखें फटी जिनमें बड़ी तो रावल और छोटी राणा के नाम से प्रसिद्ध हुई रावल शाखा में चित्तौड़ का अन्तिम राजा रत्नसिंह हुआ जो अलाउद्दीन के साथ की लड़ाई में विक्रम सम्वत् १३६ (ई० १३ ३) में मारा गया। चित्तौड़ पर मुसलमानों का अधिकार हो गया। रत्नसिंह के वंशजों ने डूंगरपुर का राज्य स्थापित किया और वहीं रहे। राणा नाम की दूसरी शाखा का प्रथम पुरुष राहप हुआ जिसका वंशज लक्ष्मणसिंह उमाउद्दीन के आक्रमण में रावल रत्नसिंह के पक्ष में लड़कर अपने सात पुत्रों सहित काम आया। इसके पौत्र हम्मीर ने चित्तौड़ का किला लेकर फिर अपने वंश का राज्य स्थापित किया तब से राणा शाखावाले मेवाड़ के स्वामी हुए। (ओ टा० रा हि प्र टि० सं० २१ पृ० सं० २ ४)

(२६) मोरी (मौर्य) और परमार दोनों को टॉड ने एक ही वंश माना है किन्तु इसका कोई प्रमाण नहीं मिलता अत दोनों वंश भिन्न-भिन्न होने चाहिये।

सीसोदिया अब इस राजवंश का सामान्य नाम है, किन्तु यह नाम कुल की एक शाखा का नाम होने से, यह वंश 'गुहिलोत कुल' नाम से ही पुकारा जाता है।

गुहिलोत कुल २४ शाखाओं में विभाजित है, जिनमें से कुछ शाखायें अब भी विद्यमान हैं।

टॉड के मूल ग्रन्थ के अनुसार		टॉड के गुरु से प्राप्त (१)	मुहता नैणसी की ख्यात (२)	बांकीदास की ख्यात (३)
१ महाड़िया	डूंगरपुर में	महाडा	महाड़ा	माहुडा
२ मांगलिया	मरुभूमि में	मांगलिया	मांगलिक	मांगलिया
३ सीसोदिया	मेवाड़ में	सीसोदिया	सीसोदिया	सीसोदिया
४ पीपाड़ा	मारवाड़ में	पीपड़ा	पीपड़ा	पापडा
५ केलाम		केलवा	केलवा	केलवा
६ महोक	कुछ अभी मेवाड़ में हैं और अधिकतर अज्ञात हैं।			
७ धोरनिया		धोरणा	धोरणिया	धोरणिया
८ गोधा		गोधा	गोधा	गुहिल
९ मगरोपा		मगरोपा	मंगरोपा	मंगरोपा
१ भीमला		भीमला	भीमला	भाथला
११ कैंकोटक				
१२ कोटेचा		कुडेचा		
१३ सोरा				
१४ उहड़				
१५ उसैवा				
१६ निर्रुप				
१७ नादोत्या	इनमें से अधिकतर अज्ञात हैं।	नादोत्या		
१८ नाकोता				
१९ भीजवरा				
२ कुटचरा		कुटेरा		
२१ दसोर		दवासा		
२२ बटेवरा		भटेवरा		
२३ पाहा				
२४ पुरोत				

(१) टॉड के गुरु के यहाँ से निकली थी। को टॉ रा० हि० भ० पृ० २५–२०६ टि स २२।
(२) मुहता नणसी की ख्यात भाग १ पृ० ७७ (नागरी प्रचारणी सभा काशी)।
(३) बांकीदास की ख्यात पृ ८७ (राजस्थान प्राच्य-विद्या प्रतिष्ठान जोधपुर)।

गये कृष्ण के पुत्र पाँच नदियों के प्रदेश [१५] में कुछ काल ठहर कर अन्त में सिन्ध को छोड़कर जाबुलिस्तान प्रस्थान कर गये (१)। वहाँ उन्होंने गजनी बसाई (११) और वे समरकन्द तक के प्रदेशों में फैल गये।

जैसलमेर की ख्यात वहाँ के संस्थापक का यह प्राचीन इतिहास प्रस्तुत करती है, किन्तु इसमें इनके भारत में वापिस लौटने वाले सम्बन्धी कारणों को भ्रम पूर्ण वर्षों [१६] में मिला दिया है। इसलिये यह कहना असम्भव है कि वे भारत में वापस यूनानियों के दबाव के कारण आये जो सिकन्दर के पश्चात इस भू-भाग पर एक शताब्दी तक आधिपत्य बनाये रहे थे अथवा इस्लाम (१२) के बखेड़ों ने उन्हें भारत में धकेल दिया।

सिन्ध से वापस धकेल दिये जाने पर उन्होंने पंजाब पर अधिकार किया और शालिवाहनपुर की स्थापना की। वहाँ से निष्कासित किये जाने पर उन्होंने सतलज और घारा नदी को पार कर, भारतीय मरुभूमि में प्रवेश किया और यहाँ की जोहिया मोहिल तथा लङ्गहा आदि जातियों को निकाल कर उन्होंने क्रमशः तणोत (१३) देरावल और संवत् १२१२ [१७] में (१४) जैसलमेर [१८] स्थापित किये। यह कृष्ण के वंशधर भाटी लोगों की वर्तमान राजधानी है।

भाटी (१५) जाबुलिस्तान से निष्कासित किया गया था। इस घटना के पश्चात् जैसा कि ऐसे अवसरों पर प्रत्येक राजपूत वंश में होता आया था इस वंश का प्राचीन नाम 'यदु' बदल कर भाटी (१५) हो गया। भाटियों ने बारा

---

१५ यह पर्वतीय स्थान जहाँ पर इन्होंने शरण ली थी अब भी 'यदु का डांग' अर्थात् यदु के पर्वत कहलाता है' रेनेल के भूगोल में दिया हुआ 'जोदेस'।

१६ इस घटना का समय ईसा से बहुत पूर्व का बतलाया गया है, जो यूनानियों के लेख से मिलता है किन्तु नाम और व्यवहार मुसलमानों के से हैं।

१७ ११५५ ई (४)।

१८ जैसलमेर से पूर्व लोदरवा पट्टन उनकी राजधानी थी जहाँ से उन्होंने एक प्राचीन जाति को निकाल दिया था। इन प्रदेशों के सम्बन्ध में अभी बहुत अध्ययन की आवश्यकता है।

---

(१) टॉड के इस लेख से यादवों का भारत से जाबुलिस्तान की ओर जाना ज्ञात होता है। दूसरी ओर अन्य आधार यह भी सिद्ध करते हैं कि वे मिश्र से इधर भारत में आये। इन दोनों 'वादों' के मध्य मूल कड़ी 'शोणितपुर' है। प्रथम वाद के अनुसार यह हिमालय प्रदेश में केदारनाथ के निकट और उखीमठ के पास है दूसरे इसे मिश्र (ईजिप्ट) में मानते हैं। जाम्बवती के पुत्र साम्ब का विवाह यहीं कीमत्स की पुत्री रामा से हुआ था। श्रीमद्भागवत के अनुसार 'उषा-अनिरुद्ध' का विवाह यहीं हुआ था।

(११) यहाँ पर इन तीनों में से बड़े गजपति ने अपने नाम पर वि स० ७०८ (ई ६५२) की वैशाख शुक्ला ३ शनिवार, रोहिणी नक्षत्र में गजनी नामक नगर बसाया और नरपति को वहाँ का राजा नियुक्त किया'। रासमाला (हिन्दी) प्रथम भाग पूर्वार्द्ध-पृ ९ ।

(१२) 'खुरासान के राजा ने उनको वहाँ से निकाल दिया'। उपर्युक्त ग्रन्थ से टिप्पणी संख्या २ तथा इस वाक्य से यह स्पष्ट हो जाता है कि यूनानियों के दबाव से ये भारत में वापस नहीं आये।

(१३) 'सम्वत् ७८७ में उन्होंने तणोत का किला बंधवा कर राजधानी कायम की' -रासमाला (हिन्दी) प्रथम भाग-पूर्वार्द्ध पृ ११ की टिप्पणी।

(१४) रासमाला (हिन्दी) प्रथम भाग पूर्वार्द्ध। पृ ११ की टिप्पणी में ११५६ ई में लिखा है टॉड ने विक्रम संवत् जो ऊपर दिया है उसके आधार पर भी यह ठीक है।

(१५) 'गजनी और खुरासान के प्रदेश में 'भूपति' ने अपना राज्य स्थापित किया। उसके वंशज भट्टी अथवा भाटी कहलाये। —उपर्युक्त ग्रन्थ पृ ९ की टिप्पणी।

नदी के समस्त दक्षिण प्रदेशों पर आधिपत्य कर लिया था किन्तु राठौड़ों के आगमन के पश्चात् उनकी शक्ति अत्यन्त सीमित हो गई। मान-चित्र में उनकी वर्तमान सीमायें दिखाई गई हैं, उनके प्राचीन इतिहास का वर्णन आगे विस्तार पूर्वक किया जायेगा।

भाटी जाति के पश्चात् अधिक महत्वपूर्ण जाति जाडेजा (१६) है; जिनका इतिहास भी इसी प्रकार का है। ये भी कृष्ण के ही वंशधर हैं। हरि-कुल के अवशिष्ट लोगों के साथ ये भी स्थानान्तरित हुए थे। इस विश्वास के लिये अत्यन्त दृढ़ प्रमाण मिलते हैं। इनका विस्तार भाटियों के समान नहीं हुआ था, किन्तु ये सिन्धु की घाटी के पश्चिमी तट पर सीविस्तान में मुख्यतः बस गये थे। ये अपने नामों, कुल मर्यादाओं एवं पूर्वजों के चिह्नों की विशेषताओं को सिकन्दर के समय तक सुरक्षित रख सके थे।

जिस सम्बस (१७) पर यूनानियों ने आक्रमण किया था, वह हरि-कुल वंशी ही था। सामनगर (१७) उनकी राजधानी था जिसे यूनानी लेखकों ने मिननगर (१७) लिखा है।

कृष्ण अथवा हरि का अत्यन्त सामान्य विशेषणात्मक नाम 'श्याम' अथवा 'साम' था जो उनके श्याम वर्ण के कारण पड़ा था अतः जाडेजा का यही पैतृक नाम हो गया। सारी जाति साम पुत्र (१८) कहलाई इसीसे उनके राजाओं की उपाधि 'सम्मा' है।

वर्तमान काल के जाडेजा-वंशी (१८) परिस्थितियों वश सिन्ध के मुसलमानों से इतने मिल गये हैं कि वे शुद्ध रक्त वाले होने की मान्यता नहीं रखते। कुछ तो अपनी अज्ञानता के कारण और कुछ अपनी अप्रतिष्ठा को छुपाने के लिये अपनी उत्पत्ति 'साम' अथवा 'सीरिया' से बताते हैं। उनका कहना है कि वे फारस के जमशेद के वंशज हैं। परिणाम

---

(१६) "गजनी शाहर की गद्दी पर जाम नरपत के बाद उसका पुत्र उसके वंश में ६ वां पुरुष सम्मत अथवा साम हुआ। उसके वंशज समा कहलाये जो बाद में जाडेजों के नाम से प्रसिद्ध हुए।"

रासमाला (हिन्दी) प्रथम भाग पूर्वार्द्ध की टिप्पणी पृ० ६२।

(१७) सम्बस के सम्बन्ध में विद्वानों के मत निम्न हैं—सिकन्दर ने जिस साम्बस पर चढ़ाई की थी वह 'सम्मा' जाति का था और उसकी राजधानी सिंडिमन थी। कर्टियस इसको 'साबस' लिखता है। प्रो० विलसन इसे संस्कृत का सिन्धुनाम' बताते हैं। कुछ उसे 'सहास' भी बताते हैं। जनरल कनिंघम का अनुमान है कि 'सिन्धु वन' का सिंडिमन' हो गया। ओझाजी ने 'सिंडिमन शायद सेवान (सिहवान) जो सिन्ध में है के वास्ते हो' ऐसा लिखा है।

(१८) जाडेजों में मुख्य दो शाखाएं हैं 'सम्मा' और सुमरा'। 'सम्मा या समेजा' तो अपने को कृष्ण पुत्र 'साम्ब' का वंशज बताते हैं कुछ इन्हें नूह के पुत्र 'साम' का वंशज बताते हैं कुछ 'साम' को 'सोम' का अपभ्रंश रूप मान कर इन्हें चन्द्र-वंशी कहते हैं।

सिन्ध की पुरानी तवारीख 'तुहफतुल-किराम' में लिखा है कि जाम जूनागढ़ी के पोते और उनड़ के बेटे का नाम 'साम्मा' था उसके एक पुत्र सम्मा (Ibid Part 1 Page 334) के वंशज 'सम्मा' कहलाये। सम्मा के पौत्र व रायधन के पुत्र सम्मा की सन्तान समिजा प्रसिद्ध हुई।

सिन्ध के अन्य पुराने इतिहासों में लिखा है कि सम्मा और सुमरा अपने को हिन्दू कहते हैं परन्तु नाम सिन्धू जैसा रखते हैं।

बाम्बे गैजेटियर जिल्द ५, पृ० ६२ पर लिखा है 'जाडेजों के रीति-रिवाज मुसलमानों से मिलते हैं सन् १८१८ ई० तक वे मुसलमानों का बनाया खाना खाते और मुसलमानों का सा व्यवहार करते थे अब हिन्दुओं की रीति-नीति पर चलने लगे हैं। अब भी जाडेजा के सम्बन्ध प्रतिष्ठित राजपूतों में होते हैं।

स्वरूप 'श्याम' को 'जाम' [१०] (३६) में परिवर्तित कर दिया गया इसी आधार पर जाडेजा-भट्टियों का एक छोटा राज्य 'जाम राज्य' के नाम से पुकारा जाता है।

यद्यपि ये यदु-कुल की सर्वाधिक प्रसिद्ध शाखायें हैं, किन्तु यहाँ कुछ और भी हैं, जो अब तक भी अपने वंश का मूल नाम धारण किये हुए हैं। इनमें चम्बल नदी के तट पर स्थित करौली के छोटे से राज्य का राजा मुख्य है।

ऐसा प्रतीत होता है कि यदु-कुल की यह शाखा अपने पूर्वजों के निवासस्थान सूरसेनी [९] की प्राचीन सीमाओं से अधिक दूर नहीं गई। उनके अधिकार में बयाना का प्रसिद्ध स्थान था वहाँ से निष्कासित कर दिये जाने के पश्चात् उन्होंने चम्बल के पश्चिम में करौली और पूरब में सबलगढ़ स्थापित किये। सबलगढ़ के अन्तर्गत का भू भाग यदुवाटी कहलाता है, जिसको सिन्धिया ने इस वंश से छीन लिया है। 'श्री मथुरा' करौली राज्य की एक-स्वतंत्र जागीर [११] है, जो इस राजवंश की छोटी शाखा के आधीन है।

यदु जिन्हें बोलचाल की भाषा में 'जादों' भी कहते हैं, भारत भर में बिखरे हुए हैं। मराठों के कई महत्वपूर्ण घराने इसी जाति के हैं।

यदु-कुल की आठ शाखायें हैं:—

१	यदु	प्रमुख करौली का राजवंश
२	भाटी	प्रमुख जैसलमेर का राजवंश
३	जाडेजा	प्रमुख कच्छ भुज का राजवंश
४	समेचा	सिन्ध के मुसलमान
५	मुडेचा	अज्ञात
६	विदमन	अज्ञात
७	बद्दा	अज्ञात
८	सोहा	अज्ञात

तुवर—(४) इस वंश को यद्यपि यदु-कुल की एक उप शाखा माना गया है, किन्तु अच्छे-अच्छे वंशज भी इसको छत्तीस राजकुलों में अलग स्थान देते हैं। इसकी प्रसिद्धि निश्चित ही छत्तीस राजकुलों में स्थान प्राप्त करने योग्य है।

प्रत्येक राजकुल के सम्बन्ध में उसका मूल वंश प्रायः प्राप्त हो जाता है किन्तु तुवर के लिये कोई मूल वंश

---

१० इसके लिये उनके पास अधिक उत्तम मूल शब्द जाम्बवती है, वे स्वयं जिसकी सन्तान होना मानते हैं, जो 'हरि' की आठ पत्नियों में से एक थी।

९ मथुरा के चारों ओर तीस मील का प्रदेश ब्रज या सूरसेनी कहलाता है।

११ यहाँ के जागीरदार राव मनोहरसिंह को मैं भली भाँति जानता हूँ और कह सकता हूँ कि वह मेरा मित्र था। हमारे मध्य बरसों पत्र-व्यवहार होता रहा। उसने मेरे लिये 'महाभारत' की बहुमूल्य प्रति की नकल करवाई थी।

---

(३६) 'नरपति ना यहाँ का 'जाम' नियुक्त किया'। रासमाला (हिन्दी) प्रथम भाग-पूर्वार्द्ध पृ ६ ।

(४) टॉड ने छत्तीस राजवंशों की नामावली पृ १२२ में इसे ५ वाँ स्थान दिया है। यहाँ नौंवा है। चन्द बरदाई वाली सारणी (सं २) में इसका न देना आश्चर्य उत्पन्न करता है क्योंकि यही भाग बरदाई के आधार पर ही उन्हें पाण्डवों से निकला बताया है। ऐसा ज्ञात होता है कि टॉड 'सन्दर्भ' को ठीक रूप में न समझ पाने के कारण बरदाई के दोहे का ठीक अर्थ कुलों के आधार पर न बैठा सका होगा। सम्भवत लेखक इस कुल का नाम 'तोमर' लिखते हैं। कई उसे तँवर भी लिखते हैं।

नहीं मिलता। अतः हमें बरदाई के उस कथन (४०) को स्वीकार कर सन्तोष करना चाहिये जिसमें उसने इस वंश का निकास पाण्डवों से बताया है।

यदि यह वंश अपनी महानता के लिये केवल इस बात का ही गर्व करे कि भारतवर्ष का चक्रवर्ती सम्राट् 'विक्रमादित्य' इसी वंश (४१) में उत्पन्न हुआ था, जिसका विक्रम संवत् ईसा से ५६ वर्ष पूर्व प्रारम्भ हुआ था जो आज भी हिन्दू काल-गणना का महान प्रकाश-स्तम्भ है, तो यह उसकी उच्चता को प्रगट करने के लिए पर्याप्त होगा। किन्तु यह वंश कुछ अन्य बातों से भी उच्चता का अधिकारी है। प्राचीन नगर इन्द्रप्रस्थ जिसको युधिष्ठिर ने बसाया था और जो अब देहली में परिवर्तित हो गया है, जनश्रुति के अनुसार लगभग आठ शताब्दियों तक निर्जन पड़ा रहा। तुवर वंशी राजा अनङ्गपाल ने वि० सं० ८४८ (ई० ७९२) (४२) में पुनः उद्धार कर इसे बसाया। इस राजवंश में उसके पश्चात् बीस राजा हुए, अन्तिम राजा इस राजवंश के संस्थापक का ही नामधारी अनङ्गपाल था जब कि उसने संवत् १२२ (सन् ११६४ ई०) में राजपूतों के सैलिक विधान (४३) के विपरीत (पुत्रविहीन होने के कारण) अपने दौहित्र (४४) पृथ्वीराज चौहान को राज्य-गद्दी देकर स्वयं राजपाट छोड़कर वन में चला गया।

अब तुवर-वंश ¹¹ की प्रसिद्धि उसकी प्राचीन प्रतिष्ठा के कारण ही है, क्योंकि स्वयं को पाण्डवों की सन्तान बताने वाले और विक्रम पर गर्व करने वाले हिन्दुस्तानी राजाओं के इस अन्तिम राजवंश के आधीन आज एक भी स्वतन्त्र राज्य नहीं है।

यदि हम इस विश्वास को प्रमाणित कर सकें कि अन्तिम राजा अनङ्गपाल तुवर इन्द्रप्रस्थ के संस्थापक का ही वंशज था और युधिष्ठिर की सन्तान २२५० वर्ष (४५) की अवधि के पश्चात् पुनः उसी राज्य सिंहासन पर आसीन हुई जिसे उसने बसाया था, तो यह बात विश्व के इतिहास में अनुपम घटना सिद्ध होगी सम्पूर्ण जनमत इस बात को मानता है। यह तथ्य ऐतिहासिक दृष्टि से उतना ही प्रमाणित किया जा चुका है, जितने कि इतने प्राचीन-काल के अन्य तथ्य। तुवर से भी कम प्राचीन यूरोप का कोई राजवंश अथवा कुल इतने दृढ़ प्रमाण प्रस्तुत नहीं कर सका जितने कि तुवर वंश॥

११ कई मराठा सरदार स्वयं को तुवर वंश के वंशज बताते हैं जैसे कि रामराव फाल्किया, जो सिन्धिया के राज्य में अश्वारोही सेना का बड़ा और मराठा सरदार है।

(४१) देखें पहिले– अध्याय पाँचवाँ पृ० सं० ७७ टिप्पणी सं० २६।

(४२) देहली के बसाये जाने के समय के सम्बन्ध में मतभेद है। फरिश्ता हि० सन् ३०७ (वि० सं० ९७७–ई० ९२०) में तथा अबुलफजल संवत् ४२९ में इसका बसाया जाना मानते हैं। कुतुबमीनार के पास लोह स्तम्भ पर खुदा हुआ है– 'सम्वत् दिल्ली ११०९ अनंगपाल बही' अतः सम्भव है कि अनङ्गपाल (द्वितीय) ने वि० सं० ११०९ में दिल्ली बसाई हो।

(४३) रोम का एक प्राचीन कानून जिसके अनुसार स्त्री जाति किसी प्रकार भी उत्तराधिकार में जागीर प्राप्त नहीं कर सकती थी। राजपूतों में इस कानून से टॉड का तात्पर्य यही है कि पुत्री की सन्तान किसी भी राज्य की स्वामी नहीं हो सकती।

(४४) यह 'पृथ्वीराज रासो' के आधार पर है। 'पृथ्वीराज विजय काव्य' के अनुसार सोमेश्वर का विवाह चेदी देश के हैहय (कलचुरि) वंशी राजा की पुत्री कर्पूर देवी से हुआ था। पृथ्वीराज इसी कर्पूर देवी का पुत्र था। यहाँ एक प्रश्न यह भी विचारणीय है कि यदि पृथ्वीराज गोद गया तो उसका वंश 'चौहान' न रह कर 'तँवर' होना क्योंकि गोद जाने वाला उसी वंश का हो जाता है जिसमें वह गोद जाता है।

(४५) यहाँ युधिष्ठिर से अनङ्गपाल तक का समय २२५० वर्ष लिया है किन्तु यह ठीक नहीं है। पाँचवे अध्याय में इस पर सविस्तार विचार किया जा चुका है।

गुजरों के प्राचीन जो प्रदेश अब तक बचे हैं उनमें यमुना के संगम की ओर दाहिने तट पर बसा हुआ गुजरगढ़ है। जयपुर राज्य में स्थित 'पाटण' गुजरघाटी की छोटी जागीर है, जिसका सरदार स्वयं को इन्द्रप्रस्थ के प्राचीन राजाओं का वंशधर मानता है।

राठौड़ (४६) –इस सुप्रसिद्ध जाति की उत्पत्ति के सम्बन्ध में संशयात्मक स्थिति चली आ रही है। राठौड़ों के वंशज उनको राम के द्वितीय पुत्र कुश की सन्तान मानते हैं, अतएव वे सूर्य-वंशी हुये। किन्तु इस जाति के भाट उनकी इस प्रतिष्ठा को स्वीकार नहीं करते यद्यपि वे उनको कुश का वंशधर मानते हैं, तथापि उन्हें एक दैत्य [टिटन] की कन्या से उत्पन्न सूर्य-वंशी कश्यप की सन्तान बताते हैं, तदनुसार हिरण्यकश्यप का वंश दैत्य से उत्पन्न होने के कारण कलुषित माना गया।

यदि यह सिद्ध किया जा सके कि वे चन्द्रवंशी कुशनाभ (४७) के वंशधर और अजमीढ़ की सन्तानें (४८) हैं तो यह एक अपूर्व बात होगी। कुशनाभ के वंशजों ने ही कन्नौज बसाया था (४९)। वास्तव में कुछ वंशावली-लेखक राठौड़ों को कुशिक वंश (५०) का मानते भी हैं।

राठौड़ों का प्राचीन निवासस्थान गाधिपुर अथवा कन्नौज (४९) है, जहाँ पर वे पाँचवीं शताब्दी में शासन करते दिखाई (४९) देते हैं। इस काल से पूर्व की अपनी वंश-शाखा को यद्यपि वे कौशल अथवा अयोध्या के राजाओं से निकली हुई मानते हैं किन्तु स्पष्ट प्रमाणों के अभाव में यह मान्यता केवल अधिकारपूर्वक कथन से ही है।

पाँचवीं शताब्दी से इनका इतिहास युग-युगान्तर के अन्धकार से बाहर आ जाता है, जिसमें कि उनका पूर्व काल ढका हुआ था। तातारियों द्वारा भारत विजयकाल के प्रारम्भ में हम इन्हें दिल्ली के तुवर और चौहान राजाओं तथा अनहिलवाड़ा के बलिकरायों (५१) से युद्ध करते देखते हैं। यह बात भारत के राजाओं में उनकी महत्वपूर्ण स्थिति की सूचक है।

---

(४६) (क) टॉड ने नामावली में इसे ६ठा न० दिया है यहाँ पर चौथा। नामावली की तालिका संख्या ३, एवं ४ में यह नाम नहीं है। देखें पहिले पृ० १२०।

(ख) संस्कृत शिलालेखों ताम्रपत्रों और पुस्तकों में बहुधा इन्हें 'राष्ट्रकूट' लिखा है। कहीं-कहीं 'रट्ट' या 'राष्ट्रौड़' भी है। राठौर अथवा राठौड़ राष्ट्रकूट का प्राकृत रूप है— (राष्ट्रकूट-राठ+ऊट-राठौड़) वर्धा ताम्रपत्र के अनुसार चन्द्रवंश की सात्यकि शाखा में 'राष्ट्रकूट' उत्पन्न हुए रट्टा नामक राजा के पुत्र का नाम 'राष्ट्रकूट' था अतः इसका वंश 'राष्ट्रकूट' कहलाया। श्री चिन्तामणि विनायक वैद्य के अनुसार यह नाम न होकर एक सरकारी पद था। इस वंश का प्रवर्तक राष्ट्रकूट (-प्रान्तीय शासक) था।

(४७) विश्वामित्र के दादा का भाई (श्रीमद्भागवत नवम स्कन्ध पन्द्रहवां अध्याय)।

(४८) 'अजमीढ़ के कण्व और कण्व के मेधातिथि नामक पुत्र हुआ जिससे काण्वायन ब्राह्मण उत्पन्न हुए। (श्री विष्णुपुराण १९वाँ अध्याय श्लोक २६-३२)। दूसरे पुत्र का वंश-वर्णन भी इसी अध्याय में श्लोक ४७ तक है। अतः टिप्पणी संख्या ४७ ४८ से स्पष्ट है कि यह हो ही नहीं सकता।

(४९) देखें अध्याय ४ पृ ९९ की हमारी टिप्पणी संख्या १९ एवं २१ [क]।

(५०) ये वंशावली लेखक इन्हें राम के पुत्र 'कुश' का वंशधर मानते हैं। यहाँ टॉड ने विश्वामित्र के पूर्वजों के 'कौशिक वंश' का राम के पुत्र 'कुश' के वंश परम्परा से मिलाने की गड़बड़ की है।

(५१) इस समय से पूर्व तथा पश्चात् गुजरात (अणहिलवाड़ा) पर सोलंकियों का अधिकार था किन्तु उनकी यह उपाधि नहीं थी और न उन्होंने इस नाम का कहीं प्रयोग किया है।

भारतवर्ष में अपना प्रभुत्व स्थापित करने के लिये किये गये इन युद्धों में वे सब नष्ट हो गये। आन्तरिक कलह से शक्तिहीन होकर दिल्ली में चौहानों का नाश हो गया। पृथ्वीराज की मृत्यु से उत्तर-पश्चिमी सीमा की स्थिति संकट-पूर्ण हो गई। कन्नौज की भी यही दशा हुई वहाँ के अन्तिम राजा जयचन्द ने गंगा में मृत्यु प्राप्त की और उसके पुत्र (५२) ने मरुस्थली अर्थात् 'मृत्यु के स्थल' में शरण ग्रहण की।

सियाजी ही वह पुत्र था जिसने मंडोर व परिहारों के ध्वंसावशेषों पर मारवाड़ में राठौड़ राजवंश स्थापित किया। यहाँ वे अपना प्राचीन युद्ध-कौशल ले कर आये थे। कोई ऐसा उत्कृष्ट वीर नहीं है जिसकी टक्कर का सियाजी के सन्तानों में न हुआ हो। मुगल सम्राटों ने अपनी आधी विजयें इन्हीं 'एक लाख राठौड़ी तलवारों' के बल पर प्राप्त की थी क्योंकि ५ ० बन्धु-बान्धव तो एक मात्र सियाजी के रक्त के ही एकत्रित हो जाते थे। अभी हम राठौड़ों के सम्बन्ध में इतना ही कहेंगे।

राठौड़ों की २४ शाखायें (५३) —धांधुल मदैल चचिकत वृहडिया जोलरा बदूरा सालिका रामदेवा कबरिया हुद्र डिमा मालावत मुगद, कटेचा मुहोली गोगादेवा महेचा जयसिंहा मूरसिया जोबसिया, जोरा आदि आदि। राठौड़ों का गोत्रोचार-—गौतम गोत्र [२३] (५४) माध्यन्दिनी शाखा शुक्राचार्य गुरु गार्हपत्य अग्नि [२४] (५५) पङ्खिनी देवी।

२३ इससे मैं इसी परिणाम पर पहुंचा हूँ कि राठोड़ों को एक ऐसी जाति (सम्भवतः शक) कहूँ जो बुद्ध धर्म मानने वाली थी जिसका अन्तिम आचार्य गौतम था, जो अन्तिम बुद्ध महावीर, का संवत् ४७० (ई ५११) में शिष्य था।

२४ गृहार्थ—आग द्वारा बना मिट्टी का रूप (अग्नि)।

(५२) कन्नौज के अन्तिम राजा जयचन्द के पुत्र का नाम मुहणा नैणसीकी ख्यात [मा० प्र० स० स०२, पृ ४१] में बरदाई सेन मिलता है तथा बांकीदास की ख्यात [प्रा वि प्र पृ० २] में बरदाई सेन ही मिलता है। किन्तु ताम्रपट्रों में हरिश्चन्द्र मिलता है। टॉड ने यहाँ तो 'सिया' को जयचन्द का पुत्र लिखा है किन्तु दूसरे स्थल पर उसे जयचन्द का पौत्र बताया है।

(५३) बांकीदास की ख्यात [प्रा० वि० प्र] में पृष्ठ २ पर ६१ खापें दी हुई हैं किन्तु सम्पादक इनमें से कईनामों को अशुद्ध मानते हैं। मुहणा नणसी की ख्यात [भाग २,पृ ४७] में राजा धूहमार म जो १३ शाखायें चली उनका परिचय दिया हुआ है। नामों का सब में अन्तर अवश्य है।

(५४) टॉड का 'गौतम' गोत्र के आधार पर ऐसा लिखना उचित नहीं जँचता क्योंकि 'क्षत्रियों का वही गोत्र होता है जो उनके ब्राह्मण पुरोहित का होता है'। यह निम्न आधारों म पुष्ट है—

'बद्ध चरित' और 'सौन्दरानन्द काव्य' का लेखक अश्वघोष वि की दूसरी शताब्दी में हुआ था। वह 'कुषान वंशी' राजा कनिष्क का धर्म-सम्बन्धी सलाहकार था। इसने अपने सौन्दरानन्द काव्य के प्रथम सर्ग में क्षत्रियों के गोत्रों के सम्बन्ध में लिखा है उसमे भी यही सारांश निकलता है।

व विज्ञानेश्वर की 'याज्ञवल्क्य स्मृति' मिताक्षरी टीका से भी इसी की पुष्टि होती है। विशेष विवरण हेतु देखें—ओझा निबन्ध सग्रह भाग १ पृ ७०।

(५५) यज्ञ-सम्बन्धी तीन अग्नियों में से एक।

कुशवाहा–राम के द्वितीय पुत्र कुश की सन्तानें कुशवाहा[२५] (२६) वंशी हैं। वे भारत में वैसे ही कुश[२६] वंशी हैं, वैसे मेवाड़ के राजपूत लव-वंशी (१२)।

कोसल से दो शाखायें निकली एक ने सोन नदी के तट पर रोहतास बसाया दूसरी ने लाहौर[२७] के पास कोहारी की वाटिका में एक कालोनी बसाई।

समय की गति के साथ-साथ उन्होंने निरवर अथवा नरवर का सुप्रसिद्ध गढ़ बनवाया जो विख्यात राजा नल का निवासस्थान था जिसके वंशजों ने तातारियों और मुगलों के आक्रमण और आधिपत्य के दुर्दिनों में उस प्रदेश पर अधिकार बनाये रखा। मराठों ने इन्हें अधिकार विहीन कर दिया और अब नल की राजधानी सिन्धिया के आधीन है।

दसवीं शताब्दी (६१) में एक शाखा ने यहाँ से निकल कर आमेर (६१) बसाया इन्होंने यहाँ के आदिवासियों और मीणों को मार भगाया रामोर और उसके आस-पास के विस्तृत प्रदेश के स्वामी बड़गूजर जाति के राजपूतों के भी कुछ प्रदेश पर अधिकार कर लिया। बारहवीं शताब्दी में भी कुशवाहे दिल्ली के चौहान राजा के आधीन प्रमुख सामन्त ही थे इनकी उन्नति का काल वही है जो कि राजस्थान के अन्य कुलों की (विशेषतः मेवाड़ के राणाओं की) अवनति का है अर्थात् जब तैमूर बराबा दिल्ली का सिंहासन प्राप्त कर वहाँ राज्य करने लगा।

मानचित्र में कुशवाहों के आधीनस्थ प्रदेश की सीमायें दिखाई गई हैं जिसमें उनकी शाखाओं माचेड़ी के स्वतन्त्र नरूका और कर देने वाले शेखावतों का भूभाग भी सम्मिलित है।

कुशवाहों के विभाग गड़बड़ हो गये हैं किन्तु उनके वर्तमान काल का विभाजन भिन्न कोटड़ियाँ कहते हैं और जिनकी संख्या बारह है उनके ऐतिहासिक विवरण में दिये जायेंगे।

---

२५ कछवाहा लिखना और बोलना अशुद्ध है।

२६ अयोध्या के कुशवाहा रमेश और मिस्र के रमेसेस (५७) के मध्य बहुत बड़ी समानता है। प्रत्येक के साथ सेटायर (५८) अनुबिस (५९) और सिनोसिफैलस (६) की सेना थी अन्तिम नाम यूनानी भाषा में प्रयुक्त है क्योंकि इस नाम का पशु सीमियन कुल का है जैसा कि [तूरिन (६१) के संग्रहालय में विद्यमान] उसकी मूर्तियां बताती हैं जो स्वामी भक्त हनुमान का भाई था। सिन्धु नदी (जो नील-प्राय 'नीला पानी' के नाम से पुकारी जाती है) और मिस्र की नील नदी के देवताओं का तुलनात्मक अध्ययन एक उत्तम वाद-विवाद योग्य विषय है।

२७ सम्भवतः यह नाम इनके वंश की बड़ी शाखा के 'लव' के सम्मान में हो।

(५६) देख अध्याय पाँचवाँ पृ ७२ टिप्पणी स ८।

(५७) मिस्र के प्राचीनकाल के एक बादशाह का नाम।

(५८) यूनानियों का पौराणिक ऐन्द्रयोमी जन्य जीवधारी जिनके कान पशुओं के समान थे ललाट पर दो सींग होते थे और घोड़े अथवा बकरे के समान पूँछ होता थी।

(५९) मिस्रवासियों का देवता जिसका शरीर मनुष्य का और सिर गीदड़ का था।

(६) बन्दर के समान दाँत वाला एक कल्पित जीवधारी।

(६१) इटली के उत्तरी विभाग का एक नगर।

(६) देखें अध्याय पाँचवाँ पृ ७ टिप्पणी स ७।

(६३) देखें अध्याय पाँचवाँ पृ ७ टिप्पणी स १।

अग्निकुल प्रथम परमार—चार वंशों का हिन्दू वंशावलियों में अग्नि से उत्पन्न माना गया है। अतः अग्निकुल भी उसी भाँति (वल्कन) अग्नि की सन्तति हैं जिस भाँति दूसरे (सोल) सूर्य [९८] मरकू री (बुध) और टेरा (इला) की।

ये अग्निकुल हैं—परमार, परिहार, चालुक्य अथवा सोलंकी चौहान (९९)।

अग्नि की सन्तान इन जातियों को अपने युद्धों में लड़ने के लिये ब्राह्मणों से शुद्ध एवं परिवर्तित (९९) किया था यह बात उनके प्राचीन रूपकमय इतिहास की स्पष्ट व्याख्या करने पर प्रकट (७)हो जायेगी। यहाँ कहीं भी ये युग

---

९८. यूनान और रोम की वंशावलियों में जो विस्तारपूर्वक सादृश्यता पाई जाती है, वह हिन्दू देव-वंशावलियों में नहीं मिलती। यद्यपि सुयोग्य विद्वान् सर विलियम जोन्स संस्कृत साहित्य को भी मनोरंजक बना सकते थे किन्तु उन्होंने इस ओर ध्यान ही नहीं दिया। इससे हमारा अनुमान है कि यह वास्तविक उद्योग के योग्य है। राजस्थान के सरदारों के लिए यह विषय बहुत ही रुचिकर है। रोम की देव-वंशावली तथा हिन्दू-देव वंशावली के मध्य समानता वर्णित करने के लिये हमें केवल नामों के अनुवाद की आवश्यकता है। उदाहरणार्थ—

सूर्य (वंशी)			चन्द्र (वंशी)		
मरीची	[मकस (९४)	(Lux)]	अत्रि		
कश्यप	[यू (उ) रेनस (९५)	(Uranus)]	समुद्र	[ओशिएनस	(Oceanus)]
वैवस्वत् या सूर्य	[सोल	(Sol)]	सोम या इन्दु	[ल्यूना	(Luna)]
				[अथवा—लूनस	(Lunus)]
वैवस्वतसुत मनु	[फिलियस सोलिस (९६)	(Filiussolis)]	बृहस्पति	[ज्यूपिटर (९८)	(Jupiter)]
इला	[टेरा (९७)	(Terra)]	बुध	[मरकूरियस	(Mercurius)]

(९४) यूनानियों की पौराणिक कथाओं के अनुसार एक देवांशी पुरुष।

(९५) (क) यूनानियों के अनुसार आकाश (अथवा स्वर्ग) का अधिष्ठाता इसे कभी सूर्य और कभी पृथ्वी का पति भी मानते थे।

(ख) वरुण को भी 'उरेनस' कहते हैं—देखें—धर्मयुग-वर्ष ११ अङ्क १४ दि० ३-४-६।

(९६) सूर्य-पुत्र। (९७) पृथ्वी।

(९७) इनकी चर्चा आगे यथास्थान की जावेगी।

(९८) ज्यूपीटर इन्द्र को भी कहते हैं देखें-धर्मयुग—वर्ष ११ अङ्क १४ दि० ३-४-६।

(९९) किन्तु गोत्रोच्चार टॉड के इस कथन के विपरीत ही प्रमाण देते हैं जैसे परमारों का गोत्रोच्चार इस भाँति है—

यजुर्वेद शाखा माध्यन्दिनी वशिष्ठ गोत्र प्रवर वशिष्ठ दीप देवी नागनेचा पीपलेश्वर पीपल की पूजा।

(७) यहाँ 'पृथ्वीराज रासो' की टॉड ने अपनी इच्छानुसार व्याख्या की है। रासो का यह अंश भी विवादास्पद है। इस पर विभिन्न विद्वानों ने विभिन्न विचार प्रगट किये हैं जो सब 'पृथ्वीराज रासो' की विवेचना में संगृहीत हैं इसमें इस मत पर पृ० ४ ७ से ४९ ५७१ से ५७२ ६८७ से ६९ ७२१ से ७२९ विशेष प्रकाश डालते हैं। हमारे विचार से तो यह एक प्रतिज्ञा अथवा सौगन्ध की रस्म या प्रणाली की ओर संकेत होना चाहिये जैसा कि आज भी सभा में जब किसी को भर्ती किया जाता है तो उससे उसके धर्मानुसार शपथ अथवा प्रतिज्ञा कराई जाती है। दूसरा मत देखें आगे पृ० १४१ की टिप्पणि में ७८ में।

के अनुयायी जाकर बसे थे वहीं से इनके सबसे प्राचीन शिलालेख पाली लिपि में लिखे हुए मिले हैं जिनमें इनको तुष्टा अथवा तक्षक "जाति का होना बताया गया है। इस आधार पर हम यह कह सकते हैं कि अग्नि-वंशी भी इसी जाति के थे जिसने ईसा से दो शताब्दी पूर्व भारत पर आक्रमण किया था। इसी समय के लगभग तेइसवाँ बुध [3] पार्श्व भारत में आया, जिसका चिह्न सर्प था।

तक्षक नाग द्वारा सुप्रसिद्ध ग्रन्थ पींगल को चुरा कर भागना कृष्ण के (मित्र) गरुड़ द्वारा उसका उद्धार आदि की पौराणिक गाथा (७४) स्पष्टतः रूपकमय है जो यथार्थ में सर्प का चिह्न धारण करने वाले पार्श्व के अनुयायियों और गरुड़ का चिह्न धारण करने वाले कृष्ण के अनुयायियों के मध्य हुए झगड़ों का वर्णन है।

२१ आलंकारिक सर्प नाग (७१)।

१ मुझे ऐसा प्रतीत होता है कि भारतवर्ष में एकेश्वरवाद (७२) के प्रवर्तक चार सुप्रसिद्ध बुध अथवा विद्वान हुए हैं, जो मध्य एशिया से (७३) अपना विशाल शंकुशीर्षाकार वाली वर्णमाला तथा अपने एकेश्वरवाद के मत को अपने साथ लाए थे। मैंने इन अक्षरों की उन-उन स्थानों से प्राप्त किया जहाँ-जहाँ ये रहे। जैसे—जैसलमेर की मरु भूमि राजस्थान का मध्य तथा सौराष्ट्र के समुद्री किनारों पर, जो इनके पोषण-स्थल थे।

प्रथम बुध—चंद्र-वंश का आदि पुरुष	लगभग २२५ ई पू
द्वितीय—[जैनियों का २२वां (तीर्थंकर)] नेमीनाथ	„ ११२ ई पू
तृतीय—[„ „ २३वां („)] पार्श्वनाथ	„ ६५ ई पू
चतुर्थ—[२४वां („)] महावीर	„ ५३३ ई पू

(७१) शिलालेख के ठीक न पढ़े जाने के कारण ही यह हुआ है अन्यथा तुष्टा का अर्थ विश्वकर्मा है न कि तक्षक जैसा कि हम छठे अध्याय में पृ १० पर लिख आये हैं।

(७२) बौद्ध और जैन एकेश्वर वादी न होकर निरीश्वर वादी हैं। वे ईश्वर को सृष्टि का कर्ता-हर्ता नहीं मानते।

(७३) बुध तीनों जैन तीर्थंकर, और बौद्ध धर्म प्रवर्तक गौतम बुद्ध ये सभी भारत में उत्पन्न हुए थे। जैन धर्म तथा बौद्ध धर्म भारत से मध्य एशिया में फैला था। टॉड ने इन सब महापुरुषों को एक ही मानकर भूल की है इसी कारण उसने सब को बुध लिखा है।

(७४) यह गाथा टॉड ने कहाँ से ली है यह तो पता नहीं किन्तु इस सम्बन्ध में हमें निम्न दो गाथाओं की जानकारी अवश्य प्राप्त है—

(क) प्राकृत पिंगलसूत्र की लक्ष्मीनाथ(की) टीका में लिखा है—एक दिन शेष नाग यह जानने के लिए कि मेरा प्राचीन कितनी पृथ्वी है पिंगल ब्राह्मण के रूप में पृथ्वी पर आया किन्तु अपने वैर के कारण गरुड़ उसे मारने दौड़ा तब उसने कहा— हे गरुड़ तू मेरा कौशल तो देख यदि मैं एक बार का लिखा हुआ फिर लिखूं तो तू मुझे खा जाना। गरुड़ ने यह स्वीकार किया तब वह २६ अक्षरों तक का प्रसार कर समुद्र में चला गया।

(ख) एक बार जब गरुड़ नागराज को खाने को तैयार हुआ तो उसने कहा 'हे गरुड़ मैं पिंगल शास्त्र का ज्ञाता हूँ यदि यह शास्त्र प्राप्त किये बिना तू मुझे खा जायेगा तो यह शास्त्र मेरे साथ समाप्त हो जायगा अतः तू मुझ से यह शास्त्र पढ़ ले फिर चाहे खा जाना। गरुड़ ने स्वीकार किया। नागराज शास्त्र पढ़ाते-पढ़ाते समुद्र में चले गये।

उपर्युक्त दोनों कथाओं से चुरा कर भागना आदि कुछ भी ज्ञात नहीं होता। अतः अन्य कथाओं की भाँति अपनी इच्छानुसार अर्थ लगाने के लिये इसे भी तोड़ा-मरोड़ा गया है।

सूर्य के उपासकों ने सम्भवत चन्द्र-वंशियों के विध्वंसकारी गृह-युद्धों के पश्चात् अपनी शक्ति पुनः प्राप्त की। किन्तु वर्णन से यह स्पष्ट है कि ब्राह्मणों द्वारा अग्नि-कुलों की रचना दैत्यों अथवा नास्तिकों के विरुद्ध बल अथवा ईश्वर की वेदियों की रक्षार्थ की गई थी।

राजस्थान के ओलम्पस (७४) सुप्रसिद्ध आबू अथवा अर्बुद पर्वत पर सूर्यवंशियों और दैत्यों के मध्य संघर्ष (७६) हुए थे यदि हम कल्पनाकी सहायता लें तो ये उतने ही मनोरंजक प्रतीत होंगे, जितने कि प्राचीन पश्चिमी कवियों द्वारा वर्णित टीटेनिक (७७) युद्ध।

बौद्ध इसे अपने प्रथम बुद्ध आदि-नाथ का स्थान बताते हैं और ब्राह्मण इसको ईश्वर अथवा अचलेश [31] का किस नाम से यहाँ की स्थानीय देवमूर्ति प्रसिद्ध है।

आबू पर्वत की चोटी पर यह अग्निकुण्ड अब भी दिखाया जाता है जहाँ ब्राह्मणों ने अचलेश और अलेकेश्वर धर्म के लिये एकेश्वरवादी बौद्धों के प्रतिनिधि नाग अथवा तक्षकों के विरुद्ध युद्ध करने के लिये इन चार जातियों का निर्माण किया।

इस धर्म परिवर्तन (७८) के सम्भावित समय की ओर संकेत किया जा चुका है किन्तु इन अग्नि-कुलों से उत्पन्न राजवंशों के कई राजा, भारत पर मुसलमानों के आक्रमण के समय तक बौद्ध और जैन धर्म मानते थे।

यद्यपि परमार अपने नाम के अनुसार प्रमुख योद्धा नहीं था किन्तु अग्निकुलों में सबसे प्रतिष्ठावान रहा। इससे पैंतीस वंश शाखायें निकलीं जिनमें से कई एक ने अत्यन्त विस्तृत राज्यों पर शासन किया। एक प्राचीन कहावत है 'विश्व ही परमारों का है' इससे उनका व्यापक अधिपत्य सिद्ध होता है और 'नौ कोट [32] मरुस्थली' (७९) से प्रकट

---

३१ अचल—'न चलने (हिलने) वाला'; ईश—ईश्वर अथवा भगवान का संक्षिप्त नाम।

३२ यह सिंधु से यमुना तक फैला हुआ था जिसमें समस्त मरु देश की कोट—अर्बुद अथवा आबू धाट, मुण्डोवरी धेराम्‌ पारकर, लोद्रवा और पुंगल आदि सम्मिलित थे।

---

(७४) यूनान देश का एक पर्वत जो उनकी पौराणिक कथाओं में देवताओं का निवासस्थान माना जाता है।

(७६) यह भी टॉड की कल्पना मात्र ही है।

(७७) यूनानी पौराणिक कथाओं के अनुसार 'टीटन' आकाश और पृथ्वी के महाकाम पुत्र थे जिनका ज्यूपिटर से दस वर्षों तक युद्ध होता रहा।

(७८) 'चन्द बरदाई की इस कवि कल्पना से सीधा ऐतिहासिक तथ्य यह निकलता है कि जब दैत्यों (हूणों और उनके पीछे अरबों) ने हिन्दुस्तान पर आक्रमण किया तो प्रसिद्ध क्षत्रिय वर्गों ने जो आबू के आसपास स्थित थे देश और धर्म की रक्षा के लिए 'अग्नि और ब्राह्मणों के सामने व्रत लिया और वीरोचित नयी उपाधियाँ धारण कीं। (गोरखपुर जनपद और उसकी क्षत्रिय जातियों का इतिहास पृ १३१)।

(७९) राजस्थान में ऐसा प्रसिद्ध है कि परमार राजा धरणीवराह के नव भाई थे जिनको उसने अपना पैतृक राज्य बाँट दिया था। उनकी नव राजधानियाँ 'नवकोट-मरुस्थली' या 'नवकोटी मारवाड़' कहलाती हैं।

मण्डोवर (१) सामन्त हुवो अजमेर (२) सिद्धसुव।
गढ़ पूंगल (३) गजमल हुवो लोद्रवे (४) भाणसुव॥
मल्ह पल्ह अरबद्ध (५) भोजराजा जालधर (६)।
जोगराज धरधाट (७) हुवो हांसु पारक्कर (८)॥
नवकोट किराड़ (९) संजुगत थिर पंवार हर थप्पिया।
धरणीवराह धर भाइयाँ कोट बाँट जूजू किया ॥१॥

दृश्ता है कि सतलुज से समुद्र तक का भूभाग नौ भागों में इनके मध्य बंटा हुआ था।

माहेश्वर, धार, माँडू, उज्जैन चन्द्रभागा चित्तौड़ आबू, चन्द्रवती मऊमैदान परमावती उमरकोट बैखर, लोद्रवा और पट्टन इनकी बसाई हुई अथवा विजय की हुई अत्यन्त प्रसिद्ध राजधानियाँ रही है।

यद्यपि परमार-वंश अणहिलवाड़ा के सोलङ्की राजाओं के समान वैभवशाली न था और न चौहानों के समान कीर्तिवान् किन्तु इसने न दोनों से पूर्व ही बहुत अधिक विस्तृत भूभाग पर अपना आधिपत्य कर, राज्य स्थापित किया (८) यहाँ तक कि अग्निकुलों में सर्वाधिक बड़े-बड़े तथा सबसे अन्तिम और अस्त-व्यस्त परिहारों को बहुत दिनों तक अपना करद राजा (८१) बनाये रखा।

ऐसा प्रतीत होता है कि इन राजाओं की प्राचीन राजधानी माहेश्वर परमार राज्य की प्रथम राजधानी रही हो। इसी समय के आसपास उन्होंने धार नगर तथा विन्ध्य पर्वत के सबसे भाग पर माँडू को स्थापित किया। विक्रम की राजधानी उज्जैन जो हिन्दुओं की उत्कृष्टता का प्रतीक है इन्हीं का बसाया हुआ माना जाता है।

इस वंश के काल से ऐसे लेख प्राप्त होते है जो इनके आधुनिक समय के इतिहास का काल निश्चित करते है अस्पष्ट शिलालेखों की व्याख्या हमें सातवीं शताब्दी से पूर्व के काल की ओर ले जायेगी ऐसी आशा की जा सकती है।

म ज-पुत्र भोज (८२) का काल [१३] भली-भाँति निश्चित हो गया है संकुचिताकार वर्णमाला का एक शिलालेख [१४] इससे पूर्व के काल [१५] के एक बहुमूल्य ऐतिहासिक तथ्य पर प्रकाश डालता है। इसमें चित्तौड़ के अन्तिम परमार राजा का काल तथा इस राजा पर गहलोतों द्वारा सत्ता विजय करने का काल दिया गया है।

परमारों के अधिपत्य की अन्तिम सीमा नर्बदा ही नहीं थी। उपर्युक्त शिलालेख में दिये गये समयके आस-पास ही राम परमार तेलंगाना [१] में शासन करता था जिसे चौहानों के भाट कवि चन्द ने भारत के चक्रवर्ती सम्राट् की

---

१३ देखें 'ट्रांजेक्शन्स आफ दी रॉयल एशियाटिक सोसायटी' खण्ड १ पृ २०७।

१४ यह लेख (८३) 'ट्रांजेक्शन्स आफ दी रॉयल एशियाटिक सोसायटी' में प्रकाशित किया जायेगा।

१५ वि सं ७७ अथवा ७१४ ई ।

१६ तैलङ्ग परमार ने सन्यास ग्रहण करते समय १६ राज कुलों को भूमि भेंट की थी। बैहर को बैखर राजपुर की सिन्धु का तट और सैल धीरों को जांगल की भूमि प्रदान की। तैलङ्ग के राम परमार ने जो उज्जैन का चक्रवर्ती सम्राट् था, ऐसे किये थे। तंवरों को दिल्ली यादवों को पट्टन चौहानों को सांभर, कमधज को कन्नौज परिहारों

उपर के छप्पय में धरणीवराह का भाइयों को भिन्न-भिन्न स्थानों का देना उल्लिखित है वे संशय रहित नहीं है क्योंकि धरणीवराह का वि सं १ आसपास होना माना जाता है। उस समय अजमेर तो बसा भी नहीं था। धार् पर अन्य पक्ष का होना नहीं पाया जाता। सम्भव है किसी कवि ने बहुत पीछे उक्त छप्पयकी रचना की हो। विशेष विवरण के लिए देखें राजस्थानी कहावतें—'एक अध्ययन' पृ १ ।

(८) सोलङ्कियों का प्रबल राज्य छठी शताब्दी के प्रारम्भ में दक्षिण में स्थापित हो चुका था। परमारों का नवीं शताब्दी से पूर्व कोई बड़ा राज्य होना नहीं पाया जाता अतः परमारों का राज्य सोलङ्कियों तथा चौहानों से अधिक विस्तृत रहा हो यह मानने को कोई प्रमाण नहीं है। यह टॉडकी अतिशयोक्ति मात्र है।

(८१) यह लिखने का मुख्य कारण यह प्रतीत होता है कि टॉड को कन्नौज के परिहारों का इतिहास पूर्णरूपेण ज्ञात नहीं था।

(८२) भोज मुञ्ज का पुत्र नहीं था वह सिन्धुराज का पुत्र था। (रासमाला प्रथम भाग पूर्वार्द्ध पृ० १६१)

(८३) यहाँ टॉड ने जिस शिलालेख की चर्चा की है वह चित्तौड़ के निकट मानसरोवर का लेख है यह परमारों का न होकर मोरी राजा मान का है (ओ टा रा हि प पृ २६६ टि सं ८)।

उपाधि से विभूषित किया है। उसके भाधीन एक शक्तिशाली सामन्ती संगठन था जिसके सदस्य इसकी मृत्यु के पश्चात् स्वतन्त्र हो गये। यद्यपि भाट इस कार्य को परमारों द्वारा स्वत किया गया बताते हैं किन्तु इसे गहलोतों द्वारा बलपूर्वक चित्तौड़ हस्तगत करने की घटना से मिलान करने पर हम यह अनुमान लगा सकते हैं कि उत्तराधिकारी अपनी इस विशिष्टता को स्थिर नहीं रख सका।

जब तक हिन्दू साहित्य जीवित रहेगा तब तक राजा भोज परमार और उसकी सभा के नव रत्नों का नाम अमर रहेगा यद्यपि यह कहना कठिन है कि इस नाम के तीन राजाओं [१७] (८५) में से 'यह' कौन सा था क्योंकि ये तीनों ही विद्वान के संरक्षक रहे हैं।

चन्द्रगुप्त को सिकन्दर का अनुमानित विरोधी मान सकते हैं, जो मोरी-वंश का पवित्र वंशावलियों में उसे तक्षक (८६) जाति का बताया गया है। परमारों के प्राचीन शिलालेखों के अनुसार 'मोरी-वंश' तुष्या अथवा तक्षक (८७) जाति की प्रमुख शाखा थी। यह उनकी राजधानी चित्तौड़ [१८] में से प्राप्त शिलालेख द्वारा ज्ञात होता है।

विक्रमादित्य विजेता शालिवाहन (८९) तक्षक था उसने दक्षिण में ठवर विजय के पश्चात् अपना संवत् चलाया।

को मसौदा जादवों को सोरठ, जादवों को मकवान और चारणों को कच्छ दिया—चन्द की कविताएँ (८४)।

१७. शिलालेख में तृतीय भोज का काल सम्वत् ११ (१ ३४ ई) दिया गया है। यह काल उस प्राचीन सूची के समय से मिलता है जिसमें भोज नामी समस्त राजाओं का सम्वत् वार विवरण दिया है अत वही प्रमाणिक मानी जानी चाहिये। इसी प्रमाण के आधार से प्रथम और द्वितीय भोज का काल क्रमशः सम्वत् ६११ एवं ७२१ (अथवा २७२ और ६६५ ई) होता है।

१८ चित्तौड़ को तक्षशिला (८८) पुकारे जाने के सम्बन्ध में मर्वर्ट एक अनोखी कहानी बताता है। इस कहानी में राणा के पुत्र की सन्तति होने की कहानी मिलती है। मेवाड़ की प्राचीन सीमाओं के भावर कस्बा के निकट मन्दिर में मुझे एक शिलालेख मिला है जिस में तक्षशिला नगर की सड़कों का पाषाण पूर्ण लिखा है किन्तु मैं इसे प्रयुक्त नहीं कर पाता हूँ क्योंकि टोडा नगर [टॉक अथवा भावर टोंक] को चौहानों की ख्यातों में तक्षकपुर कहा है।

---

(८४) मूल छप्पय 'रासो' के कनवज्जपर्व में इस प्रकार है।

विप विक्की मॉवरन नई पावगढ़ा भूपस्स। दय सम्भरि चहुआन नई कनवज कनधज्जन॥
परिहारन मुरधेस मिस्र चारघा सुथाम। दै सोरठ जदवन दई कच्छम जावास॥
चारण कच्छ दीनी करग भग्गी दस भाव भी। बन गये भयमि बघेसरा गिरजापनि मामागढ़ी॥

यह केवल 'रासो' में ही है इसका कोई ऐतिहासिक प्रमाण नहीं मिलता।

(८५) मालवा में भोज परमार तो केवल एक ही हुआ है। देखें रेउ कृत राजा भोज।

(८६) चन्द्रगुप्त मौर्य के सम्बन्ध में पुराणों में निम्न लेख प्राप्त होते हैं—

उनका अन्त होने पर मौर्य भूपतिगण पृथ्वी का भोगेंगे। कौटिल्य ही (मुरा नाम की दासी से नन्द द्वारा उत्पन्न) चन्द्रगुप्त का राज्याभिषेक करेगा। (श्री वि प २४ २७-२८ पृ० ३२१ गी प्रे)।

'वह ब्राह्मण ही उनके प्रथम चन्द्रगुप्त मौर्य को राज्य पर अभिषिक्त करेगा' (श्रीमद्भागवत १२।१।१३) अत यह केवल टॉड की कल्पना ही है।

(८७) यथार्थ में टॉड द्वारा शिलालेखों को गलत पढ़ लेने से ही यह लिखा गया है। देखें अध्याय छः पृ सं ' टिप्पणी सं ६५, ५६।

(८८) तक्षशिला पंजाब में है। चित्तौड़ का नाम तक्षशिला रहा हो ऐसा कोई उल्लेख नहीं है।

(८९) शालिवाहन और विक्रमादित्य एक समय में नहीं थे क्योंकि दोनों के सम्वत् का फर्क १३५ वर्ष का है।

परमारों की महत्ता के प्रतीक स्वरूप एक भी स्वतन्त्र प्रदेश नहीं बचा है केवल खण्डहर मात्र ही उनकी शक्ति के शेष हैं। भारतीय मरु-भूमि में धाट[14] का राजा इस जाति के राजवंश का अन्तिम चिह्न है। यह उस राजा का वंशज है जिसने तैमूरिया तख्त से खदेड़े जाने पर हुमायूं को शरण दी थी जिसकी राजधानी उमरकोट में अकबर महान् ने जन्म लिया था। किन्तु मात्र वह भाग्य की सीढ़ी के अन्तिम डण्डे पर है, इसका सिंहासन उस मरु-भूमि में है जो सिन्धोदियों की शरण पीठिका है और उनकी सहायता तथा दया पर ही वह निर्भर है।

परमारों की ३५ (पैंतीस) शाखाओं में विहल अधिक विख्यात थी इसके राजा अरावली की तलहटी में चन्द्रावती के स्वामी रहे प्रतीत होते हैं।

मेवाड़ के राणा के दरबार में १६ (सोलह) उच्च सरदारों में से एक बिजोलिया का राव परमार जाति का है जो धार के प्राचीन राज-वंश से सम्बन्धित है और सम्भवतः यही उसका सबसे श्रेष्ठ प्रतिनिधि है।

परमारों की ३५ (पैंतीस) शाखायें

(१) मोरी —जिसमें चन्द्रगुप्त हुआ और जो गहलोतों से पूर्व चित्तौड़ के राजा थे।

(२) सोढा —सिकन्दर के काल के सोग्दी भारतीय मरु-भूमि में धाट के राजा। (१९)

(३) सांखला —पूगल के सामन्त और मारवाड़ में।　　(४) खैर —राजधानी खैरालू है।

(५) उमरा और (६) सुमरा —प्राचीन काल में मरु-भूमि में थे अब मुसलमान हो गये।

(७) विहिल अथवा बिहिल —चन्द्रावती के राजा।

(८) मेपावत —मेवाड़ में बिजोलियाके वर्तमान सामन्त।　　(९) बुल्हार —उत्तरी मरु-भूमि में।

(१) काबा —प्राचीन काल में सौराष्ट्र में विख्यात थे अब थोड़े सिरोही में पाये जाते हैं।

(११) उमट —मालवा में उमटवाड़ा के राजा जहाँ वे बारह पीढ़ियों तक स्थापित रहे।

परमारों के अधीन रहे प्रदेशों में सबसे बड़ा उमटवाड़ा है किन्तु १ १७ ई० में युद्ध के पश्चात् सिंध की हस्तक्षेप के अन्तर्गत होने से उन्हें स्वतन्त्र नहीं कहा जा सकता।

(१२) रेहवर, (१३) धुन्धा (१४) सोरटिया (१५) हैरर —मालवा में छोटे-छोटे प्राधिपे सामन्त।

इनके अतिरिक्त अन्य प्रकार—जैसे—(१६) चौंदा (१७) खेजर (१८) सुगड़ा (१९) बरकोट (२) पूनी (२१) सम्पाल (२२) भीबा (२३) कालपुत्तर (२४) कालमोह (२५) कोहिला (२६) पूपा (२७) कहोरिया (२८) धुन्ध (२९) देबा (३) बरहर (३१) जीप्रा (३२) पोसरा (३३) धुन्ता (३४) रिकुम्बा और (३५) टीका हैं। इनमें से कई तो इस्लाम धर्म स्वीकार कर चुके हैं और कई सिन्ध के उसपार जाकर बस गई हैं। (२१)

---

१९. परमारों की एक बड़ी शाखा 'सोढ़ों' ने सम्पूर्ण मरुभूमि प्रदेश पर आधिपत्य कर रखा था। इसकी दो शाखाओं 'उमरा और सुमरा' के नाम पर 'उमरकोट' और उमरा सुमरा (नगरों का) नाम पड़ा; 'ईसाकाटीबार' इनके अन्तर्गत सिन्धु के किनारे स्थित है अतएव जब हम सोढा जाति को सिकन्दर के समय की 'सोग्दी' (१) जाति बताते हैं तो व्युत्पत्ति का अनुचित प्रयोग नहीं करते।

(२०) देखिए 'राजस्थान का भूगोल प्रकरण' पृ १७ टि सं ३ ४ ५।

(२१) मुहणोत नैणसी ने अपनी ख्यात [ना प्र सं भाग १ पृ २] में ३६ शाखायें दी हैं। कई नामों में अन्तर भी है। वे निम्न हैं —
[१] पंवार [२] सांखला [४] भाभा [५] मामल [६] पेस [७] पाणीमवन [८] बहिया [९] वाहल [१] छाहड़ [११] मोटसी [१२] हुंबड़ [१४] सीमारा [१४] जैपाल [१५] कगवा [१६] काब

चाहुमान अथवा चौहान —(१२) इस जाति के सम्बन्ध में अन्यत्र[४] बहुत कुछ कहा गया है अत यहां पर इसका संक्षिप्त विवरण देना ही यथेष्ट होगा।

अग्नि कुलों में सर्वाधिक वीर जाति यही है यह बात न केवल इनके लिए अपितु सम्पूर्ण राजपूत जाति के लिए भी सही है। यदि छत्तीस राजकुलों में प्रत्येक के वीरतापूर्ण कार्यों का ऐतिहासिक विवरण लिखा जावे तो वे (वीरतापूर्ण–कार्य) चौहानों की तुलना में किसी अन्य के नहीं मिलेंगे, यद्यपि राठोड़ों की तलवार के चमत्कार अवश्य ही चौहानों की तलवार के कार्यों की बराबरी करेंगे किन्तु इन दोनों जातियों के गुण के जानकार और निष्पक्ष निर्णायक अवश्य ही चौहानों को प्रथम स्थान देंगे।

इनकी वंश-शाखाओं ने अपनी समस्त वीरतापूर्ण परम्पराओं को पूर्णरूपेण सुरक्षित रखा है। २४ शाखाओं में से हाड़ा कोची देवड़ा सोनिगरा के अतिरिक्त अन्य भी अपना नाम वीर-काव्यों (भाट कवियों के गीतों) में अमर कर गये हैं।

'चतु भुज योद्धा' से चौहान शब्द की उत्पत्ति भी उतनी ही आश्चर्यजनक है जितनी कि इस जाति की उत्पत्ति की कथा। जब दैत्य अथवा राक्षसों के विरुद्ध युद्ध में सभी हार गये तो अन्त में विधर्मियों का नाश करने के लिए चौहान को जन्म दिया।

चौहान की उत्पत्ति के सम्बन्ध में मूल ग्रन्थ 'पृथ्वीराज रासो' से कुछ उद्धरण दिये जा सकते हैं, जिसे इस पवित्र पर्वत आबू अथवा ओलिम्पस पर भारतीय जोव के अनुयायियोंकी रचना उत्पन्न किया गया था। सुमेरु अथवा कैलाश के समान गुरु-पर्वत, जिसे अचलेश ने अपना निवास-स्थान बनाया था। इसकी चोटी पर केवल एक दिन उपवास करो तो तुम्हारे सब पाप धुल जायेंगे यदि एक वर्ष तक निवास करो तो तुम मनुष्य मात्र के गुरु हो जाओगे।

पवित्र आबू पर्वत पर ब्रह्म के उपासक वन मुनियों ने यज्ञ प्रष्ट कर देते थे जो गौ से प्राप्त वस्तु एवं कन्द मूल फल फूल से अपना निर्वाह करते थे। यद्यपि ऐसा करने से उन्हें कोई लाभ नहीं था किन्तु उनके परमानन्द से ईर्षा के कारण ही वे ऐसा करते थे और ईश्वर के भोग को मार्ग मे ही लूट लेते थे।

'ब्राह्मणों ने यज्ञ के लिए नैऋत्य कोण में हवन–कुण्ड का निर्माण किया किन्तु राक्षसों'[४१] ने आंधियां चलाई जिन्होंने वायुमण्डल को अन्धकारमय तथा बालू के बादलों से परिपूर्ण कर दिया उन्होंने उनके यज्ञ-स्थान पर मल रक्त मांस हड्डियां तथा अन्य अपवित्र वस्तुओं की वर्षा की अतएव उनका यज्ञ निष्फल हो गया।

---

४ ट्रांसेक्शन्स आफ दी रायल एशियाटिक सोसायटी खण्ड १ पृ १३२ पर देखिए। एक संस्कृत शिलालेख पर टिप्पणी विषयक लेख।

४१ असुर दैत्य वे दैत्य या तो आदिवासी भील थे अथवा सीथियनों के समूह।

---

[१७] उमट [१८] धांध [१९] धरिया [२] माई [२१] कछोटिया [२२] कामा [२३] कालमहु [२४] खेरा [२५] चूटा [२६] डस [२७] देसम [२७] जागा [२६] हवा [३] गूगा [३१] गेहसवा [३२] कसोलिया [३३] टूनणा [३४] पोचलिया [३५] डोडा [३६] वारड।

(१२) चौहान शब्द के लिए प्राचीन शिलालेखों आदि में बहुधा 'चाहमान' शब्द मिलता है और 'पृथ्वीराज विजय' काव्य में 'चापमान' या 'चापहरि' शब्द से उक्त नाम की उत्पत्ति होना लिखा है जो धनुर्धर होने का सूचक है न कि चतुर्भुज का।

उन्होंने पुनः नवीन अग्नि प्रज्वलित की और अग्निकुण्ड[४२] के चारों ओर एकत्रित होकर महादेव से सहायतार्थ प्रार्थना की।

अग्निकुण्ड से एक आकृति प्रकट हुई किन्तु उसका स्वरूप एक योद्धा का नहीं था। ब्राह्मणों ने उसे द्वार रक्षक बनाया अतः वह पृथिवि द्वार[४३] कहलाया। दूसरी आकृति प्रकट हुई क्योंकि वह हाथ की हथेली (चुल्लू) से बनी थी अतः चालुक्य कहलाया। फिर तीसरी उत्पन्न हुई और परमार[४४] कहलाई। इसे ऋषियों का आशीर्वाद प्राप्त हुआ वह दूसरों को साथ लेकर दैत्यों के विरुद्ध युद्ध करने गया किन्तु वे इससे नहीं हारे।

वशिष्ठ पुनः आसन पर बैठ कर मंत्र जाप करने लगे। उन्होंने दुबारा देवताओं का सहायतार्थ आह्वान किया। ज्योंही उन्होंने आहुति दी कि एक आकृति प्रकट हुई जिसका कद लम्बा ललाट उन्नत बाल काले आँखें गर्विमान और छाती विशाल थी जिसका स्वरूप भयानक व डरावनी आकृति का था तरकस तीरों से भरा हुआ था। एक हाथ में धनुष और दूसरे में खड्ग धारण किये हुए चतुर्भुज[४५] था इसी से उसका नाम चौहान पड़ा। (१६)

ज्योंही चौहान को राक्षसों के विरुद्ध भेजा गया वशिष्ठ ने देवताओं से प्रार्थना की कि अब उसकी आशापूर्ण[४६] की जावे। तभी सिंहारूढ़ शक्ति देवी[४७] हाथ में त्रिशूल धारण किये हुए अवतरित हुई और चौहान को आशीर्वाद दिया आशापूर्णा या कालका देवी के रूप में सदैव उसकी प्रार्थना सुनने का वचन दिया। चौहान राक्षसों से लड़ने गया और उनके प्रमुख नेताओं का वध कर दिया। शेष वहीं से भाग कर सीधे पाताल में ही जाकर रुके। अग्निकुल ने राक्षसों का वध कर दिया ब्राह्मण प्रसन्न हुए और इसी वंश में पृथ्वीराज का जन्म हुआ।

---

४२ में हिन्दुओं की पौराणिक कथाओं में वर्णित इस स्थान पर गया हूँ। आदिपाल (१३) (प्रथम-परमार) की संगमरमर की मूर्ति उसके बांध पर अभी भी सुशोभित है, जो शिल्प-कला का अत्यन्त ही सुन्दर नमूना है यह इतनी पवित्र मानी जाती है कि इसे कोई छू नहीं सकता।

४३ पृथ्वी का द्वार (१४) जिसका संक्षिप्त रूप प्रतिहार अथवा पड़िहार हो गया।

४४ प्रथम वार करने वाला (१५)

४५, चतुर या चार अङ्ग—शरीर चार अङ्ग।

४६ आशा पूर्ण ; चौहानों की कुलदेवी का नाम आशापूर्णा इसी से पड़ा।

४७. शक्ति की देवी ; शक्ति।

---

(१३) जिस मूर्ति को टॉड आदिपाल की मूर्ति बताते हैं उसे स्थानीय जनता परमार धारावर्ष की मूर्ति बताती है। उक्त मूर्ति के नीचे एक लेख खुदा हुआ था जो अब पढ़ा नहीं जाता। इस मूर्ति के हाथ में बने हुए धनुष के नीचे एक दूसरा लेख खुदा हुआ है जिसमें 'ॐ सम्वत् १५३३ वर्षे फाल्गुन मासे कृष्ण पक्षे ६ बुधवासरे देवड़ा पेमा भाण्डार सिंघोत   पढ़ा जाता है। चित्तौड़ के कीर्ति-स्तम्भ के लेख से पाया जाता है कि महाराणा कुम्भा ने आबू पर अचलेश्वर मन्दिर के पास कुम्भ स्वामी का मन्दिर तथा उसके पास ही एक कुण्ड का निर्माण कराया था। अतः आश्चर्य नहीं कि जिस कुण्ड को टॉड ने अग्नि-कुण्ड बताया है वह कुम्भा द्वारा निर्मित हो और पीछे से उसकी पाल पर देवड़ों ने वह मूर्ति तथा भैंसे बनवाये हों।

(१४) पड़िहार नाम का शुद्ध रूप पृथ्वीद्वार कहीं नहीं प्राप्त होता। पड़िहारों के शिलालेख आदि में 'प्रतिहार' शब्द मिलता है जिसका अर्थ द्वारपाल है।

(१५) 'परमार' का शुद्ध अर्थ पहले मारने वाला न होकर शत्रु को मारने वाला है।

(१६) पृथ्वीराज रासो का यह छन्द इस प्रकार है—

चौहानों के वंश-वृक्ष में प्रथम चौहान अग्णहिल (९७) से पृथ्वीराज तक ९९ राजा (९८) हुए, पृथ्वीराज भारत का अन्तिम हिन्दू सम्राट्[४८] था किन्तु हम यह निश्चयपूर्वक नहीं कह सकते कि यह नामावली पूर्ण है। अनुमान करने पर यह निश्चित लगता है कि यह पूर्ण नहीं है, क्योंकि ब्राह्मणों द्वारा किया गया अग्नि-कुलों का निर्माण अथवा धर्म-परिवर्तन एक ऐसे काल में हुआ था जो विक्रमादित्य से कई शताब्दी पूर्व का था। हम यह निश्चिन्ततापूर्वक कह सकते हैं कि ये धर्म-परिवर्तित लोग तक्षक जाति के थे जिन्होंने अत्यन्त प्राचीन काल में भारत पर आक्रमण किया था।

चौहानों के ऐतिहासिक लेखों में अजयपाल एक प्रसिद्ध नाम है जिसने अजमेर में गढ की स्थापना की जो चौहानों की प्रभुसत्ता के अत्यन्त प्राचीन केन्द्रों में से एक था।

साम्भर[४९] इसी नाम की नमक की विस्तृत झील के तट पर स्थित नगर सम्भवतः अजमेर से प्राचीन है और इसी ने उन्हें वह गौरव दिया जिसके कारण वे 'साम्भरी राव' कहलाये। ये (साम्भर और अजमेर) चौहान प्रभुसत्ता के उस समय तक महत्वपूर्ण केन्द्र रहे, जब तक कि पृथ्वीराजने दिल्लीका निर्वाणोन्मुख राज-ज्योति को अन्त करके वहाँ का सिंहासन प्राप्त न कर लिया। इनमें अनेक ऐसे राजा भी थे जिनके शौर्य ने चौहान-इतिहास को आलोकित किया है। इन्हीं में एक माणिक्य राव था। जिसने सर्व प्रथम यवन वाहिनी का अत्यावरोध किया। यहाँ तक कि विजेताओं के इतिहास में भी लिखा है कि महमूद गजनी की सेनाओं को जिन विरोधों का सामना करना पड़ा उनमें प्रबलतम एक

---

४८ इसका जन्म संवत् १२१५ (९९) अथवा ११५९ ई० में हुआ था।

४९ यह नाम इस जाति की कुलदेवी शाकम्भरी देवी के नाम के कारण पड़ा; जिसकी मूर्ति झील के मध्य में स्थित है।

अनल कुण्ड किय अनल स जग उपगार सर
कमलासन आसनह मंडि जग्योपवीत जुरि।
चतुरानन स्तुति स च मन्त्र उच्चार सास किय
सुकरि कमण्डल वारि जुवति आह्वान धाम दिय॥
जा असि पानि प्रहसि जजि भजि सु दुष्ट आकार करि
उपज्यो अनिल चहुआन तब चब सुबाहु असिबाह धरि॥
भुग प्रचंड चव च्यार मुक्ख रक्त अन्न तन तुम
अनल कुण्ड उपज्यो अनल चहुवान चतुरंग॥

—पृथ्वीराज रासो रूपक १३२–३ छन्द २५५–६।

(९७) 'पृथ्वीराज–विजय काव्य' तथा 'हमीर महाकाव्य' में चौहानों के मूल पुरुष का नाम 'चाहमान' लिखा मिलता है।

(९८) चौहानों के कुछ शिलालेखों तथा 'पृथ्वीराज–विजय काव्य' में मूल पुरुष न लगा कर पृथ्वीराज तक ३ या ३१ नाम ही मिले हैं।

(९९) देखिये अध्याय पाँचवा पृ ८२, टिप्पणी सं ३७। ओझाजी की मान्यता का मुख्य आधार 'पृथ्वीराज–विजय काव्य' ही है।

इसका मवरोध अजमेर[१] के राजा का ही था इसी दुर्भेद्य मवरोध के कारण उसे विफल और अपमानित होकर सौराष्ट्र का विनाशकारी मार्ग लेना पड़ा था।

ऐसा प्रतीत होता है कि वलीद (१ २) के सेनापति कासिम (१ ३) ने हिजरी संवत् की प्रथम शताब्दी के अन्त में माणिक्यराय पर आक्रमण किया होगा। द्वितीय आक्रमण चौथी शताब्दी के अन्त में हुआ होगा। तीसरा बीसलदेव के राज्य-काल में हुआ जिसने धर्म के इन शत्रुओं से विकट युद्ध में राजपूत राजाओं का नेतृत्व किया था। इस अवसर पर चौहान राजाओं के अधीन सामन्त राजाओं में सुप्रसिद्ध उदयादित्य (१ ४) परमार प्रमुख था, जिसकी मृत्यु इतिहासिक लेखों के अनुसार १ ९६ ई (१ ४) में हुई अतएव यह मुठभेड़ अवश्य ही महमूद से चौथे इस्लामी राजा मौदूद (१ ५) के विरुद्ध हुआ होगा इसी विजय का उल्लेख सम्भवतः देहली के प्राचीन स्तम्भ के शिला-लेख में हुआ होगा (१ ६)। फिर भी ये आक्रमण अन्तिम चौहान राजा को बन्दी बना करके उसका वध कर देने तक बराबर होते रहे जिसका राजस्वकाल तात्कालिक रीति-रिवाज का एक मार्मिक ही भव्य चित्र प्रस्तुत करता है।

चौहानों की २४ शाखायें हैं। इनमें सर्वाधिक प्रसिद्ध हाड़ोती प्रदेश में बूंदी-कोटा के वर्तमान राजवंश हैं जिन्होंने चौहानों की शौर्य-प्रतिष्ठा को भली भाँति निभाया है। सम्राट् शाहजहाँ की सहायतार्थ उसके विद्रोही पुत्र औरंगजेब के विरुद्ध एक ही रणक्षेत्र में इस राज-वंश के छः भ्राताओं ने अपना रक्त बहाया इनमें से केवल एक ही घायल होने पर बच गया।

---

१ इस अवसर पर अजमेर(१)की रक्षा करनेवाला अवश्य ही बीसलदेव का पिता धर्माधिराज(१०१)रहा होगा।

---

(१) ग्रानो जी के पिता अर्थात् बीसल देव तथा सोमेश्वर के दादा अजयदेव ने अजमेर का किला बनवाया था। फरिश्ता ने अजमेर विजय लिखा है किन्तु इब्न असीर ने 'कामिलुत्तवारीख' में अजमेर का नाम नहीं लिखा है। इस सम्बन्ध में विस्तृत चर्चा आगे के खण्डों में होगी।

(१ १) बीसल देव नाम के राजाओं में से किसी के पिता का नाम धर्माधिराज होना चौहानों के शिला लेखों अथवा 'पृथ्वीराज-विजय काव्य' में नहीं पाया जाता।

(१ २) बगदाद का खलीफा जिसने ई सन् ७ ५ से ७१५ तक राज्य किया था।

(१ ३) मुहम्मद कासीम ने हि स ९३ (ई सन् ७१२) में सिन्ध पर चढ़ाई की थी। इसकी मृत्यु हि सन् ९६ (ई सन् ७१५) में हुई (ओ टा रा हि प पृ २६८ टि सं १ ८)। ७११ (ई) में [हज्जाज के भतीजे] मोहम्मद (बिन) कासिम ने सिन्ध को जीता था [यह बसरा से जल मार्ग द्वारा आया था] ७१४ खलीफा वलीद ने ईर्ष्यावश मोहम्मद कासिम को मार डाला (मार्क्स के भारतीय इतिहास पर टिप्पण पृ १३)। अतः यह आक्रमण माणिक्यराय पर नहीं हुआ।

(१ ४) उदयादित्य १ ५९ ई से १ ८१ ई तक था। (रासमाला प्र मा पृ (हिन्दी) पृ २१७)

(१ ५) मौदूद ई सन् १ ४२ से १ ४८ तक गजनी का शासक रहा। यह सतलुज नदी के उस पार ही रहा था।

(१ ६) दिल्ली के जिस प्राचीन स्तम्भ पर अशोक की धर्म आज्ञाओं के नीचे बीसलदेव के लेख खुदे हुए हैं। वह दूसरा है। यह नहीं।

उपर्युक्त उल्लेख के कोई भी व्यक्ति समकालीन नहीं थे जो टिप्पणियों द्वारा प्रमाणित है।

चालुक्य अथवा सोलंकी—

यद्यपि हमें अग्नि-कुलों की इस शाखा के इतिहास का ज्ञान परमारों और चौहानों के बराबर प्राचीन काल(१ ९) से प्राप्त नहीं है किन्तु यह इस कारण नहीं है कि यह जाति कम प्रसिद्ध थी अपितु ऐतिहासिक सामग्री के अभाव में हम सोलंकियों को उपर्युक्त दो जातियों के बराबर नहीं रख सकते। भाटों की परम्परा से ज्ञात होता है कि सोलंकियों का राज्य गंगा तट पर सोरू में राठौड़ों के कन्नौज प्राप्त करने से भी पूर्व था। वंशावलियों[१२] के अनुसार उनका निवास-स्थान लोह-कोट था जो लाहौर का प्राचीन नाम बताया जाता है। इसके ये उसी शाखा (माध्यन्दिनी) के हैं जिसके कि चौहान हैं। यह निश्चित है कि आठवीं शताब्दी में मुलतान और उसके आस-पास के प्रदेश में संघा[१३] (११) और तोमर जातियाँ को बसा पाते हैं जो भाटी जाति के मरु भूमि में स्थापित होने के

---

१२ सोलंकियों का गोत्रोच्चार इस प्रकार है —
माध्यन्दिनी शाखा मानव्य गोत्र गढ़ लोह कोट निकास सरस्वती नदी साम-वेद कपिलेश्वर महादेव वर्धमान पट्टविजर, तीन प्रवर, (तीन सूत्रों का प्रवेश) क्षेमज देवी।

१३ ये मलखानी कहलाते हैं, क्योंकि वे मलखान के पुत्र हैं जो अपना धर्म छोड़ कर मुसलमान हुआ था। हम यह नहीं जानते कि सोलंकियों की इन शाखाओं को अपना धर्म छोड़ने के लिए बाध्य किया गया था, अथवा उन्होंने अपनी इच्छा से ही ऐसा किया था।

इस सम्बन्ध में मनुस्मृति ही नहीं श्रुति भी साक्षी देती है—'तस्ययद्रेतस प्रथम देदीप्यते तदसावा दित्योऽभवत्। यद्वितीयमासीद्‌ भृगु। अर्थात् उसकी शक्ति (रेतस-वीर्य) से जो पहला प्रकाश (अग्नि) हुआ वह सूर्य बन गया और उसी का दूसरा हुआ भृगु। इस प्रकार भृगु अग्नि-वंशी हुए भृगु-वंशी हुए वत्स। और चौहान वत्स गोत्री हैं।

चौहानों की शाखाओं के सम्बन्ध में अन्य सूचनाएँ —

'देवड़ा सोनिगरा में से निकले। 'बोड़ा' देवड़ों में से निकले। बालोत चीबा अबीह ये खांपे निकली है (बांकीदास की ख्यात पृ १४१)। सोनिगरा महणसी रे परणासे देवी रही उण रे पुत्र हुवो नाम देवो – देव रा वंस रा देवड़ा कहाणा (वही पृ १५४)। देवड़ो निरवाण जिण रे वंश रा निरवाण कहावे (वही पृ १६१)। महणसी के ४ पुत्रों से ये चार खांपे चली— बालोजी से बालोत चीबो से चीबा अभो से अभा बोड़ो से बोड़ा।

निकुम्भ गौड़ ने इन्हें चौहान माना है किन्तु इनके ताम्र पत्रों में इन्हें सूर्यवंशी लिखा है। ये अपना निकास इक्ष्वाकु के तेरहवें वंशधर निकुम्भ से बताते हैं।

(१ ९) सोलंकियों के इतिहास का पता परमारों और चौहानों की अपेक्षा अधिक प्राचीन काल से लगता है। दक्षिण में सोलंकियों के मूल पुरुष जयसिंह का राज्याभिषेक सन् ५ ७ ई के लगभग होना स्थिर होता है (ओझा रा हि प्र पृ २८३ टिप्पण संख्या ११७)।

(११) सबसे पहले सोलंकी के ऐसा उल्लेख केवल भाटों की ख्यातों से ही प्राप्त होता है। सोलंकियों के लेख आदि तथा विक्रमांकदेवचरित में उनका अयोध्या से दक्षिण जाना लिखा मिलता है।

(ओझा रा रा हि प्र पृ २८१ टिप्पण संख्या ११९)

समय उनके प्रबल विरोधी थे। वे मलाबार[५४] के तट पर कल्याण (१११) नगर के राजा थे जहाँ आज भी उनके प्राचीन वैभव के चिह्न प्राप्त होते हैं। कल्याण से ही सोलङ्की वंश का एक राजकुमार लाया जाकर अणहिलवाड़ा पट्टन के चावड़ा राजकुल का उत्तराधिकारी बनाया गया (११२)।

विक्रमी संवत् ६८७ (ई० ९३१) (११३)में चावड़ा वंश के अन्तिम राजा भोजराज (११४) एवं भारत के वैधिक विधान शास्त्रों के प्रति उपेक्षा केवल इसलिये बरती गई ताकि युवक मूलराज सोलंकी[५५] के लिए मार्ग बनाया

---

५४ बम्बई के निकट।

५५ कल्याण से दूसरी जगह जा बसने वाले राजा जयसिंह सोलङ्की (११५) का पुत्र जिसने भोजराज की कन्या से विवाह किया था। ये तथ्य एक अत्यन्त मूल्यवान् ऐतिहासिक एवं भौगोलिक ग्रन्थ से लिये गये हैं जो अपूर्ण और बिना शीर्षक का है।

---

(१११) टॉड ने मलाबार के समुद्री तट पर बम्बई से थोड़ी दूरी पर स्थित कल्याण' को सोलंकियों की राजधानी माना है किन्तु यह ठीक नहीं है। सोलंकियों की राजधानी 'कल्याण' निजाम राज्य के अन्तर्गत थी जिसको इस समय 'कल्याणी' कहते हैं।
(ओझा रा० रा० इ० प्र० पृ० २८३ टिप्पण संख्या १२)

(११२) अणहिलवाड़ा पट्टन के राज्य का उत्तराधिकारी कल्याण से नहीं लाया गया। 'मूलराज' जो चावड़ा वंशी अपने मामा' के पश्चात राजा हुआ 'राज' का पुत्र था। इस गड़बड़ी का मुख्य कारण भिन्न २ ग्रन्थों में भिन्न २ दिया गया है। विस्तृत विवेचन के लिए देखें रासमाला प्रथम भाग–पूर्वार्द्ध पृ० ८ से ८४।

(११३) मूलराज सोलंकी के गद्दी प्राप्त करने का संवत् विभिन्न ग्रन्थों में विभिन्न मिलता है –

(क) मेरुतुङ्गाचार्य कृत प्रबन्ध चिन्तामणि (सम्पादक रामचन्द्र दीनानाथ शास्त्री) में लिखा है कि संवत् ९९३ में आषाढ़ शुक्ला १५ गुरुवार को अश्वनी नक्षत्र सिंह लग्न में दो पहर रात्रि बीते इक्कीस वर्ष की अवस्था में मूलराज गद्दी पर बैठा।

(ख) डॉ० वासुदेव शरण अग्रवाल ने डॉ० अशोक कुमार मजूमदार के मत को मान्यता दी है जिन्होंने मूलराज (पत्नी माधवी) का समय विक्रम संवत् ९९८–१ ५३ माना है।

(ग) विचार श्रेणी ग्रन्थ के अनुसार संवत् १ १७ (९६१ ई०) है।

(घ) प्रबन्ध चिन्तामणि ९९८ है।

(ङ) 'प्राचीन गुजरात' के कर्ता के अनुसार १०१७ है।

(च) रासमाला (फार्बस) ९९८ है।

(११४) प्रबन्ध चिन्तामणि रत्नमाला कुमारपाल–प्रबन्ध और प्रबन्ध–परीक्षा में इसका नाम सामन्त सिंह मिलता है। सुकृत–संकीर्तन विचार–श्रेणी तथा बम्बई की छपी प्रबन्ध-चिन्तामणि में क्रमशः भूयगड़ भूभट अथवा भूयड़ मिलता है।

(११५) जयसिंह दक्षिण में सोलङ्कियों का राज्य स्थापित करने वाला था अतः मूलराज का पूर्वज अवश्य था। मूलराज के पिता का नाम ताम्रपत्र में राजि प्रबन्ध–चिन्तामणि में राज रत्नमाला में राजकुंवर और कुमारपाल–चरित में राजि लिखा है।

था मने जिसने अणहिलवाड़ा पर ५८ वर्षों (११६) तक शासन किया। उसके पुत्र एवं उत्तराधिकारी चौंडराय[२६] के राज्यकाल में महमूद गजनवी ने अपनी विनाशकारी सेनाओं सहित अणहिलवाड़ा की राजधानी में प्रवेश(११८) किया। यहाँ की लूटी हुई सम्पदा से उसने वे भव्य विजय-स्मारक बनवाये जिनमें 'पश्चिम की दुल्हन' (नामक स्मारक) ऐसा था जो मनुष्य द्वारा निर्मित किसी पूर्णतापूर्ण स्मारक की तुलना में रखा जा सकता था। विजेताओं के इतिहास में इस लूट के धन का जो विवरण दिया गया है यद्यपि वह अविश्वसनीय लगता है किन्तु यदि (उस काल की) अणहिलवाड़ा की वाणिज्य-सम्पत्ति पर ध्यान दिया जावे तो वह विश्वसनीय ही लगेगा। यह भारत के लिए ऐसा ही था जैसे वेनिस यूरोप के लिए क्योंकि यह पूर्वीय और पश्चिमी प्रभाव की सम्पत्तियों का संगम-केन्द्र था। यह (अणहिलवाड़ा) महमूद और उसके उत्तराधिकारियों द्वारा पुनःपुनः आक्रमणों के आघातों से ऐसा पर्याप्त रूप से सम्भल गया कि इसके संस्थापक से सातवें राजा सिद्धराज जयसिंह[२७] को हम भारत के समृद्धिशाली राज्य का शासक पाते हैं यद्यपि वह युद्ध-प्रिय न था। कर्नाटक से लगा कर हिमालय की तलहटी तक के २२ राज्य (१२१) एक ही समय में उसके आधीन थे किन्तु उसके उत्तराधिकारी की विवेकहीनता के कारण पृथ्वीराज (१२२) चौहान का कोप उस पर बरस पड़ा। कुमारपाल के रूप में चौहानवंश(१२३) की एक शाखा सोलंकियों के वंश-वृक्ष पर आ लगी यह एक आश्चर्यजनक सत्य है कि इस

२६ मुसलमान इतिहासकारों ने इसे जामुण्ड (११७) लिखा है।

२७ इसने विक्रम संवत् ११५ से १२ १ (११९) तक शासन किया। इसी के राज्यकाल में एल इद्रिसी (१२०) जिसे बहुधा न्यूबियन भूगोल शास्त्री कहते हैं आया था उसने इस राजा को बौद्ध धर्म का अनुयायी बताया है।

(११६) राज्य काल ५५ वर्ष ३५ वर्ष ५२ वर्ष ४२ वर्ष आदि मिलते हैं किन्तु ५८ वर्ष नहीं।

(११७) यह चामुण्ड राय है।

(११८) महमूद गजनवी के आक्रमण के समय भीमदेव (प्रथम) राजा था।

(११९) सिद्धराज जयसिंह ने १ ९४ से ११४३ ई तक राज्य किया इसके समय के सम्बन्ध में अन्तर अवश्य मिलते हैं किन्तु बहुत थोड़े।

(१२) 'अबू अब्दुल्ला मुहम्मद अल इद्रिसी' एक प्रसिद्ध भूगोलवेत्ता था। वह मोरक्को देश के स्यूटा नगर में ईसा की ग्यारहवीं शताब्दी में पैदा हुआ था।

(१२१) यह अतिशयोक्ति मात्र है।

(१२२) सिद्धराज का उत्तराधिकारी तो कुमारपाल ही था वैसे सिद्धराज का समय ऊपर टिप्पण सं २७ में टॉडने ११५ से १२ १ माना है और पृथ्वीराजका जन्म टॉड की टिप्पणी संख्या ३१ पृ ८३ के अनुसार १२१५ई है अतः सिद्धराज की मृत्यु तक तो पृथ्वीराज का जन्म ही नहीं था तो कोप कहाँ से आ गया ?

(१२३) कुमारपाल चौहान न होकर सोलंकी ही था जो निम्न वंश-वृक्ष से स्पष्ट सिद्ध है।
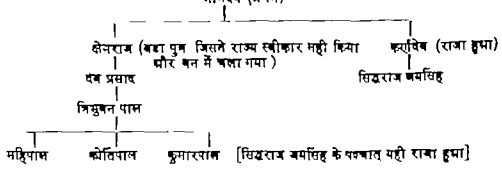
भीमदेव (प्रथम)
- क्षेमराज (बड़ा पुत्र जिसने राज्य स्वीकार नहीं किया और वन में चला गया)
  - देव प्रसाद
    - त्रिभुवन पाल
      - महिपाल
      - कीर्तिपाल
      - कुमारपाल [सिद्धराज जयसिंह के पश्चात् यही राजा हुआ]
- कर्णदेव (राजा हुआ)
  - सिद्धराज जयसिंह

बालिकरामों के वंश ने दो बार भारत के सैनिक विभाग को तोड़ने का उदाहरण प्रस्तुत किया। कुमारपाल मणहिलवाड़ा के राज्य-सिंहासन पर आसीन हुआ और उसने अपने सिर पर सोलङ्की-वंश की पगड़ी बांधी-तब वह उसी वंश का हो गया जिसमें कि वह गोद गया था। सिद्धराज और कुमारपाल दोनों ही बुद्ध धर्म (१२४) के संरक्षक थे जो स्मारक उन्होंने अथवा उनके उत्तराधिकारियों ने निर्माण कराये थे अपनी कला की पूर्णता व भव्यता के लिये प्रशंसनीय हैं। कला कौशल की उन्नति को जितना बढ़ावा मणहिलवाड़ा के राजाओं द्वारा मिला उतना सम्भवतः और किसी काल में नहीं मिला होगा।

कुमार पाल के राज्यकाल के अन्तिम दिनों में (१२५) शहाबुद्दीन के सेनापतियों ने उत्पात मचाया; इसके उत्तराधिकारी बाल मूलदेव के साथ विक्रम संवत् १२८४ (१२२८ ई) (१२६) में यह राज्य-वंश समाप्त हो गया तब सिद्धराज की सन्तति से (१२७) बीसलदेव को आधीनता में बघेला नामक नये राज्य-वंश की स्थापना हुई। धार्मिक अत्याचारों से ध्वंसित बस्तों आदि का पुनः निर्माण किया गया। प्राचीनकाल के डेल्फोस रूप (१२८) सोमनाथ के भग्न मन्दिर को बनवाया गया, इस भांति जब बालिक रामों का राज्य पुनः अपने प्राचीन वैभव को प्राप्त कर ही रहा था कि गहला कर्ण नामी भीरु राजा के काल में अलाउद्दीन के रूप में विनाशकारी यमदूत प्रकट हुआ। जिसने मणहिलवाड़ा राज्य का अन्त कर दिया। देहली के निरंकुश तातारी (बादशाह के) सेना नायकों ने अपनी धार्मिक असहिष्णुता और असीम लोलुपता के कारण गुजरात और सौराष्ट्र के वैभवपूर्ण नगरों और उपजाऊ मैदानों को तहस-नहस कर वीरान बना दिया धार्मिक द्वेष के कारण हिन्दुओं के पवित्र पर्वत[२८] पर स्थित आदिनाथ के मन्दिर के पास एक मुसलमान फकीर की समाधि खड़ी कर दी गई बुद्ध प्रतिमाएं तोड़ दी गईं और उनके धर्म-ग्रन्थों की वही दशा की गई जो इस्कन्दरिया के पुस्तकालय(१२९) की हुई थी। मणहिलवाड़ा का परकोटा गिरा दिया गया। इसकी नींव भी खोद डाली और फिर प्राचीन-मन्दिरों के भग्नावशेषों द्वारा भर दी गई[२९]।

---

२८ शत्रुञ्जय।

२९ १८२२ ई में मैंने सौराष्ट्र के जैन धर्मावलम्बियों की खोज करने के लिये यात्रा की। मैंने प्राचीन पट्टनके एक ध्वंसित उपनगर का पता लगाया जो अभी तक मणहिलवाड़ा या नहेरवाला कहलाता है। जिसे डी एनविले ने 'फोर्ड ए नोएर दि रिडोवर' लिखा है। इस राज्य और इसके शासनकर्ता राजवंशों का एक अलग इतिहास लिखने का मेरा विचार है।

---

(१२४) यहाँ जैन धर्म समझें, क्योंकि टॉड ने जैन बुद्ध और चन्द्र-वंशी बुध को एक ही मान कर लिखा है।

(१२५) शहाबुद्दीन अथवा उसके सेनानायकों ने कुमारपाल के समय में कोई उत्पात नहीं मचाया। कुमारपाल की मृत्यु ११७३ ई में हो चुकी थी। मणहिलवाड़ा पर ११७८ के पूर्व किसी चढ़ाई का हाल ज्ञात नहीं हुआ है। (रासमाला पृ २२ से २७ के आधार पर)।

(१२६) चालुक्य-वंश का शासन १२४६ ई (१३ ? दि) में त्रिभुवनपाल के पश्चात् समाप्त हुआ। बाल मूलदेव के पश्चात् भोला भीम और फिर त्रिभुवनपाल गद्दी पर बैठे। (रासमाला के आधार पर)

(१२७) सिद्धराज के ही यदि सन्तान होती तो कुमारपाल को गद्दी ही नहीं मिलती अतः बाघेले सिद्धराज की सन्तान सिद्ध नहीं होते हैं। बीसलदेव सोलंकी अवश्य था।

(१२८) प्राचीन यूनान के डेल्फी नगर का प्रसिद्ध देवता — सूर्य।

(१२९) देखें— टॉड की भूमिका पृ २ टिप्पणि संख्या ३।

सोलङ्की राज-वंश के अवशेष देश में बिखर गये। भारत का यह भू भाग एक शताब्दी से भी अधिक समय तक बिना प्रधान शासक के रहा। फिर एक दूरवर्ती शासक ने इसका व्यवस्थित ढंग से प्रबन्ध कर इसकी नीवों का पुनर्निर्माण प्रारम्भ किया। यह वीर पुरुष उसी जाति का था जिस मूल जाति के शुद्धिकरण से अग्निकुलों का निर्माण हुआ था। यद्यपि सिहारन टाक ने अपनी जाति छुपाने के लिए नया नाम जफरखान धारण कर लिया था। यह मुजफ्फर के नाम से गुजरात की गद्दी पर बैठा जिसे वह अपने पुत्र के लिए छोड़ गया। इस पुत्र का नाम अहमद था जिसने अहमदाबाद बसाया जिसके अत्याधिक विशाल भवन उसके आसपास के ध्वंसित प्राचीन नगरों के पत्थरों से बनाये गये थे।

यद्यपि सोलङ्की वंश-वृक्ष को इस प्रकार निर्मूल कर दिया गया किन्तु भारतीय वटवृक्ष की भाँति उसकी अन्य शाखाओं ने अन्य स्थानों पर अपनी जड़ें जमा ली थीं। इनमें सर्वाधिक प्रख्यात बाघेला[१०] कुल है जिसके नाम पर भारतवर्ष के एक खण्ड का नाम पड़ा और इस बाघेल-खण्ड पर कई शताब्दियों से सिद्धराज के वंशज राज्य कर रहे हैं।

गुजरात में बाघेला जाति की भोमियों के अतिरिक्त अन्य कई छोटी-छोटी जागीरें भी हैं। इनमें पीथापुर और थराद अधिक प्रसिद्ध हैं। मेवाड़ के द्वितीय श्रेणी के सामन्तों में भी एक सोलङ्की सरदार है। जो अपने को सिद्धराज का वंशज बताता है। यह रूपनगर[११] का जागीरदार है। उसका गढ़ मारवाड़ को जाने वाले एक दर्रे पर स्थित है। इसके वंश की ख्यातों में सीमा सम्बन्धी झगड़ों का एक अच्छा चित्र मिलेगा। अभी पिछले दिनों तक इनमें से कुछ ही अपनी स्वाभाविक मृत्यु के कारण मरे हैं। सोलङ्की-वंश सोलह शाखाओं में विभाजित है:—

१ बाघेला— बाघेल-खण्ड के राजा (बान्धो गढ़ राजधानी) पीथापुर, थराद और अदलज के राव।
२ वीरपुरा— लूनावाड़ा के राव।
३ बेहिला— मेवाड़ में कल्याणपुर के जागीरदार, जो राव कहलाते हैं। किन्तु सलुम्बर के ठाकुर की सेवा में हैं।
४ भुरता, ५ कालेचा[१२] — जैसलमेर के थल टेकरा और बाहिर में। ६ लंघा—मुलतान के आसपास के मुसलमान।
७ तोगरू और ८ ब्रीकू— पञ्जाब के मुसलमान। ९ सीरके—दक्षिण में।
१० सिरवरिया[१] —सौराष्ट्र के गिरनार में। ११ रावका—जयपुर के टोडा में।
१२ रणकिया— मेवाड़ में देसुरी में। १३ खरुरा—आलोट और जावरा (मालवा) के निवासी।
१४ तांतिया— चन्दभर शकुन बरी[१३]। १५ अलमेचा—भूमिहीन।
१६ कुलामोर— गुजरात के निवासी।

---

१ इस उपशाखा का नाम सिद्धराज के पुत्र* वाघराव के नाम पर पड़ा यद्यपि भाट इस वंश-परम्परा की अन्य ही उत्पत्ति बताते हैं।

११ मैं इस ठिकानेदार को भली भाँति जानता हूँ। यह अपनी जाति का एक उत्तम प्रतिनिधि है। इसके पास बारासिंह का (युद्ध के समय में बजाने का) प्रसिद्ध शङ्ख है।

१२ मरुभूमि के जाने-माने लुटेरे, जो थल-पूत कहलाते हैं।

१३ (परम्परागत इतिहास) ख्यातों में अत्यन्त प्रसिद्ध हैं।

१४ मिस्टर डाबू। मैंने १८०७ ई. में इसके स्थान को तोपों की बौछारों से नष्ट-भ्रष्ट होते हुए देखा है, जबकि गुजरात करीम पिंडारी को सिन्धिया ने कैद किया था। तत्पश्चात् १८१७ में अंग्रेजों को भी यहाँ अपना रक्त बहाना पड़ा।

---

* देखें पिछले पृ० १५२ की टिप्पणी संख्या १३७

प्रतिहार अथवा पड़िहार (१३०)

अग्निकुलों की इस सब से छोटी और अन्तिम जाति के विषय में हमें कुछ अधिक नहीं कहना है। राजस्थान के इतिहास में पड़िहारों का कोई महत्वपूर्ण योगदान (१३१) नहीं रहा है। वे सदैव पराधीनता की अवस्था में देहली के तंवर अथवा अजमेर के चौहान राजाओं के आधीन सामन्त रहे हैं। अपनी स्वतन्त्रता की रक्षा के लिए नाहरराव का पृथ्वीराज से संघर्ष ही उनके इतिहास का उज्ज्वलतम पृष्ठ है। यद्यपि यह संघर्ष असफल ही रहा किन्तु इसने इन्हें महत्वपूर्ण प्रसिद्धि यह दी कि अरावली की घाटियों का वह स्थान जहाँ यह संघर्ष[१४] हुआ था उनके नाम से प्रसिद्ध हो गया।

मंडोवर[१५] (प्राचीन नाम मन्डोदरी) पड़िहारों की राजधानी और मारवाड़ का एक प्रमुख नगर था। राठोड़ों के आक्रमण करके बसने से पूर्व यह इस जाति के आधिपत्य में था। यह नगर वर्तमान जोधपुर से पाँच मील उत्तर में स्थित है। वहाँ प्राचीन वर्णमाला पाली लिपि (१३३) के कुछ नमूने शिल्पकला के कुछ ध्वंसित भाग और जैन मन्दिर अभी तक विद्यमान हैं।

कन्नौज से भाग कर आये राठौड़ राजाओं ने यहां शरण ली। इस उपकार का प्रतिफल राठोड़ो ने अपने कपटाचरण से इस भांति दिया कि राठोड़ो के इतिहास प्रसिद्ध व्यक्ति चूंडा ने पड़िहारों के अन्तिम राजा से शासन की

---

१५ यद्यपि यह दुर्ग अब वीरान पड़ा है, किन्तु इसकी भव्य प्राचीरें इसके अत्यन्त प्राचीन होने का प्रमाण देती हैं; यह एक ऐसा कार्य है जिसे आज के पतनोन्मुख काल में नहीं किया जा सकता। इसे देख कर वोल्टेरा या कोरटोना अथवा टस्कनी (१३२)के अन्य प्राचीन नगरों के खण्डहर याद आते हैं। बिना सीमेंट लगाये बड़े बड़े चौकोर पत्थरों से इसका निर्माण किया गया है।

---

(१३०) टॉड तथा पृथ्वीराज रासो के अनुसार ये अग्निवंशी हैं किन्तु प्राचीन शिला-लेख आदि से इनका सूर्यवंशी होना सिद्ध होता है यथा—

'स्वभ्राता रामभद्रस्य प्रतिहार्यं कृतं यत ।

यी प्रतिहारवंशोऽयमतश्चोन्नतिमाप्नुयात्। एपिग्राफिया इंडिका जिल्द १८ पृ १५।

इसके अतिरिक्त ग्वालियर-प्रशस्ति में इस वंश के राजा वत्सराज को इक्ष्वाकु क्षत्रियों में अग्रणी कहा गया है। 'राजशेखर' ने महेन्द्रपाल को 'रघुकुल तिलक' (विद्धशाल भंजिका सर्ग १ श्लोक ६) और 'रघुग्रामणी (बालभारत सर्ग १ श्लोक ११) तथा महीपाल को 'रघुवंशमुक्तामणी (वही १।७) लिखा है।

(१३१) ओझाजी के मतानुसार पड़िहारों का राज्य कन्नौज के १६ मील उत्तर पूर्व श्रावस्ती से लगा कर काठियावाड़ के दक्षिणी भाग तक और कुरुक्षेत्र के पश्चिम से लगा कर बनारस के पूर्व तक के प्रदेशों में था।

(१३२) ये तीनों स्थान इटली में हैं।

(१३३) मंडोवर में पाली अक्षरों का कोई लेख अब तक प्राप्त नहीं हुआ।

नागोर छीन कर (११४) मंडोवर गढ़ पर अपना झण्डा फहरा दिया।

मेवाड़ के राजाओं ने इस से पूर्व ही पड़िहारों की शक्ति को क्षीण कर दिया था। उन्होंने न केवल उनका भू-भाग ही छीना अपितु पड़िहार राजाओं की उपाधि 'राणा' ¹¹ भी स्वयं धारण कर ली।(११५)

पड़िहार राजस्थान में बिखरे हुए हैं किन्तु जहाँ तक मुझे विदित है यहां इनकी कोई स्वतन्त्र जागीर नहीं है। कोहरी सिन्धु और चम्बल के संगम पर इनके चौबीस गांवों की एक आबादी विद्यमान है, तथा इन नदियों की गहरी घाटियों के मध्य दूर–दूर तक इनकी कुछ झोपड़ियां भी फैली हुई हैं। ये नाम-मात्र को ही सिन्धिया की प्रजा थे किन्तु चम्बल नदी पर की हमारी रक्षात्मक पंक्ति की दृष्टि से यह आवश्यक था कि यह भूभाग अंग्रेजों की आधिपत्यमें ले लिया जावे अतः हमने ठग इतिहास के सबसे कुख्यात चोरों(११६)के इस समूहको अपने राज्य के अन्तर्गत ले लिया।

पड़िहारों की बारह शाखायें हैं इन में ईंदा और सिन्धुल मुख्य हैं। इन दोनों के कुछ व्यक्ति अब भी लूणी नदी के तट पर मिलते हैं।

---

११. यह १३ वीं शताब्दी में हुआ जब कि चित्तौड़ के रावल का मंडोवर पर अधिकार हुआ और वहाँ का राजा मारा गया।

---

(११४) मंडोवर का दुर्ग पड़िहारों ने राव चूंडा को दहेज में दिया था। साक्षी का दोहा इस प्रकार है—
ईंदा रो उपकार, कमधज कदे न वीसरे।
चूण्डो चंवरी चाड़ दियो मंडोवर दायजे॥ (जयमल-वंशप्रकाश पृ ५२)

(११५) टॉड की इस मान्यता का कारण भाटों की निम्न कथा है— 'रावल रत्नसिंह (अलाउद्दीन खिलजी के विरोधी) के उत्तराधिकारी रावल कर्णसिंह के दो पुत्र माहप और राहप थे। रावल कर्णसिंह ने अपने पुत्रों को आज्ञा दी थी कि मंडोवर के पड़िहार राजा मोकर्णसिंह को पकड़ लाओ क्योंकि वह मेवाड़ में लूट-मार करता है। माहप से कुछ न हुआ और राहप उसे पकड़ लाया तब कर्णसिंह ने मोकर्णसिंह की 'राणा' की पदवी राहप को प्रदान की।

किन्तु यहां आपत्ति यह है कि 'राहप' और 'हम्मीर' के पूर्वज कभी मेवाड़ के स्वामी नहीं हुए। वे तो सीसोदा गाँव के मालिक थे। अलाउद्दीन खिलजी के समय में रावल रत्नसिंह से चित्तौड़ का दुर्ग छूटने के पश्चात् उसके वंशज डूंगरपुर की ओर चले गये। तब छोटी शाखा वाले राहप के पुत्र हम्मीर ने मौका पाकर चित्तौड़ का दुर्ग ले लिया तब से मेवाड़ पर राणाओं का अधिकार हुआ।

इस सम्बन्ध में यह बात भी विचारणीय है कि छोटी शाखा वालों का खिताब 'राणा' होता रहा ज्ञात होता है जैसे–मेवाड़ के गुहिलोतों अणहिलवाड़ा के सोलंकियों तथा मेवाड़के पड़िहारों की यह पदवी थी।

(११६) ये शब्द टॉड ने मात्र अंग्रेजों की उच्चता प्रदर्शन-स्वरूप राजनैतिक दृष्टि से लिखे हैं अन्यथा इसका कोई प्रमाण नहीं मिलता।

चावड़ा अथवा चावरा[137]

इस जाति ने भी एक बार भारतीय इतिहास में प्रसिद्धि प्राप्त की थी। यद्यपि अब इसका नाम बहुत कम सुनने में आता है, या फिर भाटों के पैकों में ही मिलता है। इनकी उत्पत्ति के सम्बन्ध में हमें कोई ज्ञान नहीं है। यह जाति न तो सूर्य-वंशी है और न चन्द्र-वंशी अतः हम इसे सीथियन (१ ७) उत्पत्ति की मान लेते हैं। इस जाति का नाम हिन्दुस्तान में प्राप्त नहीं होता। इनका नाम केवल सौराष्ट्र तक उसी भांति सीमित है, जिस प्रकार कई अन्य जातियों का जिनकी उत्पत्ति सिन्ध पार के प्रदेशों में हुई थी। यद्यपि इनकी उत्पत्ति भारत में नहीं हुई तथापि भारत में आकर रहने का इनका समय अत्यन्त प्राचीन काल में होना चाहिये क्योंकि हम इस जाति के व्यक्तियों को मेवाड़ के सूर्य-वंशी राजाओं के पूर्वजों के साथ जब कि वे बल्लभी के स्वामी थे विवाह आदि सम्बन्ध करते हुए पाते हैं।

चावड़ों की राजधानी सौराष्ट्र के तट पर दीव बन्दर में थी। सोमनाथ (१४१) का प्रख्यात मन्दिर तथा कई अन्य मन्दिर जो सोमनाथ और सूर्य के हैं वे सौरों[17] अथवा सूर्य की उपासक इसी जाति ने बनवाये थे। सम्भवतः इसी कारण इस जाति तथा इस ग्राम द्वीप[18] का यह नाम पड़ा हो।

एक प्राकृतिक दुर्घटना वश अथवा जिस भांति चमत्कारिक लेखक इसे लिखेंगे, समुद्र के अधिकारों को न मान कर दीव के राजा ने समुद्री डकैती की तो उसे दण्ड देने के लिये समुद्र ने उसकी राजधानी को जलमग्न कर दिया।

---

१७ बाक्ट्रिया के विषय के लिखने वाले यूनानी लेखकों का 'सुरोई' प्रदेश अपोलोडोटस के प्राचीनतम बैक्ट्रियन राज्य की सीमा के निकट का भूभाग था। इस विषय में 'ट्रैन्सैक्शन्स आफ रायल एशियाटिक सोसायटी' खंड १ में यूनानी मुद्राओं से सम्बन्धित लेख देखिये।

१८ दक्षिण एवं पश्चिमी भारत के बहुत से निवासी 'श' का उच्चारण नहीं कर सकते अतः वे इसके स्थान पर 'स' का प्रयोग करते हैं। जैसे कि पिंडारी नेता 'चीतू' को दक्षिणी 'सीतू' पुकारते हैं। इसी भांति मरु-भूमि की कई जातियों के लिये 'स' का उच्चारण कठिन पड़ता है, जिसके कारण कई आश्चर्यजनक भूलें होती हैं, जैसे 'जैसलमेर' जिसका अर्थ जैसल का पहाड़ है 'जेहलमेर' अर्थात् मूर्खों का पहाड़ हो जाता है।

---

(१३७) (क) चावड़े स्वयं को परमारों की एक शाखा मानते हैं जिसकी पुष्टि निम्न पद्य द्वारा भी होती है—
"प्रथम धाम धरिस धरण गगा गेण सगायो। धरधुर धीधी धाण हेम धौंनरन्दो धायो॥
परवरियो परमार बास भिन्नमाल बसायो। नवकोटि कर नैत्र नेत्र आगणी असायो॥
भोगवे भोग दातु भणा रगायन तणो राखियो रंग। वणराज नृ वरे धापियो दममो अणहलपुर दुरग॥
(ख) इस वंश का नाम कुछ ग्रन्थों में चापोत्कट मिलता मिलता है। किन्तु लाट देश के सोलंकी पुलकेशी के ताम्रपत्र में (जो ७३१ ई का है) 'चावोत्क' नाम प्राप्त होता है। वि सं ६८५ (ई ६२८) में ब्रह्मगुप्त ने भिन्नमाल के 'चाप-वंशी' राजा व्याघ्रमुखके राज्यकाल में 'ब्रह्मसिद्धांत' लिखा था। अधिकतर विद्वानों के मतानुसार ये सभी नाम चावड़ा-वंश के हैं।

(१३८) सोमनाथ मन्दिर के एक शिलालेख से ज्ञात होता है कि यह मन्दिर बहुत प्राचीन काल में बना हुआ है अतः चावड़ों के राज्य से पूर्व का होना चाहिए। प्राचीन काल में काठियावाड़ आदि की तरफ बहुधा मन्दिर लकड़ी के बनाये जाते थे और सुलतान महमूद गजनवी ने जो सोमनाथ का मन्दिर तोड़ा था वह लकड़ी का ही बना हुआ था ऐसा इब्न असीर के लेख में पाया जाता है। पत्थर का मन्दिर पीछे भीमदेव ने बनवाया था।

यह सारा तट ही मीना है अतः ऐसी कल्पना की जाना असम्भव नहीं है। यह भी सम्भावना है कि इन्होंने अरबों के आक्रमणों से बाध्य होकर दीव बन्दर छोड़ा हो जो इस काल में इन्हीं भागों में व्यापार करते थे और उनके कुछ जहाजों को लूट लेने के परिणाम स्वरूप ही चावड़ों को यह कष्ट भोगना पड़ा हो। यह घटना ऐसी ही किसी अन्य राजनैतिक विपत्ति के कारण भी हो सकती है। इसका विश्वास करने के लिये मेवाड़ की ख्यातों में प्रमाण मिलते हैं जिनमें लिखा है कि इस वंश के राजाओं ने चावड़ों को सौराष्ट्र प्राय-द्वीप तथा आसपास के अन्य प्रदेशों पर पुनः अधिकार कर लिया जिन्हें वे पहिले गंवा चुके थे।

इन समस्त घटनाओं के पश्चात् दीव के राजा ने वि सं ८ २ (ई ७४६ में) (१३६) अणहिलवाड़ा पट्टण की नींव डाली जो आगे बढ़ कर वल्लभी के स्थान पर भारत के इस भूभाग का प्रमुख नगर (अथवा राजधानी) बन गया इसी से यहाँ के राजाओं की उपाधि 'बलिकराय' हो गई जिन्हें प्राचीन अरब यात्रियों ने तदपश्चात यूरोप के यूरोप-नेताओं ने 'बलहारा (१४) कहा है।

वनराज (देशी भाषा में वनराव) ही इसका संस्थापक था। उसके वंश ने १८४ वर्षों तक (१४१) शासन किया। इसके उपरान्त जैसा कि चालुक्य जाति के वृत्तान्त में लिख आये हैं संस्थापक से सातवें राजा भोजराज(१४२) को उसके भानजे ने गद्दी से हटा दिया। इस वंश के राज्यकाल में कई अरब यात्री इनके दरबार में आये। जिनका वे अस्पष्ट वृत्तान्त (१४३) छोड़ गये हैं। फिर भी चावड़ा वंश के सम्बन्ध में हम सम्पूर्णतः अन्धकार में नहीं हैं क्योंकि मेवाड़ के ऐतिहासिक ग्रन्थ 'खुमाण रासो' में यवनों के प्रथम आक्रमण के विरुद्ध चित्तौड़ की रक्षा के लिए आई हुई सहायक सेनाओं में एक का सेनापति चेतनसी (१४४) (चावड़ा) का उल्लेख प्राप्त होता है।

जब महमूद गजनवी ने सौराष्ट्र पर आक्रमण कर उसकी राजधानी अणहिलवाड़ा पर अधिकार कर लिया तो उसने उसके तत्कालीन राजा को राज्य-सिंहासन से पृथक कर दिया। फरिश्ता के लिखे अनुसार महमूदने उसके स्थान

११ रैनोडो लिखित— रैलासियों ऑशियन दे वोयाजियोर (प्राचीन यात्रियों के विवरण)।

(१३६) मेरुतुंगाचार्य कृत 'प्रबन्ध चिन्तामणि' के लेखानुसार सं ८ २ वैशाख शु २ सोमवार तथा पाटण गणेश के लेख में सं ८ २ चैत्र शु २ और राज वंशावली में सं ८ २ श्रावण शु २ सोमवार वृष लग्न लिखा है। मूलचन्द शास्त्री के मतानुसार यह तिथि आषाढ़ शु ३ सं ८ २ है।
ओझा जी मेरुतुंगाचार्य कृत 'विचारश्रेणी' ग्रन्थ के आधार पर वनराज के राज्य का प्रारम्भ ही वि सं ८२१ से मानते हैं राव बहादुर गोविन्ददास भाई ने अपने ग्रन्थ 'प्राचीन गुजरात' में भी इसी समय को स्वीकार किया है।

(१४) बलहारा' राष्ट्रकूट 'वल्लभराज' को लिखा है—वासुदेवशरण अग्रवाल (रासमाला की भूमिका पृ ११)

(१४१) कई प्राचीन और अर्वाचीन ग्रन्थकारों के मतानुसार इस वंश ने १६६ वर्ष राज्य किया। मेरुतुंगाचार्य कृत 'प्रबन्ध चिन्तामणि' (रामचन्द्र दीनानाथ की टीका) के अनुसार १६ वर्ष १ मास ३ दिन राज्य किया। मुहणा नणसी के अनुसार १६८ वर्ष होना है।

(१४२) देखिये पृ १५१ की टिप्पणी सं ११४।

(१४३) देखिये रासमाला (हिन्दी) (प्रथम भाग पूर्वार्द्ध) पृ सं ६८ से ७१।

(१४४) चेतनसी चावड़ा द्वारा चित्तौड़ की रक्षार्थ सेना लेकर आने का अन्य कोई प्रमाण अब तक प्राप्त नहीं हुआ है।

पर उसने पहले राजवंश के एक राजा को जो अपने प्राचीन वंश गौरव और रक्त की शुद्धता के लिए प्रसिद्ध था सिंहासन पर बिठाया। उसका नाम दाविशासिम (१४२) था यह नाम समस्त यूरोपियन टिप्पणकर्त्ताओं के लिए एक पहेली बन गया। अस्तु। शाबी एक प्रसिद्ध जाति थी जो कुछ लोगों के मतानुसार चावड़ों की ही एक शाखा थी। अत यह शब्द शाबी और चावड़ा का सम्मिश्रण (समास) हो सकता है, अथवा चूड़ामणा किर्टे कई (विद्वान्) प्राचीन यदु जाति की एक शाखा मानते हैं।

सूर्यवंशी राजाओं और सौराष्ट्र के चावड़ों अथवा सौरों के मध्य यह प्राचीन सम्बन्ध एक हजार वर्ष से से अधिक समय बीत जाने पर भी आज तक बने हुये हैं यद्यपि राजस्थान में प्रथम श्रेणी के राणा परिवार से विवाह सम्बन्ध स्थापित करके एक हिन्दू राजा उत्तम गौरव प्राप्त कर सकता है, फिर भी राम'का वंश चलाने के लिए दीन हीन चावड़ा वंश ही चुना जाता है। एक सौ राजाओं वाले वंश के वर्तमान युवराज जवानसिंह एक चावड़ी माँ के पुत्र हैं, जो गुजरात के एक छोटे से सामन्त की पुत्री (१४१) है।

टाँक अथवा तक्षक

तक्षक उस जाति का सामान्य नाम होना चाहिये जिससे विभिन्न सीथियन जातियां निकलीं जिन्होंने अत्यन्त प्राचीन काल में भारत पर आक्रमण किया था। यह बैटे से भी पुराना नाम ज्ञात होता है, जिससे अपरिगत शाखायें प्रस्फुटित हुई थीं। इन दोनों नामों को पृथक करना अन्याय ही होगा क्योंकि यह कहना असम्भव सा ही है कि इन जातियों का आदि नाम कौन सा है जो अपने देश तक्षाई या तक्षक द्वीप अर्थात् बड़े बैटे के देश के अनुसार सीथियक कहलाती थी।

अबुल गाजी तातक* को तुर्क अथवा तर्गोताई का पुत्र बताता है जो पुराणों का तुरुष्क चीनी इतिहासकारों का तक्युक्स और स्ट्रैबो का तुमक्कक टोचरी प्रतीत होता है जिसने कि बैक्ट्रिया के यूनानी राज्य को उलटने में सहायता की और एशिया के एक बड़े भूभाग का नामकरण टोखरिस्तान*[१] अथवा तुर्किस्तान अपने नाम पर किया। यह भी एक

७ अबुल गाजी का कथन है कि नौका छोड़ देने के पश्चात् नूह ने पृथ्वी अपने तीन पुत्रों में बांट दी। साम को ईरान मिला जफेट को 'कुत्तुप सैमेक' का देश मिला जो कैस्पियन सागर और भारत के मध्यवर्ती प्रदेशों का नाम था। यहाँ वह २५ वर्ष जीवित रहा। इसके आठ पुत्र हुए इनमें सबसे बड़ा तुर्क और सातवां कमरी था। इसे (ईसाइयों की) धर्म पुस्तक का गोमर समझा जाना चाहिये।

तुर्क के चार पुत्र हुए, इनमें सबसे बड़ा तनक था। इसकी चौथी पीढ़ी में मुगल हुआ। जो मंगोल का अपभ्रंश है और जिसका अर्थ उदास है। इसके उत्तराधिकारियों ने केराकोर्म को अपना शीतकालीन निवास-स्थान बनाया इसके शासनकाल में सत्य धर्म का लेश मात्र भी पता नहीं चलता था। सर्वत्र मूर्ति-पूजा का बोलबाला था। औघुज खाँ इसका उसका उत्तराधिकारी हुआ।

प्राचीन किम्ब्री जाति जो ओडियन की विट अट्टी और यु जातियों की सेना के साथ पश्चिम में गई थी वह सम्भवतः तुर्क के पुत्र कमरी के वंशजों की जातियों में से थी।

७१ खारिज्म(चौरस्मिया)(१४७)के बड़े भागके नामके साथ'तक्षक'तब तक चलता रहा जब तक कि उन्होंने इस्लाम

(१४२) इसके विस्तृत विवरणके लिए देखें—रासमाला प्रथम भाग पूर्वार्द्ध (हिन्दी) पृ सं १६१ से १६४।

(१४१) मेवाड़ के राणा भीमसिंह का विवाह माही कांठा में वरसोड़ा के ठाकुर जगतसिंह की लड़की से हुआ था। इसी से जवानसिंह का जन्म हुआ था।

(१४७) तुर्किस्तान का प्राचीन राज्य।

बहुत बड़ी सम्भावना है कि अब भी इन प्रदेशों में बिखरी हुई ताक्षिक[७१] जाति जिसका इतिहास एक रहस्य बना हुआ है तक्षक जाति की ही सन्तति हो।

यह पहले ही वर्णन किया जा चुका है कि राजस्थान के विभिन्न भागों में तुष्टा तक्षक अथवा टॉक जाति के पाली अथवा बौद्ध वर्ण माला में लिखे हुए शिलालेख (१४८) प्राप्त हुए हैं, जो मोरी परमार और उनकी सन्तानों से सम्बन्ध रखते हैं। संस्कृत में नाग और तक्षक सर्प के पर्यायवाची शब्द हैं और तक्षक ही भारतका प्राचीन वीरता सम्बन्धी इतिहास का नाम-वंश है। महाभारत अपनी रूपकमयी शैली में इन्द्रप्रस्थ के पाण्डवों और उत्तर के तक्षकों के मध्य युद्धों का वर्णन करता है। तक्षक द्वारा परीक्षित का वध और परीक्षक के पुत्र और उत्तराधिकारी जनमेजय द्वारा उनके विरुद्ध विनाशकारी युद्ध चलाना और अन्त में उन्हें अपना करद बनाने को बाध्य कर देना, यह कथा उसके कनक को हरा देने के पश्चात[७३] स्पष्ट ऐतिहासिक तथ्य प्रस्तुत करती है।

धर्म स्वीकार न कर लिया। चंगेज़ खाँ के शत्रु और जलाल के पिता का नाम भी तक्षक था जेक्सार्टीज के किनारे पर स्थित तुर्किस्तान की राजधानी ताशकन्द का नाम भी इसी जाति के नाम पर पड़ा होगा।

वेयर कहता है "टोखारिस्तान टोखारी लोगों का देश था, जो प्राचीन टोखराई अथवा तखुराई थे।" अम्मियानस मार्सेलिनस कहता है "अनेक जातियाँ बैक्ट्रियनों की आज्ञा का पालन करती हैं जिनमें टोखारी मुख्य हैं।" "हिस्ट्री रेस वेयर पृ ७।

७२ एल्फिन्स्टन ने काबुल राज्य के अपने प्रशंसनीय वृत्तान्त में इस अनोखी ताजिक जाति के विषय में कई बार लिखा है। 'बायजेसट औरंगजेब और बुखारा' नामक रोचक ग्रन्थ में यह विशिष्ट रूप से लिखा है कि इन लोगों ने बुखारा राज्य के वाणिज्य सम्बन्धित कारोबार पर अपना एकाधिकार कर रखा है। उस ग्रन्थ में जो मानचित्र दिया है उसमें प्रथम बार प्रामाणिक रूप से जाक्सर्टीस और जेक्सार्टीज नदियों के उद्गम स्थल और बहाव मार्गों को दिखाया गया है।

७३ नागों के विरुद्ध इस युद्ध का पूर्ण विवरण महाभारत में दिया गया है जिसमें उसने एक ही आक्रमण में बीस हजार को बन्दी बना कर अग्नि में जला (होम) दिया। आश्चर्य की बात तो यह है कि हिन्दू इन बातों को ज्यों की त्यों स्वीकार कर लेते हैं। यह कहा जा सकता है कि यह कार्य उसमें अत्यन्त कठिनाइयों में पड़ कर किया होगा। बीस हजार मनुष्यों का इस भांति बर्बरतापूर्ण बलिदान उसी भांति असम्भव है, जिस भांति इस कार्यके लिए बीस हजार नागोंका प्राप्त करना। किन्तु लेखक जानता है कि बर्बरता क्या नहीं करा सकती? अतः इस नर-बलि के प्रमाणों की बात छोड़िये। शायद यह इस सीमा तक न हुआ हो यद्यपि यह असम्भव नहीं है। सन् १ ११ में लेखक को उसकी ड्यूटी पर चम्बल की घाटी के गूजरगढ़ नामी परगने का सर्वेक्षण करने को बुलाया गया था इस जिलेमें विशेषकर गूजर बसते थे जो इराक के पुत्रों की भांति झगड़ालु और स्वतन्त्र स्वभाव के थे। उनका हाथ सदैव दूसरों पर और दूसरों का हाथ सदैव उन पर उठता रहता था। भरतपुर के बाद राजा सूरजमल ने जो उनका नाम-मात्र को राजा था, जिसने इन ग्रामों की जनसंख्या के लिए ठीक उसी रीति का अवलम्बन किया जिसका कि जनमेजय ने तक्षकों के लिए किया था, अर्थात् जिन्हें उसने रात को आक्रमण करके पकड़ा उन्हें जकड़ कर भट्टों में धकेल कर (उसी भांति) जला दिया। यह घटना केवल चौसठ शताब्दी पूर्व की है।

---

(१४८) देखिये पहिले अध्याय खण्ड पृ १ टिप्पणी सं २२–२९।

सिकन्दर के भारत आक्रमण के समय पैरोपेमिसन पर्वत माला में पैरिटाकी' अर्थात पहाड़ी—टॉक बसे हुए थे अतः यह भी सम्भावना है कि जिस तक्षलेस[७४] (१४९) ने मैसिडोनिया के राजा का साथ दिया था वह टांक लोगों का राजा(ईश) हो। जैसलमेर के भाटी राजाओं के प्रारम्भिक इतिहास के अनुसार जब उन्हें जाबुलिस्तान से निष्कासित कर दिया था तो उन्होंने सिन्ध पर बसे हुए टांक लोगों को वहाँ से खदेड़ दिया और उनके प्रदेश में वे स्वयं बस गये। इनकी राजधानी सलभानपुर थी। इस घटना का काल युधिष्ठिर संवत् का ३ ०८वां वर्ष (१२३) दिया गया है, अतः यह भी असम्भव नहीं है कि तँवर सम्राट विक्रमादित्य विजेता सालिवाहन (१२४)अथवा सालवाहन (जो तक्षक था) उसी कुल का हो जिसे भाटियों ने सिन्ध से दक्षिण की ओर खदेड़ दिया था।

---

७४ एरियन (१२०) के मतानुसार उसका नाम आम्फिस (१२१) था। उसी समय उसके पिता की मृत्यु हो जाने से उसने सिकन्दर की आधीनता स्वीकार कर ली अतः उसने उसके पिता का राज्य और उपाधि 'तक्सिलेस' उसे प्रदान कर दी। इससे यह परिणाम भी निकलता है कि टांक से ही सिन्धु का नाम 'अटक' (१२२) पड़ा हो, जिसका वर्तमान अर्थ अटक अर्थात् रोकना नहीं है, यह तो मात्र उस समय से हुआ जब इस्लाम ने इस नदी को दो धर्मों के मध्य की सीमा बना दी।

---

(१४९) बौद्ध लेखक तक्षशिला को तक्षशिरा का पर्याय मानते हैं। इस नाम की उत्पत्ति का कारण यह है कि एक समय बुद्धदेव ने एक भूखे सिंह को अपना मस्तक काट कर दिया था। (तक्ष—काटना शिर—सिर) इससे यहाँ का नाम 'तक्षशिरा' पड़ा। 'र' के स्थान में 'ल' लिखने का प्रचार होने के कारण उसका रूपान्तर तक्षशिला हो गया।

(१२) मैगस्थनीज और नियार्कस आदि के आधार पर इसने सिकन्दर का इतिहास लिखा है। यह ईसा की दूसरी शताब्दी में हुआ था।

(१२१) सिकन्दर के इतिहासकारों ने तक्षशिलेश को 'ओम्फिस' लिखा है किन्तु डायाडोरस ने इसका नाम मोफिस लिखा है। 'ओम्फिस' किस नाम का अप्र रूप है कहा नहीं जा सकता किन्तु आम्भी से यह अवश्य ही मिलता जुलता है।

(१२२) टॉडकी यह धरन्कल्पना सर्वथा निराधार है। अटक सिन्ध नदी का नाम नहीं है वरन सिन्ध नदी के पूर्वी तट पर बसे हुए नगर का नाम है। अटक का किला अकबर ने ही बनवाया था। अतः आइन-इ-अकबरी' में प्रथम बार यह नाम मिलता है। (आइन अंग्रेजी अनुवाद खण्ड २ पृ ३१६)

(१२३) यह एक विचारणीय तिथि है।

टॉड ने काल गणना (अध्याय पाँचवाँ) में इस पर ध्यान नहीं दिया है यदि इसे मान्यता दी जावे तो महाभारत का समय स्वतः निश्चित हो जाता है। युधिष्ठिर शाक (संवत्) का प्रारम्भ ११११ ई० पू में होता है अतः यह समय होगा— (११११-३० ८) १ १ ई पू०।

भाटियों द्वारा सलभाणपुर बसाने का समय कुछ ग्रन्थों में बहुत आगे का लिया हुआ है।

यदि यह मानें कि इन्होंने सालिवाहन को खदेड़ कर स्थापना की तो तिथि बहुत आगे चली जाती है। इस सम्बन्ध में अधिक खोज आवश्यक है।

(१२४) सालिवाहन विक्रमादित्य का विजेता नहीं था। दोनों के सम्वत् का अन्तर ही बहुत बड़ा है।

बहुत बड़ी सम्भावना है कि अब भी इन प्रदेशों में बिखरी हुई ताजिक[७१] जाति जिसका इतिहास एक रहस्य बना हुआ है तक्षक जाति की ही सन्तति हो।

यह पहले ही वर्णन किया जा चुका है कि राजस्थान के विभिन्न भागों में तुष्टा तक्षक अथवा टॉक जाति के पन्नी अथवा बीच वर्ष मामा में लिखे हुए शिलालेख (१४८) प्राप्त हुए हैं, जो मोरी परमार और उनकी सन्तानों से सम्बन्ध रखते हैं। संस्कृत में नाग और तक्षक सर्प के पर्यायवाची शब्द हैं और तक्षक ही भारतका प्राचीन वीरता सम्बन्धी इतिहास का नाम वंश है। महाभारत अपनी रूपकमयी शैली में इन्द्रप्रस्थ के पाण्डवों और उत्तर के तक्षकों के मध्य युद्धों का वर्णन करता है। तक्षक द्वारा परीक्षित का वध और परीक्षत के पुत्र और उत्तराधिकारी जनमेजय द्वारा उनके विरुद्ध विनाशकारी युद्ध चलाना और अन्त में उन्हें अपना करद बनाने को बाध्य कर देना यह कथा उसके रूपक को हटा देने के पश्चात्,[७३] स्पष्ट ऐतिहासिक तथ्य प्रस्तुत करती है।

धर्म स्वीकार न कर लिया। चीन् खाँ के शत्रु और जलाल के पिता का नाम भी तक्षक था जैक्जार्टीज के किनारे पर स्थित तुर्किस्तान की राजधानी ताशकन्द का नाम भी इसी जाति के नाम पर पड़ा होगा।

डेगर कहता है "टोखरिस्तान टोखुरी लोगों का देश था जो प्राचीन टोखराई अथवा टखराई थे।" अम्मि-यानस मार्सेलिनस कहता है "अनेक जातियाँ बेक्ट्रियनों की आज्ञा का पालन करती हैं जिनमें टोखुरी मुख्य हैं।" हिस्ट्री रेस बेक्ट पृ ७।

७२ एल्फिन्स्टन ने काबुल राज्य के अपने प्रशंसनीय वृत्तान्त में इस अनोखी ताजिक जाति के विषय में कई बार लिखा है। 'मायर्जेसन मोरक्राफ्ट और बुखारा' नामक रोचक ग्रन्थ में यह विशेष रूप से लिखा है कि इन लोगों ने बुखारा राज्य के वाणिज्य सम्बन्धित कारोबार पर अपना एकाधिकार कर रखा है। उक्त ग्रन्थ में जो मानचित्र दिया है उसमें प्रथम बार प्रामाणिक रूप से आक्सस और जैक्जार्टीज नदियों के उद्गम स्थल और बहाव भागों को दिखाया गया है।

७३ नागों के विरुद्ध इस युद्ध का पूर्ण विवरण महाभारत में दिया गया है जिसमें उसने एक ही आक्रमण में बीस हजार को बन्दी बना कर अग्नि में जला (होम) दिया। आश्चर्य की बात तो यह है कि हिन्दू इन बातों को ज्यों की त्यों स्वीकार कर लेते हैं। यह कहा जा सकता है कि यह कार्य उसमें अत्यन्त कठिनाईयों में पड़ कर किया होगा। बीस हजार मनुष्यों का इस भांति बर्बरतापूर्ण बलिदान उसी भांति असम्भव है जिस भांति इस कार्यके लिए बीस हजार नागोंका प्राप्त करना। किन्तु लेखक जानता है कि बर्बरता क्या नहीं करा सकती? अतः इस नर-बलि के प्रमाणों की बात छोड़िये। शायद यह इस सीमा तक न हुआ हो यद्यपि यह असम्भव नहीं है। सन् १८११ में लेखक को चम्बल पर की पहाड़ी के गूजरगढ़ नामी परगने का सर्वेक्षण करने को बुलाया गया था इस जिलेमें विशेषकर गूजर बसते थे जो इराक के कुर्दों की भांति झगड़ालू और स्वतन्त्र स्वभाव के थे। उनका हाथ सदैव दूसरों पर और दूसरों का हाथ सदैव उन पर उठता रहता था। भरतपुर के जाट राजा सूरजमल ने जो उनका नाम-मात्र को राजा था, जिसने इन गाँवों की जनसंख्या के लिए ठीक उसी रीति का अवलम्बन किया जिसका कि जनमेजय ने तक्षकों के लिए किया था अर्थात् जिन्हें उसने रात को आक्रमण करके पकड़ा उन्हें धधक रहे गड्ढों में धकेल कर (उसी भांति) जला दिया। यह घटना केवल बीस शताब्दी पूर्व की है।

---

(१४८) देखिये पहिले अध्याय द्वारा पृ १० टिप्पणी सं ५५-५६।

सिकन्दर के भारत आक्रमण के समय पेरोपेमिसन पर्वत माला में 'पैरिटाकी' अर्थात पहाड़ी—टाँक बसे हुए थे अत: यह भी सम्भावना है कि जिस तक्षलेस[७४] (१४९) ने मसिडोनिया के राजा का साथ दिया था वह टाँक लोगों का राजा(ईश) हो। जैसलमेर के भाटी राजाओं के प्रारम्भिक इतिहास के अनुसार जब उन्हें काबुलिस्तान से निष्कासित कर दिया था तो उन्होंने सिन्ध पर बसे हुए टाँक लोगों को वहाँ से खदेड़ दिया और उनके प्रदेश में वे स्वयं बस गये। इनकी राजधानी सलभानपुर थी। इस घटना का काल युधिष्ठिर संवत् का ३००८ वाँ वर्ष (१५३) दिया गया है, अतः यह भी असम्भव नहीं है कि टँवर सम्राट विक्रमादित्य विजेता शालिवाहन (१५४)अथवा सातवाहन (जो तक्षक था), उसी कुल का हो जिसे भाटियों ने सिन्ध से दक्षिण की ओर खदेड़ दिया था।

---

७४ एरियन (१५०) के मतानुसार उसका नाम मोम्फिस (१५१) था। उसी समय उसके पिता की मृत्यु हो जाने से उसने सिकन्दर की आधीनता स्वीकार कर ली, अतः उसने उसके पिता का राज्य और उपाधि 'तक्षिलेस' उसे प्रदान कर दी। इससे यह परिणाम भी निकलता है कि टाँक से ही सिन्धु का नाम 'अटक' (१५२) पड़ा हो, जिसका वर्तमान अर्थ अटक अर्थात् रोकना नहीं है, यह तो मात्र उस समय से हुआ जब इस्लाम ने इस नदी को दो धर्मों के मध्य की सीमा बना दी।

---

(१४९) बौद्ध लेखक तक्षशिला को तक्षशिरा का पर्याय मानते हैं। इस नाम की उत्पत्ति का कारण यह है कि एक समय बुद्धदेव ने एक भूखे सिंह को अपना मस्तक काट कर दिया था। (तक्ष—काटना शिर—सिर) इससे यहाँ का नाम 'तक्षशिरा' पड़ा। 'र' के स्थान में 'ल' लिखने का प्रचार होने के कारण उसका रूपान्तर तक्षशिला हो गया।

(१५०) मेगस्थनीज और नियार्कस आदि के आधार पर इसने सिकन्दर का इतिहास लिखा है। यह ईसा की दूसरी शताब्दी में हुआ था।

(१५१) सिकन्दर के इतिहासकारों ने तक्षशिलेस का 'ओम्फिस' लिखा है किन्तु डायाडोरस ने इसका नाम मोफिस लिखा है। 'ओम्फिस' किस नाम का भ्रष्ट रूप है कहा नहीं जा सकता किन्तु आम्भी से यह अवश्य ही मिलता जुलता है।

(१५२) टॉडकी यह अटकलबाजी मीमांसा निराधार है। अटक सिन्धु नदी का नाम नहीं है वरन सिन्ध नदी के पूर्वी तट पर बसे हुए नगर का नाम है। अटक का किला अकबर ने ही बनवाया था। आइन-ए अकबरी' में प्रथम बार यह नाम मिलता है। (आइन अंग्रेजी अनुवाद खण्ड २ पृ० ३११)

(१५३) यह एक विचारणीय तिथि है।

टॉड ने काल गणना (अध्याय पाँचवाँ) में इस पर ध्यान नहीं दिया है यदि इसे मान्यता दी जावे तो महाभारत का समय स्वतः निश्चित हो जाता है। युधिष्ठिर शाक (संवत्) का प्रारम्भ ३१३९ ई पू० से होता है अतः यह समय होगा— (३१३९– ३००८) १३१ ई पू ।

भाटियों द्वारा सलभानपुर बसाने का समय कुछ ग्रन्थों में बहुत आगे का लिया हुआ है।

यदि यह मानें कि इन्होंने शालिवाहन को परास्त कर स्थापना की तो तिथि बहुत आगे चली जाती है। इस सम्बन्ध में अधिक खोज आवश्यक है।

(१५४) शालिवाहन विक्रमादित्य का विजेता नहीं था। दोनों के सम्वत् का अन्तर ही बहुत बड़ा है।

शेष नाग के आधिपत्य में तक्षकों अथवा नाग–वंशियों द्वारा भारतवर्ष पर आक्रमण करने का समय गणनानुसार लगभग छ-सात शताब्दी ई पू माना जाता है इसी काल में 'ओपरसाह के अश्वारोही पुत्रों" (अश्व अश्व असी) का सोवियत आक्रमण मिश्र और सीरिया पर हुआ जिसका वर्णन हजाकिल(१२५)और डायाडोरस (१२६) ने किया है। 'मात्रु महात्म्य' में तक्षकों को हिमाचल पुत्र बतलाया है ये समस्त बातें इन्हें सीथियन(१२७) प्रमाणित करती हैं। नाग-वंश में यह परिवर्तन केवल आठ पीढ़ियों पूर्व तब हुआ जब कि तेइसवें बुध पार्श्वनाथ ने अपने धार्मिक सिद्धान्तों का प्रचार भारतवर्ष में किया और अपना स्थान सारमेत [६८] के पवित्र पर्वत पर स्थापित किया।

टांक जाति के प्राचीन इतिहास का इतना वृत्तान्त ही यथेष्ठ है। अब हम अधिक आधुनिक काल की ओर अग्रसर होते हुए इसका संक्षिप्त वर्णन प्रस्तुत करेंगे। हम पहले भी यह लिख चुके हैं कि चित्तौड़ में तक्षक–मोरी बहुत प्राचीन काल से शासन करते थे। मुस्लिमों का मौर्यों पर अधिपत्य हो जाने के कुछ ही पीढ़ियों पश्चात् हिन्दू स्वतन्त्रता के रक्षक इस दुर्ग पर यवन सैनिकों ने आक्रमण किया। चित्तौड़ की रक्षा को स्वकार्य समझ कर उसकी रक्षार्थ जो उपस्थित दल वहां पहुंचे थे उनमें 'असीर गढ़' [६९] के टांक भी थे। इस घटना के पश्चात भी इस वंश ने कम से कम दो शताब्दी आगे तक असीर पर अपना स्वत्व स्थापित रक्खा क्योंकि यहां का सरदार पृथ्वीराज की सेना में एक मुख्य सेनानायक था। चन्द के काव्य में 'असीर के टांक' को 'अस्सा-सरदार' [७०] कहा है।

---

६८. पार्श्व (नाथ) का प्रतीक (चिह्न) सर्प अथवा तक्षक है इनके धार्मिक सिद्धान्त बिहार में शिशु नाग के उत्तराधिकारी अशोक के शासनकाल में भारत के दूर-दूर के प्रदेशों तक में फैल गये थे। वल्लभीपुर अन्होर तथा अनहिलवाड़ा के राजा सब ही बुध (१२८) धर्म के सिद्धान्तों का पालन करते थे।

६९ खानदेश का सुप्रसिद्ध गढ़; जो अब अंग्रेजों के आधीन है।

७० कन्नौज-पुत्र के सामन्तों की सूची में इसे 'असुरो टांक' लिखा है।

---

(१२५) देखिये प्रकरण छठा पृ सं ६९ टिप्पण संख्या ४।

(१२६) देखिये प्रकरण छठा पृ सं ६९ टिप्पण संख्या ४१।

(१२७) नाग जाति को सीथियन वंश का न मानने के निम्न कारण हैं —

(क) पुराणों के अनुसार नाग वंश की दो उत्पत्तियां प्राप्त होती हैं।

(१) मनु से मोक्ष स्न और सीक्ष स्न से नागों की उत्पत्ति हुई।

(२) महाभारत आदि-पर्व के अनुसार — दक्ष प्रजापति की कन्या कद्रू से जो कश्यप ऋषि की पत्नी थी के नागों का जन्म हुआ।

(ख) टॉड महाभारत का समय ८ से १ ० ई पू मानते हैं दूसरी ओर नागों के भारत आक्रमण का समय ६०० ई पू मानते हैं जब नाग ६ ई पू में आये तो उनकी परीक्षित से क्या शत्रुता थी जो उसे उन्होंने १ ई पू में मारा।

(ग) कई ऋषियों तथा राजाओं के नागों से इस से भी पूर्व विवाह सम्बन्ध होते थे। जैसे 'नाग यज्ञ' को रोकने वाले 'आस्तीक' की माता वासुकी नाग की बहन जरत्कारु ही यायावर-वंश के जरत्कारु ऋषि की पत्नी थी। पाण्डव-पुत्र अर्जुन ने नाग-कन्या उलूपी से विवाह किया था।

(१२८) यहां जैन धर्म से तात्पर्य ज्ञात होता है। क्योंकि पार्श्वनाथ जैनों के तेइसवें तीर्थंकर थे।

जन्मेजय की याद और सिकन्दर की मित्र इस प्राचीन जाति का जीवन-वैभव एक उज्ज्वल प्रकाश की भाँति समाप्त हो गया। आधुनिक काल के टाँक लोगों की प्रसिद्धि की यह ज्योति गुजरात के सुलतानों की प्रसिद्धि पूरा कर देती। इसके चौदह राजाओं का राज-वंश एक के पश्चात् एक 'मुजफ्फर' के नाम से प्रारम्भ होकर इसी पर समाप्त हो गया। प्रथम तुगलक के पुत्र 'मुहम्मद' (७८) के शासन-काल में उसके भतीजे (१५६) फिरोज के साथ एक ऐसी घटना हुई कि टाँक जाति का आत्मीयत्व हो गया फिर भी उन्हें अपने नाम और धर्म का त्याग करना पड़ा। सहारन टाँक प्रथम स्वधर्म त्यागी था जिसने अपना नाम वाजिहुल्-मुल्क रखकर अपने जन्म और वंश को छुपा लिया। (१६) इसके पुत्र जफर खाँ को इसके स्वामी फिरोज तुगलक ने गुजरात का शासक उस समय के लगभग नियुक्त किया जब कि तैमूर ने भारत पर आक्रमण किया था।

जफर ने अपने स्वामी की दुर्बलता और समय की गड़बड़ का लाभ उठाया और 'मुजफ्फर' [७९]की पदवी धारण करके गुजरात का बादशाह बन बैठा। उसके पौत्र अहमद ने उसका वध कर दिया और राजधानी को प्राचीन स्थान अणहिलवाड़ा से बदल कर स्व-स्थापित नगर अहमदाबाद में ले आया जो गुजरात में एक अत्यन्त ही वैभवपूर्ण नगर है।

टाँक [८०] द्वारा धर्म परिवर्तन के पश्चात् उसका नाम राजस्थान की जातियों में से लुप्त हो गया। वर्तमान जातियों में खोज करने पर भी मुझे इस जाति का एक भी मनुष्य (१६३) नहीं मिला।

जिट जाट

भारत वर्ष के ३६ राजवंशों की समस्त प्राचीन वंशावलियों में 'जिट' राजवंश का समावेश किया जाता है किन्तु किसी में भी इस जाति को राजपूत नहीं बताया गया है। और न मुझे राजपूतों तथा जिट अथवा जाटों में परस्पर विवाह आदि के सम्बन्ध का एक भी उदाहरण देखने को मिला। यह जाति भारतवर्ष भर में फैली हुई है किन्तु इनके अधिकतर व्यक्ति कृषि का व्यवसाय करते हैं तथा देशवासियों में इस जाति का स्थान बहुत ऊँचा नहीं माना जाता।

---

७८. इसका शासनकाल १३२५ से १३५१ ई० तक रहा। ७९. विजेता।

८० मिरात-ए-सिकन्दरी में उपर्युक्त स्वधर्मत्यागी के पूर्व की तेईस पीढ़ियों का वर्णन किया गया है। इसका प्रथम पुरुष सेघ (१६१) था यही वह नाम है जिसने ईसा से सात शताब्दी पूर्व भारतवर्ष में नाग वंश का प्रारम्भ किया था। इस ग्रन्थ का लेखक टाक अथवा टाँक शब्द की उत्पत्ति 'टरका' अर्थात् 'बहिष्कृत' से बताता है, ये जिस जाति से निकले उसका नाम खत्री (१६२) बताता है यह प्राचीन वंश सम्बन्धी उसका अज्ञान ही है।

---

(१५६) मुहम्मद तुगलक के काका का बेटा भाई था —राजविनोद महाकाव्य पृ ११।

(१६) इसकी उपाधि वजीर-उल-मुल्क थी यह टाँक जातीय (सूर्य-वंशी) क्षत्रिय था।

'वंश स्याद्रम्भोद्भवो जगत्यां जागर्यमी राजमिरर्वणीय' ।

कर्मोपमो यत्र निजावनीशौ श्रीमान् भाति मुजफ्फरेन्द्र ॥राजविनोद महाकाव्य सर्ग प० पृष्ठ १? ।

(१६१) 'मिरात ई-सिकन्दरी' में यह नाम 'सेघ' न होकर 'सहस' दिया गया है।

(१६२) इस घटना सम्बन्धी 'मिरात ए-सिकन्दरी' का सारांश यह है 'टाँक और खत्री दोनों भाई थे। जिनमें से टाँक ने मद्य-पान किया। क्षत्रियों ने टाँक को जाति से बाहर कर दिया। भारतीय भाषा में जाति बहिष्कृत को टाँक कहते हैं। कुछ समय पश्चात् दोनों के आचार-विचार अलग-अलग हो गये।'

(१६३) आज भी स्वयं को टाँक कहने वाले कई व्यक्ति जयपुर में समात हैं।

की मां यदु-जाति की थी जिससे इनके छत्तीस राज-कुलों में स्थान प्राप्त करने की मान्यता के साथ ही यदु-वंशी होने की बात भी पुष्ट होती है ।

ईसा की पाँचवीं शताब्दी (१६५) जिस समय का कि यह शिलालेख है, जिट इतिहास का रोचक काल है । मूल-ग्रन्थों के आधार पर डिगिग्नीज का कथन है कि यती अथवा जिट लोग पंजाब में पाँचवीं अथवा छठी शताब्दी में आकर बसे थे और जिस शिला-लेख का उल्लेख किया गया है, यह उस राजा का है जिसकी राजधानी इन प्रदेशों में सालिन्द्रपुर के नाम से पुकारी जाती थी जो निस्संदेह ही सालिवाहनपुर[८३] थी । यहाँ से यदु-वंशी भाटियों ने टांक लोगों को निष्कासित कर स्वयं को आबाद किया था ।

जिटों ने कितने काल पूर्व राजस्थान में प्रवेश किया इसे निश्चित करने का कार्य हम अधिक प्राचीन शिला-लेखों पर छोड़ते हैं । इस समय तो इतना ही कहना यथेष्ठ होगा कि ४४ ई में हम इन्हें शासन[८४] करते हुए पाते हैं ।

---

८३ यह स्थान बारहवीं शताब्दी में एक राजधानी था क्योंकि अनहिलवाड़ा के राजा कुमारपाल के शिलालेख में लिखा है कि उस राजा ने ठेठ सालिपुर(१६६) तक विजय प्राप्त की थी रैनेलके भूगोल में स्यालकोट(१६६) दिखाया गया है और किस्कर्ड लिखता है कि 'एक प्रसिद्ध नगर संगम (१६६) के खंडहर विद्यमान हैं, जो लाहौर के उत्तर से साठ मील पश्चिम में एक जंगल में स्थित हैं; जिन्हें पुरु का बसाया हुआ बताया जाता है ।

८४ इस समय (४४९ ई में) हेंगिस्ट और होरसा (१६७) नामक दो जिट भाइयों ने जटलैण्ड से एक बस्ती ला कर केन्ट (१६८) में राज्य स्थापित किया । (प्रश्न—क्या संस्कृत में 'कण्ठा' समुद्र का किनारा नहीं जैसे कि कोण्डा बोथिक में ?) । वे नियम जो उन्होंने प्रचलित किये मुख्यतः पैतृक भूमि के बटवारे से सम्बन्धित थे जो आज भी प्रचलित हैं, जिनके अनुसार समस्त पुत्रों का भाग बराबर होता है केवल छोटे को छोड़ कर जिसे दो गुणा दिया जाता है । यह शुद्ध सीथियन (नियम) है जिसे मूल भाष कैम्मार्टीज् से लाये थे ।

अलारिक की जीवन-लीला समाप्त हो गई, जब कि थियोडोरिक (१६९) और जैन्सेरिक (१७०) ('रिक' का अर्थ संस्कृतमें 'राजा' है) अपनी सेना स्पेन और अफ्रीका में ले जा रहे थे ।

---

(१६५) यह शिला-लेख पाँचवी शताब्दी का न होकर ८ वीं शताब्दी का है ।

(१६६) इसका सालिन्द्रपुर, सालिवाहनपुर, स्यालकोट अथवा संगम से कोई सम्बन्ध नहीं है । सालिपुर का उल्लेख चित्तौड़ दुर्ग के समिद्धेश्वर के मन्दिर में लगे हुए गुजरात के सोलंकी राजा कुमारपाल के वि म १२ ७ के लेख में है । जिससे चित्तौड़ से ४ मील दूर पर मामोरा गाँव का सालिपुर होना पाया जाता है ।

इस सम्बन्ध में एक बात और विचारणीय है कि पूर्व पृष्ठ १५१ पर ही टॉड ने इसकी राजधानी सलमानपुर और अन्मा-काल युधिष्ठिर सम्वत् का १ वां वर्ष माना है । जा ३११ वर्ष ई पू पड़ता है यहां पाँचवीं और छठी शताब्दी माना है । यों ७ वर्षों का अन्तर होता है ।

(१६७) इन दोनों भाइयों को वार्टिजर्न नामक सरदार ने पिक्ट जाति से तंग होने पर अपनी सहायतार्थ बुलाया था जिसके बदले में इन्हें केन्ट का जिला मिला था ।

(१६) इंग्लैण्ड का एक जिला ।

(१६९) अलारिक का पुत्र जो अर्न्सा की लड़ाई (४५१ ई०) में मारा गया था ।

(१७०) यह रोम नगर पर आक्रमण करने वालों में से एक था । इसने सन् ४५५ ई में रोम नगर को लूटा था । संस्कृत में 'रिक' का अर्थ राजा नहीं है ।

जब यदुओं को शालिवाहनपुर से निष्कासित कर दिया गया तो वे सतलुज पार की भारतीय मरुभूमि में बाहिया और जोहिया राजपूतों के शरणागत हुए जहाँ उन्होंने अपनी प्रथम राजधानी देरावल (१७१) की स्थापना की। इस अवसर के दबाव में बहुतों ने इस्लाम-धर्म स्वीकार कर लिया। इस अवसर पर उन्होंने जाट[८५] नाम धारण किया जिसकी कम से कम बीस शाखायें यदु-कुल के वृत्तान्तों में गिनाई गई हैं।

इनके ऐतिहासिक वृत्तान्तों और हमारे शिला-लेख के काल से भी पाँच शताब्दी बाद तक पंजाब और सिन्ध के पूर्वी तट पर जिट एक शक्तिशाली जाति के रूप में रहते रहे। इस सम्बन्ध में हमें भारत-विजेता महमूद के इतिहास से अत्यन्त ही रोचक बातें प्राप्त होती हैं, जिसकी प्रगति को इस जाति ने एक ऐसी अभूतपूर्व रीति से रोका जिसका उदाहरण इस महाद्वीप के युद्ध-इतिहासों में कहीं नहीं मिलता। यह घटना हिजरी सन् ४१६ (१ २६ ई) की है जब कि महमूद ने एक सेना उन जिटों के विरुद्ध भेजी जिन्होंने कि सौराष्ट्र के अन्तिम आक्रमण से लौटते समय उसको परेशान व अपमानित किया था। क्योंकि यह अत्यन्त रोचक वृत्तान्त है अतः हम इसे मूल आधार-ग्रन्थ से यहाँ उद्धृत करते हैं।

जिट जाति मुलतान के सीमान्त-प्रदेश में तथा जूद[८६] पर्वतों के पास से बहने वाली नदी के किनारे वाले भू भाग में बसी हुई थी। जब महमूद मुलतान पहुँचा तो उसने जिट देश को बड़ी-बड़ी नदियों से सुरक्षित पाया। उसने १४०० नावें[८७] तैयार कराईं। प्रत्येक नाव के अग्रभाग में बाहर निकले हुए छः छः लोहे के शूल लगाये गये ताकि इस प्रकार के युद्ध-कौशल में प्रवीण शत्रु इन नावों पर न चढ़ सकें। प्रत्येक नाव में २०—२० धनुर्धारी रखे गये और कुछ व्यक्ति जिट नौकाओं को जलाने के लिये नफथा (ज्वलनशील) के गोले फेंकने वाले गोले लिए हुए थे। महमूद इनके सम्पूर्ण विनाश का प्रबन्ध करके मुलतान में युद्ध-परिणाम की प्रतीक्षा करने लगा। जिटों ने अपनी स्त्रियों बच्चों व धन सम्पत्ति को सिन्धु-सागर[८८] पर भेज दिया और चार हजार अथवा अन्य लोगों के कथनानुसार आठ हजार उत्तम नाव

---

८५ यदि ये वास्तव में यदु थे तो उन्होंने स्वधर्म त्याग कर जिट अथवा जाट नाम क्यों धारण किया? इसका कारण अवश्य यही होना चाहिए कि या तो यदुवंशी (१७२) स्वयं सीथियन जूटी या जुटी थे। अथवा जिटों से अन्तर्जातीय विवाह सम्बन्ध करने वाली शाखायें मन में ही अपने को यदुओं से हीन समझने लगी हों और इनके सम्मिश्रण से उत्पन्न सन्तति ने मातृ-कुल (१७३) का नाम धारण कर लिया होगा।

८६ जूद का डूंग अथवा 'जूद का पहाड़' जिसे इनके वंश-वर्णन में यदु अधिवासी स्थान बता चुके हैं, जहाँ पर महाभारत युद्ध के पश्चात् भारत से निकाले जाने पर ये ठहरे थे।

८७ इसी स्थान के निकट कहीं सिकन्दर ने जहाजी बेड़ा तैयार कराया था, जो ११ वर्ष पूर्व बेबीलोन पहुँचा था।

८८ डो ने इसका अनुवाद एक द्वीप किया है। सिन्धुसागर पंजाब का एक दो आब है। मैंने जो इस तवारीख फरिश्ता के प्रारम्भिक भाग के अनुवाद को मूल ग्रन्थ से मिलाया है, उसका जितना अंश विल्स ने उसे दिया है, वह उसकी अपेक्षा कहीं अधिक प्रामाणिक और विश्वसनीय है। उसने अधिकतर अशुद्धियाँ अंक, तोल और नामों के सम्बन्ध में की हैं। इसी के परिणाम-स्वरूप उसने भारत की लूट का धन इतना बताया है कि विश्वास नहीं होता।

---

(१७१) यादवों की एक राजधानी।

(१७२) यदु-वंश महाभारत से भी पूर्व का है। जिटों अथवा जाटों का आगमन टॉड ५ वीं शताब्दी मानते हैं, अतः यह असम्भव है।

(१७३) भारत में युग-गणना से कुछ पूर्व से ही पितृ-सत्तात्मक समाज है अतः मातृ कुल का नाम धारण करने का प्रश्न ही नहीं उठता।

अपनी नावों से लड़ने के लिए पानी में उतारी । एक भीषण संग्राम हुआ किन्तु नावों के मध्यभाग में निकले हुए तीखे शूलों ने जिट नावों को डुबो दिया तथा अन्य नावें जला दी गईं । इस विनाशकारी संग्राम में बहुत कम व्यक्ति भाग सके जो भाग कर बचे उन्हें बन्दी होकर यन्त्रणापूर्ण जीवन व्यतीत करना पड़ा"[१] ।

निस्संदेह ही इस भगदड़ में कई बच गये । यह भी सम्भव है कि जिटों के वे दल जिनके पराजित होने से बीकानेर राज्य की स्थापना हुई थी । इस युद्ध में बच कर निकले हुए थे ।

इस घटना के कुछ ही काल पश्चात् जिटों का मूल साम्राज्य भी नष्ट हो गया । इस समय कई लोगों ने भाग कर भारत में शरण ली । १३१६ में तोगलकतैमूर जिट जाति का बड़ा खान (शासक) था । वे इस समय तक भी मूर्तिपूजक थे । उसने तुरान को विजय किया ट्रान्सऑक्सियाना (जिसका राजा भाग गया किन्तु उसके भतीजे अमीर तैमूर ने अपनी स्वाधीनता की रक्षा की) ने तोगलकखान से मैत्री की और एक लाख जिट योद्धाओं का सेनापति बनाया । १३६२ में जब कि जिट खान की मृत्यु हो गई तब तैमूर अपनी प्रजा पर ऐसा आधिपत्य जमाये हुए था कि कौरलटाई अथवा जन-सभा ने बेटियों की पदवी 'बड़ा खान' अपूर्वाई तैमूर को दे दी । १३६७ में उसने जिट राजकुमारी से शादी करके जीजेन्द्र अमरकन्द को भी अपने पैतृक राज्य ट्रान्सऑक्सियाना में मिला लिया । जिहादों और नरसंहारों ने मनुष्य जाति के इस जन्म-स्थान को वीरान कर दिया । सभी जिट पराधीन हो गये । १३८८ तक ही इसने पांच आक्रमण किये जिनमें इनके नगर जला दिये गये उनकी सम्पत्ति लूट ली गई तथा सम्पूर्ण राष्ट्र को रौंद कर ही उसने चैन की सांस ली ।

यूरोप के अधिकांश भाग को रौंदने के पश्चात् उसने मास्को विजय किया और डान के अधमरी सैनिकों का वध करने के पश्चात् उसने भारत पर चढ़ाई की जिसमें उसे अपने प्राचीन जिट बन्धुओं का सामना करना पड़ा, जो तोहीम के मैदान में डट रहे थे । वहाँ पर उसने दो हजार मनुष्यों को मौत के घाट उतार कर इन्हें मरु भूमि की ओर धकेल दिया । फिर भटनेर[२] के निकट बहुतेरा नर संहार किया ।

जिट अब भी अपने को पंजाब में कायम रखे हुए हैं । इस समय लाहौर का जिट राजा (१७५) भारत में सर्वाधिक शक्तिशाली और स्वतन्त्र है । उसका आधिपत्य उन प्रदेशों पर है जहाँ पांचवीं शताब्दी में यूची जाति आकर बसी थी तथा वहाँ पर भी जहाँ टाक लोगों के अधिकृत स्थानों पर गजनी से भाग कर आने पर यदु लोग बसे थे । जिट अश्वारोही सेनाओं में गेटिक रीति-रिवाज की कई बातें मिलती हैं । वे अब भी उस चक्र का उपयोग करते हैं जो भारत के प्राचीन काल में यदुवंशी कृष्ण का शस्त्र था ।

---

४१ फरिश्ता खण्ड १ ।

२ अबुल गाजी ने खण्ड ४ अध्याय १६ में लिखा है कि देहली के सुल्तान महमूद से युद्ध करने के पश्चात् तैमूर ने हुक्म दिया—"इन एक लाख काफिर गुलामों को मौत के घाट उतार दिया जावे । इनकी बड़ी मस्जिद में आग लगा दी जावे ताकि इन काफिरों की रूह दोजख की आग में जले । इनके सिरों का मीनार बना कर इनकी लाशें जंगली जानवरों और चीलों को डाल दी जावें ।" मेरठ में काफिर गबरीजों (१७४) की खाल जीते जी खींच ली गई । यह सब उस तैमूर लंग की आज्ञा से हुआ जिसकी महानता और गुण गौरवता की प्रशंसा करते हुए यूरोप के भारतीय इतिहासकार नहीं थकते ।

---

(१७४) अग्निपूजकों ।

(१७५) पंजाब का महाराजा रणजीतसिंह ।

हन अथवा हूण

भिन्न–भिन्न सीथियन जातियों ने भारतवर्ष के ३६ राज-वंशों में अपना स्थान बना लिया है, उनमें हूण भी एक हैं। इस जाति ने किस समय यूरोप पर आक्रमण करके भयानक उपद्रव मचाये और वहां पर अपनी बस्तियां बसाईं यह हम भली भांति जानते हैं। भारत पर कब आक्रमण किया इस विषय में हमें कुछ भी ज्ञात नहीं है। निस्संदेह इनके समाज में कई अन्य भी थे जैसे कन्टी बल्ला और मकवाना आदि जो आज भी सौराष्ट्र प्रायद्वीप में मिलते हैं। अत उनका नाम उस प्रायद्वीप की वंशावलियों तक ही सीमित है, यद्यपि हमें हूणों का उल्लेख भारत के कई प्राचीन शिलालेखों और ऐतिहासिक वृत्तान्तों में मिलता है। किन्तु वे उत्तरी भारत के भाटों की वंशावलियों में अपना स्थान नहीं बना पाये।

इस जाति के सम्बन्ध में हमें सब से प्राचीन जानकारी एक शिला लेख[61] (१७६) में मिलती है जिसमें बिहार के एक राजा की शक्ति और विजयों का वृत्तान्त देते हुए लिखा है कि उसने हूणों का गर्व चूर किया था।' मेवाड़ के प्राचीन ऐतिहासिक ग्रन्थों के वर्णनान्तर्गत चित्तौड़ पर प्रथम यवन आक्रमण का जोर मचते ही इसे अपना कर्तव्य मानकर भिन्न–भिन्न राजाओं ने राजपूतों के उस सर्वमान्य नेता को सहयोग दिया उनकी सूची में हूणों के स्वामी अन्गत्सी का उल्लेख भी प्राप्त होता है जो उस समय अपनी सेना का नेतृत्व कर रहा था। डीगिग्नीज[62] के मतानुसार 'यंकन' हूणों अथवा मुगलों के वक्षु नदी समूह का नाम होता था और अबुल गाज़ी लिखता है कि जो तातार जाति चीन की विशाल दिवार की रक्षा करती थी उसका नाम अलगी था जिसका एक विशिष्ट राजा होता था जिसे उच्च प्रतिष्ठा और वेतन प्राप्त होता था। इर्टिश नदी के किनारों से तथा अल्टाई पर्वत के बराबर बराबर पीले समुद्र तक फैले हुए भू-भाग के नगरों में 'ताताल' से 'तातार' कहलाने वाले हियांग – नमो और इयोन तुर्क और मुगल वास करते थे जिसका विस्तृत वर्णन हूणों के इतिहासकार ने किया है। इसी वर्णन के प्रकाश में तथा अन्य मूल ग्रन्थों के आधार पर 'रोम के पतन' के इतिहासकार ने हूणों के यूरोप-प्रवेश तथा एतद् सम्बन्धित अन्य वर्णन को अत्यन्त ही आकर्षक बना दिया है। किन्तु जो पाठक इस जाति के प्राचीन इतिहास और रीति-व्यवहार के सम्बन्ध में जानने के इच्छुक हो उन्हें ज्ञान और खोज से पूर्ण सारगर्भित ग्रन्थ मालटे–ब्रन[63] का मूलांश अवश्य पढ़ना चाहिए।

यात्री कासमस (१७७) की पुस्तक का उद्धरण देते हुए ड एन्विल[64] बताता है कि श्वेत हूण

---

६१ एशियाटिक रिसर्चेज, खण्ड १ पृ १३६।

६२ हिस्ट्री जेन डेस हूनस भाग १ पृ० २११।

६३ "प्रेसिस ड ज्योग्राफिया यूनिवर्सलि" मालटे ब्रन हंगरी और स्कैंडिनेविया के निवासियों में जाकर्ड समानता के आधार पर उनके सम्बन्धों का पता लगाता है — इन पुरातन तम गों में जब कि हूण माप, जब एलिस आदि लोग ओडिन की प्राचीन वेदियों पर एकत्रित होते थे। इनके बहुत से शब्द जो हमारे सामने प्रस्तुत करता है जो संस्कृत से उत्पन्न हुए हैं। खण्ड १ पृ १७०।

६४ एक्लेयर सिसेमन्स ज्योग्राफिक्स सर कार्डेस इण्डिया पृ ४३।

---

(१७६) यह लेख बंगाल के पास-बदी राजा विग्रहपाल (प्रथम) के पुत्र नारायणपाल के काल का है जो बदाल नामक स्थान पर एक स्तम्भ पर खुदा है और जिसमें विग्रहपाल के लिए लिखा है 'उसने उत्कल हूण द्रविड़ और गुर्जर राजाओं का गर्व भंजन किया।

(१७७) कसमस इण्डिका प्लूटे नामक साधू-यात्री ने ५४७ ई में अपनी पुस्तक लिखी थी जिसमें हूणों का भी कुछ हाल है।

[Leukoi ounnoi][९८] उत्तरी भारत में बस गये थे। बहुत सम्भव है कि इन्हीं लोगों का एक दल सौराष्ट्र और मेवाड़ तक आ पहुँचा हो।

चम्बल नदी के पूर्वी तट पर स्थित प्राचीन बाड़ोली हूणों का एक परम्परागत निवास-स्थान बताया जाता है। इस स्थान के पवित्र मन्दिरों में से एक मन्दिर सिंगार–चौरी का है, जो हूण राजा का विवाह–मण्डप था। ऐसा कहा जाता है कि नदी के परले पार इस स्थान के सामने भाना ग्राम जिसमें आधुनिक भैंसरोड़ कस्बे वाला भाग भी सम्मिलित है उस राजा के ही आधिपत्य में था। गुजरात नरेशों के ऐतिहासिक वृत्तान्तों में हूणों ने जो स्थान पाया है उससे प्रतीत होता है कि बारहवीं शताब्दी में हूणों की शक्ति अत्यन्त बढ़ी-चढ़ी थी। यह जाति अभी लुप्त नहीं हुई है। भारत के वर्तमान भाटों में अत्यन्त बुद्धिमान व्यक्ति ने लेखक को उनके विद्यमान होने का विश्वास दिलाया और एक यात्रा में जब वह उसके साथ था उसने माही नदी के मुहाने पर स्थित एक बस्ती में कुछ हूणों के घर दिखा कर अपनी प्रतिज्ञा पूर्ण की यद्यपि अब वे पतनग्रस्त होकर अन्य जातियों में[९९] विलीन हो गये थे।

हम यह निष्कर्ष निकाल सकते हैं कि मध्य एशिया में जो कुछ क्रान्तियाँ हुईं उन्हीं से विवश होकर इन अधिक-संख्या वाले जन-समूहों को जीविकोपार्जन हेतु यूरोप की ओर निष्क्रमण करना पड़ा। किन्तु भारतवर्ष इन निष्क्रमणजन्य उथल-पुथल से बचा रहा। इसका एक मात्र कारण यह था कि आगन्तुक वर्ग को शीघ्र ही हिन्दू घोषित कर दिया गया। यद्यपि उन्हें निम्नतम वर्ग में वर्गीकृत किया गया था, तथापि इन शूद्रों की श्रेणी कदापि नहीं दे सकते। क्योंकि काठी और जाट न तो इस श्रेणी में माने जा सकते हैं और न राजपूत-वंशावलियों में ही उन्हें सम्मिलित किया जा सकता है। इतना होने पर भी ये जातियाँ शूद्रों को घृणा की दृष्टि से देखती हैं।

कट्टी–काठी

इन लोगों की प्राचीन स्थिति के सम्बन्ध में पहले ही बहुत कुछ कहा जा चुका है। राजस्थान और सौराष्ट्र दोनों के सभी वंशज इस जाति को भारतवर्ष के राजपूतों में स्थान देने को सहमत हैं। यह भारत के पश्चिमी प्रायद्वीप की एक अत्यन्त महत्त्वपूर्ण जाति है जिसने सौराष्ट्र का नाम बदल कर काठियावाड़ कर दिया।

यहाँ के समस्त निवासियों में से काठियों ने ही अपनी प्राचीनता को कायम रखा है इनका धर्म रीति रिवाज और चेहरा आदि सब निश्चित रूप से मौलिक हैं। सिकन्दर के काल में यह जाति पंजाब के कोने पर पांच नदियों के संगम के निकटवर्ती प्रदेश में बसी हुई थी। इन्हीं लोगों के विरुद्ध लड़ने के लिए सिकन्दर को स्वयं सेना ले कर जाना पड़ा जहाँ कि वह मरते-मरते बचा और जहाँ उसने अपने प्रतिरोध का एक भव्य स्मारक छोड़ा। इस स्थल से लेकर इनके वर्तमान निवास-स्थान तक इनकी खोज की जा सकती है। जैसलमेर के प्राचीन ऐतिहासिक स्थानों के प्रारम्भिक भाग में वहाँ के लोगों और काठियों के मध्य हुए संघर्षों का वृत्तान्त दिया गया है। इनकी

---

९८ यह एक ऐसा यवन विन्यास है जो 'हन' की अपेक्षा हिन्दू उच्चारण 'हूण' अथवा 'हून' से अधिक मिलता है।

९९ इसी भाट का कथन है कि बड़ौदा से तीन कोस पर सिलोदी में हूणों के तीन-चार घराने विद्यमान हैं और खीची भाट बेजी का कथन है कि उनकी परम्परागत पोथियों के अनुसार भारत में कई शक्तिशाली हूण राजा हुए हैं।

बप्पा (१७८) राम के श्रेष्ठ पुत्र लव का-वंशधर था, तथा सौराष्ट्र में उनकी राजधानी प्राचीन ढांक में थी जो अधिक प्राचीनकाल में मौंगीपटन कहलाता था। उन्होंने आस-पास के प्रदेश को जीत कर उसका नाम बल्ल क्षेत्र रखा (जिसकी प्राचीन राजधानी बल्लभीपुर थी) एवं बल्ल राव की उपाधि धारण की। यहीं से वे मेवाड़ के गुहिलोतवंश से अपनी समानता का दावा करते हैं। यह असम्भव नहीं है कि वे उस कुल की शाखा रहे हों, जो बहुत समय तक सौराष्ट्र में शक्तिशाली रही थी। गुहिलोत जिस काल से महादेव की उपासना करने लगे, वह उनके ऐतिहासिक वृत्तान्तों में दिया गया है। इसके पूर्व वे सूर्य की उपासना करते थे। उनके मध्य यह धार्मिक समानता भी बल्ल जाति की मान्यता को पुष्ट करती है।

इसके विपरीत सौराष्ट्र प्रदेश में रहने वाली बल्ल-जाति अपने को रघु-वंशी मानती है। उनका कहना है कि सिन्ध पर स्थित आरोर के प्राचीन स्वामी 'बलिक पुत्र' वे ही हैं। इन मान्यताओं के मध्य कोई निर्णय करना कोरा अनुमान मात्र ही होगा। किन्तु मैं यह अनुमान करने का साहस करता हूं कि वे महाभारत काल के एक राजा सैहल (शल्य) की सन्तति होंगे, जिसने कि आरोर स्थापित किया था।

काठी स्वयं को बल्ल जाति से निकला हुआ मानते हैं। यह उनके उत्तरी भू-भाग से निकलने का एक और प्रमाण है जिससे भाटों द्वारा प्रयुक्त विरुद 'मुल्तान और ठट्टा के स्वामी' की सत्यता भी दृढ़ होती है। तेरहवीं शताब्दी में बल्ल जाति इतनी शक्ति-सम्पन्न हो गई थी कि उन्होंने मेवाड़ पर आक्रमण किया था, सुप्रसिद्ध राणा हम्मीर का प्रथम वीरतापूर्ण कार्य चोटीला के बल्ल सरदार का वध करना था। ढांक का वर्तमान स्वामी बल्ल है, और इस प्रायद्वीप में यह जाति अभी तक अपनी प्रतिष्ठा बनाये हुए है।

झाला—मकवाणा

यह जाति भी सौराष्ट्र प्रायद्वीप में बसी हुई है। इन्हें भी राजपूत कहा जाता है किन्तु ये न तो सूर्य या चन्द्र-वंशी(१७९) ही हैं और न अग्निकुलों से सम्बन्धित हैं। यद्यपि हम इसे पूर्णतया सिद्ध नहीं कर सकते तथापि हम इसे प्रत्येक दृष्टि से उत्तरी भू-भाग में उत्पन्न जाति मान सकते हैं। भारत में इस जाति के सम्बन्ध में बहुत कम जानकारी प्राप्त होती है राजस्थान में भी यह जाति सौराष्ट्र के प्राचीन स्वामी अर्थात् मेवाड़ के वर्तमान राजकुल द्वारा लाई गई थी जिनके वरदहस्त ने इनके समस्त दोषों को ढांप लिया। जिस समय अकबर की सम्पूर्ण शक्ति राणा प्रताप (१८०) को दबाने में लगी हुई थी उस समय झाला सरदार ने आत्मोत्सर्ग का ज्वाज्वल्यमान कार्य किया था राणा के इसी कार्य के प्रति कृतज्ञता ज्ञापन करने हेतु उन्होंने इसे ऊँची से ऊँची प्रतिष्ठा प्रदान की तथा अपनी कन्या इनसे ब्याह दी और अपने दक्षिण हाथ की ओर बैठने का स्थान दिया। इन्हें यह प्रतिष्ठा ११ कुलों में स्थान होने के कारण नहीं अपितु इस कार्य से मिली थी जिसका स्पष्ट प्रमाण हमें बाद के काल में भी तब प्राप्त

---

(१७८) मेवाड़ के गुहिलोतों (सीसोदियों) के प्रसिद्ध पूर्वज बप्पा या बापारावल का बल्लों से कोई सम्बन्ध नहीं है यह टॉड की कल्पना मात्र है।

(१७९) पन्द्रहवीं शताब्दी में गांधार कवि लिखित मंडलीक काव्य के छठे सर्ग में झालों को चन्द्र वंशी बताया है।

(१८०) राणा प्रताप के समय से पूर्व— खानवा युद्ध में राणा सांगा के घायल होने पर उनका स्थान 'अज्जा' झाला ने लिया था।

होता है जब कि वर्तमान राणा ने अत्यन्त कृपा करके अपने वंश की एक दूसरी शाखा झालों को परामर्श दिया कि वे कोटा[1,2] के झाला राजा से अपनी कन्या का विवाह कर दें।

सौराष्ट्र के एक बहुत बड़े भू-भाग का नाम इस जाति के नाम पर 'झालावाड़' पड़ा। यहाँ कई महत्वपूर्ण नगर हैं जिनमें प्रमुख बांकानेर हलवद और धांगधरा हैं।

झालों के प्राचीन इतिहास तथा यहाँ बसने के सम्बन्ध में कोई परम्परा नहीं मिलती, किन्तु यवनों के प्रथम आक्रमण के समय इस जाति ने राणा को अपनी ओर से समुचित सहायता प्रदान की थी। पृथ्वीराज के वीरतापूर्ण इतिहास में हमें बारम्बार इन झाला सरदारों का वर्णन मिलता है जो उसकी सेवा में सदैव तत्पर रहे तथा उनका भी जो उसके विरोधी की ओर थे। चन्द बरदाई द्वारा लिखित इनमें से एक का नाम मैंने उनके प्राचीन निवास-स्थान के निकट पवित्र गिरनार पर्वत पर पत्थर की चट्टान पर खुदा देखा है।

झाला जाति की कई शाखायें हैं जिनमें मकवाणा प्रमुख है।

जेटवा–जेठवा अथवा कमरी

यह एक प्राचीन जाति है जिसे सभी अधिकारी विद्वानों ने राजपूत स्वीकार किया है यद्यपि झालों की भाँति इन्हें भी सौराष्ट्र के बाहर बहुत कम लोग जानते हैं। तथापि इसके एक भू-भाग का नाम इनके नाम पर जेठवार पड़ा। वर्तमान में इनके अधीन इस प्राय-द्वीप का पश्चिमी समुद्री किनारा है। इनका राजा 'राणा' कहलाता है और उसका निवास-स्थान पोरबन्दर में है।

प्राचीन काल में इनकी राजधानी घूमली थी जिसके खण्डहर इनके शक्तिशाली होने के प्रमाण हैं। वहाँ से प्राप्त शिल्प-कला की तुलना केवल मात्र यूरोप की 'सेक्सन शिल्पकला' से की जा सकती है। जेठवा जाति के भाटों के पास इनके ११ राजाओं की नामावली है और आठवीं शताब्दी में इनके राजा ने दिल्ली के पुनर्संस्थापक तंवर राजा के साथ अपना विवाह सम्बन्ध स्थापित किया था। इस काल में जेठवा कमार (१८१) कहलाते थे। बारहवीं शताब्दी में उत्तर से आने वाले आक्रमणकारियों ने जिस राजा को घूमली से निकाल दिया था उसका नाम सेहल कमार बताया जाता है। इस स्थान-परिवर्तन के साथ ही कमार नाम लुप्त होने लगा और जेठवा नाम प्रसिद्ध होने लगा, इसी से लेखक ने इन्हें कमारी नाम भी दिया है। ये भारत की प्राचीन जातियों से अपना कोई सम्बन्ध स्थापित नहीं करते हैं अतः ये सम्भव एशिया की किमेरी जाति अथवा यूरोप की किम्ब्री जाति की एक शाखा हो सकते हैं।

---

१ २ सुप्रसिद्ध जालिम [सिंह] और राजराणा सरदार की पुत्री से उत्पन्न वर्तमान शासक माधोसिंह को अपनी कन्याओं को राणा के वंश-कुल में विवाह करने का अधिकार इसी कारण प्राप्त हो गया है। अन्य सांसारिक विचारणीय विषयों की अपेक्षा राजपूतों में उच्च रक्त की भावना इतनी सर्वोपरि है कि यद्यपि जालिमसिंह राजस्थान की सर्वाधिक वैभव-सम्पन्न और उत्तम प्रबन्ध-युक्त शासन (रियासत) की बागडोर संभाले हुए था, तो भी उसने कछवाहा जाति के एक छोटे जागीरदार की कन्या को अपनी जीवन-वधु के रूप में प्राप्त करना अपने कुल का गौरव समझा।

---

(१८१) ऐसा प्रतीत होता है कि टॉड ने भाटों की ख्यातों में कमार (कुंवर–कुमार) देख कर जेठवों को किमेरी अथवा यूरोप की किम्ब्री जाति मान लिया है।

सिलार अथवा सुलार[१८६]

पूर्व वर्णित जाति के अनुसार इस जाति के नाम की भी छाया-मात्र प्राप्त होती है यद्यपि यह प्रत्येक जाति सम्भव प्रतीत होता है कि इनके नाम पर ही किसी समय सारिक (१८७) नाम पड़ा होगा। सौराष्ट्र प्रायद्वीप का यह नाम टालमी तथा अन्य प्राचीन यूरोप के भूगोल-वेत्ताओं को ज्ञात था। लार (१८८) जाति सौराष्ट्र में अत्यन्त प्रसिद्ध थी। अनहिलवाड़ा के ऐतिहासिक वृत्तान्तों से यह ज्ञात होता है कि सिद्धराज जयसिंह ने अपने सम्पूर्ण राज्य में से इनको नष्ट कर दिया था। अतः सुलार या सिलार स्पष्टतः वे ही लार[१०२] होने चाहियें। यद्यपि 'कुमारपाल-चरित' का लेखक इस जाति को राजतिलक अथवा राजकुमार लिखता है किन्तु अब इनका नाम केवल बौद्ध-धर्म के अनुयायी व्यापारी-समुदाय में ही प्राप्त होता है। उनकी ८४ जातियों में से यह भी एक जाति मानी जाती है। इनमें से अधिकांश का उद्गम राजपूतों से है।

डाभी

इस जाति के सम्बन्ध में बहुत कम जानकारी प्राप्त होती है किन्तु यह जाति कभी सौराष्ट्र में अत्यन्त प्रसिद्ध थी। कुछ लोगों के मतानुसार यह यदु-कुल की एक शाखा है, यद्यपि सभी वंशज इसे पृथक ही विशेष मान्यता देते हैं। अब इनके पास न तो कोई भू-भाग है और न अधिक जन-संख्या।

गोर—गौड़

कभी राजस्थान में इस जाति को प्रतिष्ठा प्राप्त थी किन्तु इसने कभी भी महत्वपूर्ण स्थिति प्राप्त नहीं की। बंगाल के प्राचीन राजा इसी जाति के थे उन्हीं के नाम पर राजधानी का नाम लखनौती पड़ा।

हम यह विश्वास कई कारणों से कर सकते हैं कि यह जाति उस भू-भाग की स्वामी थी जिस पर बाद में चौहानों ने अधिकार कर लिया क्योंकि समस्त प्राचीन ख्यातों में इन्हें 'अजमेर के गौड़' कहा गया है। पृथ्वीराज के युद्ध में इनका विश्वसनीय सेनानायकों के रूप में वर्णन प्राप्त होता है। उनमें से एक ने बाउनवर्द के मध्य में एक छोटा सा राज्य स्थापित किया था जो आज शताब्दियों के मुगल आधिपत्य में भी बना रहा। अन्त में १८०९ में मराठा सरदार सिन्धिया ने गौड़ राजा की शक्ति समाप्त कर उसकी राजधानी सोपुर पर अधिकार कर लिया

---

१०२ जैसा कि पहिले कहा जा चुका है 'सु' 'उत्तम' पर्यायवाची एक उपसर्ग है।

१०३ १८०७ ई० में लेखक उस समय के अज्ञात प्रदेशों के अन्वेषणार्थ घूमता हुआ इस देश में से हो कर गुजरा था यद्यपि तब वह युवक और छोटा ओहदेदार ही था, तो भी बड़ौदा और सोपुर दोनों जगहों उसका स्वागत सत्कार

---

(१८६) सिलार-वंशी राजाओं के शिलालेखों में उनका विद्याधर जीमूतकेतु के पुत्र जीमूतवाहन के वंश में होना लिखा मिलता है। उनकी उपाधि 'तगरपुर वराधीश्वर' से इनकी राजधानी तगरपुर होने का अनुमान किया जा सकता है।

(१८७) टालमी आदि प्राचीन भूगोल-वेत्ताओं ने 'लारिक' (लारिक) नाम का प्रयोग गुजरात के उस प्रदेश के लिए किया है जो 'लाट' नाम से प्रख्यात है न कि सौराष्ट्र के लिए।

(१८८) सिलार वंशी राजाओं का 'लाट' देश से कोई सम्बन्ध नहीं पाया जाता। उनका आधिपत्य दक्षिण के भिन्न-भिन्न भागों पर रहा था।

मराठों पर अंग्रेजों की विजय के परिणाम-स्वरूप अब यह भू भाग अंग्रेजी राज्य के अन्तर्गत आ गया है। बुरे शासन के उस लालची सरदार ने इसे इतना नष्ट भ्रष्ट किया कि लगभग १२ लाख पौण्ड की राजस्व वाला खींच राज्य अब केवल ५ ० पौण्ड की आय वाला छोटा सा जिला मात्र रह गया है। खींच जाति की पाँच शाखायें हैं—अन्तहिर, सिलहाला, तूर, दुसेना और बोदानो।

डोर अथवा डोडा

इस जाति के विषय में हमें केवल इतना ही कहना है कि जिस जाति का नाम समस्त वंशावलियों में प्राप्त होता है। जिस जाति पर विजय प्राप्त करने को पृथ्वीराज ने इतना महत्व दिया था कि उसकी स्मृति में शिलालेख[१८७] खुदवाया था उसी जाति का समस्त प्राचीन इतिहास सम्बन्धि ज्ञान कालान्तर में नष्ट हो गया।

गहरवाल

गहरवाल राजपूतों के सम्बन्ध में उनके राजस्थानी भाई भी बहुत कम जानते हैं क्योंकि वे उनके अपवित्र-रक्त (१८९) को अपने साथ मिलाना पसन्द नहीं करेंगे यद्यपि वीर-योद्धा होने की दृष्टि से उनकी गिनती भी उन्हीं के साथ की जा सकती है। गहरवालों का मूल स्थान प्राचीन काशी[१८८] राज्य में है। उनका एक पूर्वज खोरताज (१९०) देव हुआ है। उसकी पाँचवीं पीढ़ी में जैसन्द (१९) ने विन्ध्यवासिनी देवी के स्थान पर विधान बलिदान करके अपनी सन्तान का नाम बुन्देला (१९) रक्खा। बुन्देले ही अब गहरवालों के स्वामाराज हैं उनके

और मनोरंजन राजसी ढंग पर किया गया। पुनः १८ ९ में जब वह इन प्रदेशों में गया तो उसकी स्थिति भिन्न थी। तब वह सिन्धिया के दरबार में अंग्रेजी राजदूत का सहयोगी था। उसे वहां सोपुर पर आक्रमण और उसका पतन देख कर हार्दिक दुःख हुआ क्योंकि वह अपने मित्रों की कोई सहायता नहीं कर सकता था।

विष्णु की भक्ति में डूबे रहने के कारण खींच राजा ने अपनी वीरता के गुणों को छोड़ दिया। उसने मांस त्याग दिया और भगवान की प्रतिमा के आगे नृत्य करता रहता था। वह भाटों के वीर-काव्य की अपेक्षा कृष्ण और उसकी प्रेमिका राधा के रहस्यवादी भजनों का अधिक रसिक हो गया। उसका नाम राधिका दास अर्थात् राधा का दास था। जहां तक उसका व्यक्तिगत सम्बन्ध है, हमें इस बात का दुःख नहीं होना चाहिये कि वह अपने वंश का अन्तिम पुरुष था।

१८७ देखिये 'ट्रैन्जेक्शन्स आफ रायल ऐशियाटिक सोसायटी' खण्ड १ पृ० १३३।

१८८ बनारस।

---

(१८९) ओझा रेऊ प्रभृति विद्वान गहड़वालों को राठौड़ों की एक शाखा मानते हैं किन्तु राजबली पाण्डेय इसे स्वीकार नहीं करते यथा—"गाहड़वालों का मूल-वंश – चन्द्र-वंश पौरव शाखा कश्यप गोत्र और आधुनिक उपाधि सिंह अथवा राय है" —गौ० अ० और उ०भा० का इ० पृ ११४।

(१९) ये दोनों नाम संशयात्मक हैं किन्तु बुन्देलों के वर्णनानुसार वीरभद्र के पुत्र हेमकरण को विन्ध्यवासिनी देवी ने वरदान दिया था कि तेरी सन्तति बुन्देला कहलायेगी। कुछ के मतानुसार बुन्देले गहड़वालों के वंशज हैं किन्तु उनका मूल पुरुष दासी से उत्पन्न हुआ था इसी कारण राजपूत बुन्देलों से रोटी-बेटी का सम्बन्ध नहीं रखते थे।

आधिपत्य में आने हुये उस विशाल भू-भाग का नाम 'बुन्देलखण्ड' पड़ गया जहाँ चन्देलों के खण्डहरों पर उनकी विभिन्न शाखायें आकर बसीं। इनके प्रमुख नगर कालिंजर, मोहिनी और ओड़छा हैं।

चन्देलों की गणना कुछ वंशजों ने ३६ राजकुलों में की है। यह जाति बारहवीं शताब्दी में शक्तिशाली थी और उस समय इनके अधिकार में यमुना और नर्मदा के मध्य का सम्पूर्ण भू-भाग था जिस पर कि अब बुन्देलों और बाघेलों का स्वामित्व है। पृथ्वीराज और इनके मध्य जो मनोरंजक और चमत्कारपूर्ण युद्ध हुए उनकी समाप्ति चन्देलों की पराजय के साथ हुई। इससे महरवालों की विजय का मार्ग प्राप्त हो गया। बुन्देला मानवीर ने सन् १२ ई में अपना प्रभुत्व स्थापित किया। उसका पुत्र वीरसिंह देव अत्यन्त शक्तिशाली हुआ। ओड़छा विभिन्न बुन्देला राज्यों का प्रधान बन गया किन्तु इसके संस्थापक ने उस विद्वान् अबुलफजल[१०] का वध करके अपना नाम सदैव के लिए कलंकित कर लिया जो सहारवेत्ता सम्राट् अकबर का मित्र, इतिहास-लेखक हिन्दू जाति का अभिभावक एवं समर्थक था।

अकबर के काल से प्रारम्भ कर मुगल साम्राज्य की समाप्ति तक बुन्देलों ने समस्त महत्वपूर्ण संग्रामों में भाग लिया। राजस्थान के समस्त वीर राजाओं में से किसी ने भी ओड़छा और दतिया के बुन्देला राजाओं के बराबर वीरता और स्वामी भक्ति के साथ उनकी सेवा नहीं की होगी। ओड़छा का राजा भगवान शाहजहाँ की सेना में हिरावल का सेनापति था। उसका पुत्र शुभकरण दक्षिण में औरङ्गजेब के प्रमुख सेनापतियों में से था और दलपत जाजवो के उस रणक्षेत्र में मारा गया जो उत्तराधिकारी के लिए मुगल शाहजादों में हुआ था। इनके वंशजों का पतन नहीं हुआ। वर्तमान राजा के पिता[११] ने जिस उच्च प्रतिष्ठा और वीरता का परिचय दिया उसके समान उदाहरण पश्चिम के समस्त वीरतापूर्ण इतिहास में नहीं मिलेगा।

बुन्देला अब बहुसंख्यक जाति हो गई है और उसका प्राचीन नाम 'महरवाल' अब केवल उनके मूल स्थानों तक ही सीमित रह गया है।

बड़ गूजर

यह सूर्य-वंशी जाति है। गुहिलोतों को छोड़ कर यही एक ऐसी जाति है जो स्वयं को राम के ज्येष्ठ पुत्र लव की सन्तान मानती है। कछवाहों के आधिपत्य में ढूंढाड़[१२] का बहुत सा भाग था। माचेड़ी राज्य में पहाड़ी

---

१० यह वध अकबर के पुत्र शाहजादा सलीम के आदेश पर हुआ जो बाद में सम्राट् जहाँगीर हुआ। इस घटना का वर्णन इस बादशाह ने अपनी आत्म-कथा में किया है।

११ महादजी सिन्धिया की मृत्यु के पश्चात् उसके कुटुम्ब की स्त्रियों ने उसके उत्तराधिकारी (दौलतराव) से डर कर दतिया के बुन्देला राजा की शरण ली। सेना भेज कर उनकी वापसी की मांग की गई और अस्वीकृति के परिणाम-स्वरूप युद्ध की सूचना दे दी गई। इस वीर पुरुष ने आक्रमण होने तक की भी प्रतीक्षा न करके अपने साथी से सुसज्जित ३ अश्वारोहियों के साथ आक्रमणकारियों का भीषण संहार आरम्भ कर दिया उसने आत्मसमर्पण मांगने या देने का समय ही नहीं दिया। इस भांति उसने शरणागत की रक्षा की प्रतिज्ञा रखते हुए युद्ध भूमि में उत्सर्ग किया। जिस समय वह भयानक घायल अवस्था में पड़ा था, उस समय भी उसने शत्रु की कोई सहायता स्वीकार न की, और युद्ध-स्थल छोड़ने से इन्कार कर दिया। जीवन की किसी भी आस को न मान कर वह मृत्यु की प्रतीक्षा करता रहा। लेखक स्वयं उस स्थान पर गया है जहाँ पर कि वह मारा हुआ था उसने उसके पुत्र अर्थात् वर्तमान राजा से उसके कुल की ख्याति प्राप्त की थी।

१२ ढूंढाड़ एक प्राचीन भौगोलिक नाम है, जिसमें आम्बेर या जयपुर तथा माचेड़ी सम्मिलित है

गढ़ राजोर[११२] इनकी राजधानी थी। राजगढ़ और अलवर पर भी इनका स्वामित्व था। कछवाहों ने उन्हें इस भू-भाग से निर्वासित कर दिया था। इस वंश के एक दल ने गंगा-तट पर शरण ली और अनूपशहर में अपनी बस्ती बसाई।

सेंगर

इस जाति के सम्बन्ध में बहुत कम ज्ञात है ऐसा प्रतीत होता है कि इस जाति ने कभी महत्त्वपूर्ण प्रसिद्धि प्राप्त नहीं की। इस जाति का एक मात्र राज्य यमुना तट पर स्थित जगमोहनपुर है।

सीकरवाल

ऐसा प्रतीत होता है कि पूर्वोक्त की भाँति इस जाति ने भी राजस्थान में कभी महत्त्वपूर्ण स्थान प्राप्त नहीं किया और न अब ही इनका कोई स्वतन्त्र राज्य बचा है, यद्यपि मदुवाटी से मिला हुआ चम्बल नदी के दाहिने किनारे पर एक छोटा भू-भाग सीकरवाल उनके नाम से है जो सिन्धिया राज्य के ग्वालियर जिले में शामिल कर लिया गया है। अतः अब सीकरवाल या तो कृषि से अपना जीवन यापन करता है अथवा अपने शस्त्र—भाला—की चाकरी करता हुआ कभी किसी के नेतृत्व में तो कभी स्वयं बटमारी करता है।

उनका यह नाम उनके गाँव सीकरी (फतेहपुर) के कारण पड़ा जो पूर्वकाल में एक स्वतन्त्र राज्य था।

बैस

इस जाति ने ३६ राजकुलों में स्थान प्राप्त किया है किन्तु लेखक का विश्वास है कि यह सूर्य-वंशियों की ही एक प्रशाखा है क्योंकि न तो चन्द की सूची में और न कुमारपाल चरित्र में ही इनका नाम मिलता है। अब यह जाति सर्वव्यापक हो गई है दोआब अथवा गंगा और यमुना के मध्य का प्रदेश अब इनके नाम पर बैसवाड़ा कहलाता है।

दाहिया

यह एक प्राचीन जाति है जिसका निवास-स्थान सिन्धु के किनारे सतलुज के संगम पर था। यद्यपि ३६ कुलों में इनका अपना स्थान है किन्तु इस समय उनके कहीं भी विद्यमान होने का पता नहीं है। इनका उल्लेख जैसलमेर के भाटियों की ख्यातों में प्राप्त होता है। इनके नाम और निवास-स्थान पर विचार करके हम यह परिणाम निकालते हैं कि वे सिकन्दर के समय के दाही लोग हों।

जोहिया

इस जाति का निवास-स्थान भी वही था जो दाहियों का था इन दोनों का उल्लेख साथ-साथ ही किया जाता है। यह जाति गारा नदी को पार करके उत्तरी भारत के मरुस्थल तक में बस गई थी। प्राचीन-ख्यातों में इन्हें जांगल देश का स्वामी कहा जाता था जिसमें हरियाणा भटनेर और नागौर सम्मिलित थे। दाहिया की भाँति विलुप्त इस जाति से सम्बन्धित एक ग्रन्थ लेखक के पास है।

---

११२ राजोर के खण्डहर राजगढ़ से १५ मील पश्चिम में हैं। लेखक ने वहाँ एक आदमी को भेजा था जिसने नीलकण्ठ महादेव के मन्दिर में शिलालेखों के होने की सूचना दी।

मोहिल

वंशाओं ने जिन कारणों से इस जाति को यह स्थान दिया है, उन (कारणों) पर विचार करने का कोई साधन हमारे पास नहीं है। इनके प्राचीन इतिहास से केवल मात्र इतना ही जाना जा सका है कि वर्तमान बीकानेर राज्य की स्थापना से पूर्व यह जाति इस भू-भाग में बसी हुई थी। राठौड़ संस्थापकों ने यद्यपि मोहिलों का सर्वनाश नहीं किया तो भी उन्हें वहां से सर्वथा बेदखल किया। मालण (१९१) मालणी अथवा मल्लीया जातियां भी अब लुप्त हो गई हैं; इनकी भांति ये भी उस मल्लोई जाति के वंशज होने का दावा करके प्रतिष्ठा प्राप्त कर सकते हैं, जो सिकन्दर की शत्रु थी और जिनका निवास-स्थान मुलतान (मोहिल-थान ?) था।

निकुम्भ (१९२)

इस जाति ने सभी वंशावलियों में प्रसिद्धि प्राप्त की है किन्तु हम इनके सम्बन्ध इतनी ही खोज कर सके कि गहलोतों का यहां अधिकार होने के पूर्व ये मांडलगढ़ जिले के स्वामी थे।

राजपाली (१९३)

इस जाति के सम्बन्ध में कुछ भी खोज पाना कठिन ही है। इसका वर्णन सभी वंशाओं ने राजपाली राजपालिका अथवा केवल पाल के नामों से किया है विशेषतः सौराष्ट्र वालों ने अतः सम्भव है कि ये सौराष्ट्र में विशेष रूप से बसे हों। इस रूप से ये सीथियन उत्पत्ति के जान पड़ते हैं इस परिणाम की पुष्टि इनके इस नाम से भी होती है जिसका अर्थ (राजपाली) अर्थात् 'राजकीय चरवाहा' निकलता है, जो सम्भवतः प्राचीन पाली[११३] जाति की एक शाखा थी।

माहिरिया

इस जाति को ३६ कुलों में स्थान देने के लिये एक मात्र आधार ग्रन्थ 'कुमारपाल-चरित' ही है। इनके इतिहास के सम्बन्ध में और कोई विशेष जानकारी प्राप्त नहीं हुई। इस्लामी सेनाओं के प्रथम आक्रमण के समय चित्तौड़

---

११३ अन्तिम अक्षर—'का'—सम्बन्धकारक का चिह्न है।

---

(१९१) मालण चौहानों की एक शाखा है जो कहीं-कहीं प्राप्त होती है। मोहिल जाति भी नष्ट प्राय सी है। मोहिल और मालण एक न हो कर भिन्न-भिन्न वंश हैं।

(१९२) निकुम्प या निकुम्भ अपनी उत्पत्ति सूर्यवंशी राजा निकुम्भ से बताते हैं। खानदेश जिले के पाटण ग्राम से प्राप्त विक्रमी सम्वत् १२१० और १२१३ के दो लेखों में निकुम्भ-वंशियों का वृत्तान्त मिलता है।

(१९३) टॉड ने राजपाली का अर्थ 'राजकीय चरवाहा' किया है जो ठीक नहीं है क्योंकि कहीं-कहीं इसका नाम पालिक या पाली भी प्राप्त होता है जो सम्भवतः पाल वंशियों का सूचक हो।

की रक्षार्थ जो-जो राजा पहुँचे थे उनमें देबिल का स्वामी दाहिर (११४) देसपति[114] भी था। मुहिनोतों की ख्यात के प्रतिलिपि कर्ता की अज्ञानता वश 'देबिल' के स्थान पर 'देहली' लिखा गया किन्तु हमारे पास न केवल तंवर-वंश के सम्पूर्ण राजाओं की नामावली ही विद्यमान है अपितु हम यह भी जानते हैं कि उस समय देहली का प्रारम्भ भी नहीं हुआ था। चित्तौड़ के इतिहास में यद्यपि इस राजा का थोड़ा सा ही वृत्तान्त है तिस पर भी यह अत्यन्त मूल्यवान है, क्योंकि उससे उक्त ऐतिहासिक वृत्तान्त की प्रमाणिकता सिद्ध होती है सिन्ध के देसपति (Despot) दाहिर का जो करुणाजनक अन्त उसकी राजधानी में हुआ, उसका वर्णन अबुलफज़ल ने किया है। हिजरी सन् ९९ में बगदाद के खलीफा के प्रतिनिधि कासिम ने इस पर आक्रमण किया और उसने इसके साथ अत्यन्त ही नृशंसतापूर्ण व्यवहार किया। यह राजा 'दाहिर' (शब्द) को अपने नाम के रूप में प्रयोग करता था अथवा अपनी जाति के लिये यह बात अनुमान के लिये छोड़ दी जाती है।

दाहिमा

दाहिमों ने अपने बड़े नाम का विनाश मात्र ही छोड़ा है। सात शताब्दियों की इस कालावधि ने इस जाति की स्मृति को समाप्त प्रायः कर दिया है, जिनके कार्य एक समय भाटों के गीतों का विषय थे। दाहिमा बयाना के स्वामी एवं पृथ्वीराज चौहान के साम्राज्य के शक्तिशाली स्तम्भों में से एक थे। इस घराने के तीन भाई उक्त सम्राट् की सेवा में उच्चतर पदों पर आसीन थे। जिस समय इनमें सबसे बड़ा भाई कैमास पृथ्वीराज का मन्त्री था, वह समय चौहान साम्राज्य का सर्वाधिक उज्ज्वल काल था किन्तु वह मन्त्री ईर्ष्या का शिकार हो गया। दूसरा भाई पुंडीर लाहौर सीमान्त पर तैनात सेनापति था। तीसरा चामण्डराय उस अन्तिम युद्ध का प्रधान सेनापति था जिसमें कग्गर के किनारे पृथ्वीराज अपनी सम्पूर्ण शौर्य सहित वीर गति को प्राप्त हुआ। शाहबुद्दीन के इतिहासकारों ने दाहिमा वीर चामण्डराय का नाम सुरक्षित रखा जिसे उन्होंने खाण्डेराय के नाम से स्मरण किया है और उन्हीं के मतानुसार जिसकी वीरता से स्वयं शाहबुद्दीन मरने से बाल-बाल बचा। चौहान (साम्राज्य) की समाप्ति के साथ-साथ ही यह जाति भी लुप्त हो गई प्रतीत होती है। उस (पृथ्वीराज) का इकलौता पुत्र रेणसी(११५)चामण्डराय की बहिन से उत्पन्न हुआ था किन्तु देहली पर घेरा पड़ने तक वह भी जीवित न रहा। इस विवाह का वर्णन भाट (चन्द बरदाई) ने पूरे एक सर्ग में किया है, और जितनी वाक्-पटुता उसने दाहिमा[115] की प्रशंसा में दिखाई है, वैसी और कहीं नहीं दिखाई।

---

११४ एक देश का राजा अर्थात् देश+पति (अंग्रेजी—डेस्पोटस ?)

११५ पृथ्वीराज से दाहमी के विवाह तथा बयाना का वर्णन भाट चन्द (बरदाई) इस प्रकार करता है—"कैलाश के समान विशाल दुरन्दहार पर्वत की चोटी पर, जिसके भार से शेषनाग का मस्तक भी पीड़ित हो रहा था, बयाना का दुर्ग स्थित था। दाहिमा के तीन पुत्र और दो सुन्दरी कन्यायें थी; उनका नाम इस कलियुग में अमर रहे! एक कन्या का विवाह मेवाड़ के स्वामी से और दूसरी का चौहान से हुआ। उसने पहले दहेज में

---

(११४) सिन्ध के इतिहास 'चचनामा' से ज्ञात होता है कि 'दाहिर' सिन्ध के राजा सीहर्ष (सिहरस) के ब्राह्मण मंत्री 'चच' का पुत्र था। राजा की मृत्यु पर 'चच' (मंत्री) राजा बन गया।

(११५) 'पृथ्वीराज रासो' में पृथ्वीराज के पुत्र का नाम रेणसी दिया है किन्तु 'हम्मीर महाकाव्य' एवं अन्य वंशावलियों में उसका नाम गोविन्दराज मिलता है।

अध्याय ८

राजपूत जातियों की वर्तमान राजनैतिक-स्थिति पर दृष्टिपात

कालान्तर में समय-समय पर निवास करने वाली और अब यहाँ निवास कर रही विभिन्न भारतीय जातियों का इस भाँति विवेचन करके हम इस विषय को समाप्त करते हैं।

विषय का क्षेत्र इतना विस्तृत है कि इन जातियों के धर्म और रीति-नीति के सम्बन्ध में जितना कुछ बताया जा सकता है उसका विवरण प्रस्तुत करना असम्भव था किन्तु हम इस कमी की पूर्ति उन विशेष प्रसिद्ध जातियों के इतिहास में कर देंगे जो अब भी शासनारूढ़ हैं। इससे हम पुनरोक्ति के दोष से भी बच जायेंगे।

इन समस्त जातियों की नीति-व्यवस्था पर नियन्त्रण करने वाला उनका एक ही धर्म है जो उनके रीति-व्यवहार की बातों में अन्तर नहीं पड़ने देता क्योंकि विभिन्न परिस्थितियों और जल-वायु में रहने के कारण उनके मध्य भिन्न-भिन्न प्रकार के रीति-रिवाज विकसित होना स्वाभाविक होता है। तिस पर भी इस प्रकार के कारणों से उनके दैनिक व्यवहार में भिन्नता अवश्य आ जाती है। यदि कोई भी दर्शक मारवाड़ के नीचे रेतीले प्रदेश से यकायक अरावली की उच्च श्रेणी को पार कर मेवाड़ की उच्च भूमि में बसा जाय तो वह वेश-भूषा और व्यवहार में यथेष्ट भिन्नता देखेगा। किन्तु ये भिन्नतायें केवल बाह्य और व्यक्तिगत हैं उनके मानसिक स्वभाव में बहुत ही कम भिन्नता मिलती है क्योंकि (उनकी रीति-नीति को रूप देने वाला और उसमें सुधार करने वाला) उनका धर्म और नीति की व्यवस्था एक ही है जिसके अनुसार वे सभी चलते हैं।

इन सभी जातियों में हम एक ही प्रकार की पौराणिक कथाएं समान देव-वंशावलियां और समान त्यौहार देखते हैं यद्यपि उनको मनाने की उनकी अपनी-अपनी विशेषतायें हैं। उनके विचारों में तथा उनकी वेश भूषा में अत्यन्त सूक्ष्मान्तर है। जिनको ज्ञात करना यदि सम्भव भी हो तो मनोरंजक नहीं होगा। जब उनकी पगड़ी का पेंच और जामे की चुन्नट, फ्री मेसनों(१) के सांकेतिक चिह्नों की भाँति प्रत्येक जाति में अपनी विशिष्टता लिए हुए हैं जो उन

---

(१) फ्री मेसन(Free masonry)नामक भ्रातृ भाव सूचक समिति के सदस्य। यह समिति यूरोप में १७वी शताब्दी में स्थापित हुई थी जिसकी शाखायें धीरे-धीरे सारी पृथ्वी पर फैल गई। इस सभा के कुछ निश्चित चिह्न और संकेत होते हैं जिन्हें केवल उसके सदस्य ही जानते हैं और जिनसे वे एक दूसरे की पहिचान लेते हैं।

जाति के व्यक्ति और दूसरी जाति के व्यक्ति के मध्य का अन्तर बता देंगी। किन्तु उनके रीति-रिवाज सम्बन्धी विशेषताओं को भली भांति देखने का स्थान उनका घर है जहाँ समस्त बाहरी संयम उतार दिये जाते हैं। अपने चाल-चलन का परिचय दिये बिना तथा अपने गुण-दोषों को भली भांति बताए बिना ही क्या कोई यूरोपवासी इन जातियों के रीति-व्यवहार का पूर्ण अध्ययन करने के लिये उनके आतीय निजी-गृह में प्रवेश करने का प्रयत्न करता है? परन्तु वह राजपूतों के साथ ऐसा कर सकता है क्योंकि स्वतन्त्र स्वभाव वाले राजपूत किसी भी प्रकार के समय अथवा बन्धन का विचार नहीं रखते। अपने व्यक्ति-प्रेम और आतिथ्य-भाव के कारण वे उन लोगों के साथ खुले रूप में मेलजोल बढ़ायेंगे, जो उनके विचारों और संकुचित भावनाओं का आदर करेंगे। वे स्वयं के गौरव और उच्चता के विचारों के इतने वशीभूत नहीं है कि इस प्रकार के मित्रतापूर्ण वार्तालाप से कुछ सीख सकने का विचार न रखते हों। उनमें मिलने वाली वैयक्तिक भिन्नतायें स्थान सम्बन्धी कारणों से होती हैं। उनकी मानसिक एकरूपता का मुख्य कारण है उनका एक महान निश्चित् सिद्धान्त जिसका स्वाभाविक नैतिक प्रभाव चाहे जो ही परन्तु उसने इन जातियों को सदैव राष्ट्रों की भांति जीवित रखा है और वे इतने दीर्घकाल तक अपने प्राचीन रीति-व्यवहारों का आनन्द उठाते रहे हैं। मेरी हार्दिक इच्छा है कि सभी बातों में उच्च होने की हमारी गर्वपूर्ण भावना जिसके कारण व्यक्ति सदैव अपने मित्रों से ऊँचा उठ जाता है हमारे इस पूर्वीय साम्राज्य को अल्पकाल तक जीवित रखे। साथ ही इतने बड़े साम्राज्य के स्वामी बनने के विशिष्ट सौभाग्य को प्राप्त कर हम समय-समय पर होने वाले महत्वाकांक्षी मूर्खों के समय स्वयं की श्रेष्ठता की भावना के वशीभूत हो कर पृथ्वी पर स्थित सभ्यता के इन सर्वाधिक प्राचीन अवशिष्ट चिह्नों को समाप्त न कर दें। अन्यथा यह भय सर्वत्र फैल जायगा कि उनके राज्य समाप्त कर, हम अपने साम्राज्य में समाविष्ट कर लेंगे। इस प्रकार के वातावरण के परिणाम स्वरूप न केवल उनकी शान्ति नष्ट होगी बल्कि हमारे साम्राज्य के स्थायित्व के लिए भी सङ्कट उत्पन्न हो जायगा।

सहायक सन्धियों की हमारी वर्तमान प्रणाली के परिणाम-स्वरूप जिसमें बुराई के बीज प्रारम्भ से ही विद्यमान है उपर्युक्त घातक परिणाम अवश्य होंगे। (यद्यपि हमारी मातृभूमि के शासक वर्ग का यह उद्देश्य कदापि नहीं है)। यदि मनुष्य की बुद्धि का उपयोग इस प्रकार की सन्धियों को तैयार करने में किया गया हो जिनका उद्देश्य ही अन्त में सन्धिविच्छेद होकर कलह उत्पन्न करना रहा हो, तो उन्हें कूटनीति के उच्च नमूने बता कर उनकी प्रशंसा तो अवश्य ही की जायेगी।

प्रत्येक सन्धि की भावना और शब्दों के मध्य एक भेद निरन्तर दिखाई दे रहा है जब कि प्रत्येक सन्धि की आधार-शिला प्रत्येक राज्य की आन्तरिक स्वतन्त्रता है किन्तु अनन्त नई से नई शर्तों द्वारा जिसका हनन किया जा रहा है और उसे समाप्त किया जा रहा है। विधि निषेध के मार्गों के बाद यह संधर्ष तीव्र हो रहा है और अन्त में यह स्पष्ट प्रतीत होता है कि ऐसी परिस्थितियों में स्वतन्त्रता स्थिर नहीं रह सकती! जहाँ अनुशासन की अत्यन्त कमी है जैसा कि इन सामन्ती राज्यों में प्रायः देखा जाता है जहाँ प्रत्येक प्राचीन सामन्त स्वयं को सैनिक टुकड़ियों का स्वामी होता है ऐसी स्थिति में उन राज्यों में सहायक सेना रखने की धोखेबाज धारा ही कलह का मूल बन जायेगी। क्योंकि इसमें प्रत्येक सरदार के साथ हस्तक्षेप करना पड़ेगा जिसके फलस्वरूप ऐसी सहायता निरर्थक ही नहीं अपितु हानिकारक भी सिद्ध होगी। यह (सन्धि सहायता की धारा) खिराज सम्बन्धी धारा से बुराई में कम भी नहीं है जो अनिश्चित एवं अनिश्चित है और जिसके उनके राजस्व के हिसाब-किताब का पूरा पता ले तथा लगाने और ध्यान रखनेकी व्यवस्था के लिए द्वार खुला रखा है। गुप्तचरी का उपरोक्त कार्य न केवल तिरस्कार योग्य है बल्कि यह सन्धि की उस भावना के भी सर्वथा विपरीत है जिसके अनुसार उनकी 'आन्तरिक शासन-व्यवस्था' पूर्णतः स्वतन्त्र एवं अनुल्लंघनीय मानी गई है। एक ओर तो हम भांति हस्तक्षेप करने एवं विवाद खड़ा करने के लिए द्वार खुले पड़े हैं और जब कि इन राज्यों की ऐसी

शासन-व्यवस्था हमारी चुस्त एवं निश्चित शासन-व्यवस्था के सम्पर्क में आती है तो महत्वाकांक्षा की दृष्टि से भयानक अवसर उपस्थित रहते हैं। कौन अन्धा यह नहीं जानता कि यूरोपीय देशों में सरकार के हर कामकाज में ख्याति प्राप्त करने की महत्वाकांक्षाकी प्रवृत्ति काम नहीं करती रहती है। यह भी स्पष्ट है कि युद्ध कौशलके चातुर्य्य और नवीन प्रदेशों को विजय कर साम्राज्य की अभिवृद्धि करने के कार्यों का महत्व शासन-व्यवस्था के अन्य शांतिपूर्ण असैनिक कार्यों से कहीं अधिक माना जाता है। ऐसी स्थिति में उन राज्यों में समय-समय पर होने वाले हमारे पदार्पण का अर्थ राजाओं के लिए किसी नवीन परिवर्तन की भविष्यवाणी करने वाले धूमकेतु के मंडराने की भाँति होगा।

पूर्व में हमारी स्थिति वैसी ही रही है और अभी भी वैसी ही है जैसी कि किसी देश पर विजय प्राप्त करने वाले एक विजेता की होती है। यद्यपि अभीष्ट विलम्ब हो गया है किन्तु अब भी हम उस स्थिति को आगे बढ़ने से रोक सकते हैं और विजयावस्था द्वारा जोड़ी जाने वाली विविध विषमताओं से स्वयं को बचा सकते हैं। कितने आश्चर्य की बात है कि एक दलदली तट के झगड़े और उसकी विजय ने हमको इतने सुदूर क्षेत्र में टालेमी के भूगोल की सीमा औरिम्राकासोनेसस (२) तक सेनाएं ले जाने और विजय करने के लिए बाध्य कर दिया। आज हमारी विजय की स्थिति क्या है? पश्चिम में सिन्धु नदी तक पूर्व में ब्रह्मपुत्र नदी तक उत्तर में हिमाचल पर्वत तक की विशाल आकार लिए तातारियों की चट्टानें से रक्षार्थ खड़ा है दूसरी ओर समुद्र एवं हमारे जलपोत (जहाज) हमारी पीठ पर हैं। यह है आज हमारी शक्ति का स्वरूप! किन्तु यदि हमारी यह द्रुतगामी महत्वाकांक्षा ब्रह्मपुत्र पर ही न रुक कर, अराकान के चीड़ के वनों में भी अपनी विजय पताका फहराने जाती है तो इसका क्या विश्वास है कि जो हमारे साथ सन्धियों के बन्धन में बंधे हुए हैं उन हिन्दू राज्यों की स्थिति भी यही रहेगी।

किन्तु आशा यही की जाती है कि जिस उदार मनोवृत्ति के साथ इन राजपूत राज्यों को पतनावस्था एवं भावी विनाश से उबार कर इन सन्धियों में बांधा गया है वही मनोवृत्ति भारी से भारी विजयोल्लास के मध्य भी स्थित रहेगी और इन राज्यों की स्वतन्त्रता पर आंच न आवेगी! यह आशा की जाती है कि उसी दयापूर्ण मनोवृत्ति के साथ हम उन राज्यों के दोषपूर्ण कार्यों को भी समय-समय पर क्षमा कर देंगे, जिन्हें हम प्रायः सहन नहीं करते और इस भाँति विनाशकारी विप्लव कीस्थिति से पूर्ण इस मरुस्थल में हम इन प्राचीन राज वंशोंकि अस्थान को जीवित रख सकेंगे जिनके गुण अपने हैं, और अवगुण (लम्बे काल तक उन पर किये गये) अत्याचार, विषम और धार्मिक असहिष्णुता से उत्पन्न हुए हैं।

कम से कम उनके विषय में जानकारी प्राप्त करना ही उनके साथ सहानुभूति करने के लिये पहला कदम उठाना है। क्या हम यह आशा कर सकते हैं कि कुछ ही काल तक राजनैतिक शक्ति को धारण करने वाले हमारे गवर्नरों और उनके प्रतिनिधियों का शासकीय डंडा इन राज्यो पर अधिक मृदुता-पूर्वक उपयोग में लिया जायगा जब कि वे उनके इतिहास से अनभिज्ञ हों और जब कि उनमें (गवर्नरों में) उनके वीरतापूर्ण सैनिक तथा उनकी गर्वीली प्रकृति उदारता सभ्यता और आतिथ्य आदि गुणों की जानकारी से दयालुता के विचार भी उत्पन्न नहीं हुए हों। राजपूतों के ये गुण उनके समस्त विप्लवों के मध्य भी जीवित रहे हैं, यहाँ तक कि मुसलमानों की धर्मान्धता और क्रूर शासन के लम्बे काल में भी ये लुप्त नहीं हुए यद्यपि यह सही है कि तातारियों और मुगलों के आठ शताब्दियों के राज्यकाल में कुछ महान् गुणवान एवं उदार शासक भी बीच-बीच में उत्पन्न हुए, जिन्होंने अपने पूर्व के धर्मान्ध राजाओं के अत्याचारों से उन्हें मुक्ति प्रदान की।

---

(२) हिन्दुस्तान के पर्वतीय प्रदेश।

राजपूतों के समक्ष जो उच्च स्थिति हमने ग्रहण की और जो उदात्त विचार हमने प्रकट किये तथा मानव जाति में कठिनता से प्राप्त होने वाली स्वच्छ भावनाओं और निस्वार्थ दयालुता का जो बाना हमने धारण किया है उसके उदाहरण केवल उनके (हिन्दुओं के) धार्मिक ग्रन्थों में ही मिलते हैं। इसका परिणाम यह हुआ कि हमारी दया न्याय और पवित्रता के सम्बन्ध में अतिशय उच्च धारणायें बना ली गईं और राजपूत हमारे सभी कार्यों में सर्वशक्तिमान की बुद्धि की अपेक्षा किसी भी तरह कम बुद्धि की मात्रा नहीं रखते थे। किन्तु मिथ्या विश्वास का यह आवरण हट चुका है और प्रत्येक राज्य में ऐसी घटनाएं घटी हैं, जिन्होंने यह सिद्ध कर दिया है कि हम भी उन्हीं की भांति इसी मृत्यु लोक के प्राणी हैं तथा कवि की 'दूर के ढोल सुहावने' वाली उक्ति भी राजकीय व्यवहारों में चरितार्थ हो गई है। परिणाम स्वरूप सर्वत्र शोक और अविश्वास का वातावरण फैल गया है और क्रोधाग्नि प्रज्वलित हो गई है किन्तु कर्तव्य की भावना अब भी इतनी शक्तिशाली है कि उदारता की मनोवृत्ति पूर्णतः लुप्त नहीं हुई है। इन दोषों को मिटाने का अब भी अवसर है और उससे हम राजपूत राज्यों को सदैव के लिए अपने अत्यन्त उपयोगी मित्रों की भांति कायम रख सकेंगे। किन्तु ऐसा तभी सम्भव होगा जब कि हम उन्हें उनकी आन्तरिक स्वतन्त्रता और उनकी प्राचीन रीति-नीति का पूर्णतः उपभोग करने दें।

मध्ययुग के प्रसिद्ध इतिहासकार का कथन है "कोई भी राजनैतिक संस्था जीवित नहीं रह सकती यदि वह प्राचीन भावनाओं द्वारा मनुष्यों के हृदय में घर नहीं किए हुए हो अथवा लोगों ने उसके उच्च गुणों की उत्तमता को स्वीकार नहीं कर लिया हो। सामन्ती शासन-व्यवस्था में यह बात अत्यधिक मात्रा में मिलती थी परस्पर सहायता और स्वामि भक्ति के कर्तव्यों को सैनिक सेवा द्वारा पूरा करते समय मित्रता की भावनायें जागृत हो जाती थीं और नैतिक सहानुभूति के सम्बन्ध उनके नियत शासकीय सम्बन्धों को और भी दृढ़ कर देते थे।"

राजनैतिक संस्थाओं के स्थायित्व के लिए जो एक गुण आवश्यक है वह है शासन सम्बन्धी 'मान्य गुणों का' होना, किन्तु तत्सम्बन्धी आवश्यक गुणों का रजवाड़ों में सदैव अभाव रहा है। इस अभाव की पूर्ति उनके स्वाभावतः 'प्राचीन भावनात्मक सम्बन्ध' ने कर दी है और उसने उनकी कई कमियों को छुपा दिया।

इन राज्यों के प्रति हमारे व्यवहार में अत्यन्त विरोधाभास मिलता है। कुछ बातों में हम नियम विरुद्ध एवं असंगत हस्तक्षेप कर बैठते हैं और अन्य बातों में कुछ भी नहीं करते। हमारे इस व्यवहार से समाज के विभिन्न ढांचों में लूटपाट-पूर्ण उत्पीड़न द्वारा जो अस्त-व्यस्तता उत्पन्न हुई है उसकी और वृद्धि ही होगी जब कि हमारा तो सब यत्न होना चाहिये कि हम उनकी प्राचीन सामाजिक एकता और व्यवस्था को पुनर्स्थापित करने में सहायता करें। इस बात का पूरा-पूरा भय है कि हमारे इस प्रकार के व्यवहार का निश्चित परिणाम यह होगा कि हमारे अन्य मित्रों की भांति इन राजपूत राज्यों की भी ऐसी अधोगति होगी जिससे कि वे एक दिन हमारे इस अत्यन्त विस्तृत राज्य में समाविष्ट कर लिये जायेंगे।

यह तर्क प्रस्तुत किया जा सकता है कि जिस काल में वे सन्धियाँ हुईं उस काल की स्थिति तथा उस समय के हमारे परिमित ज्ञान को देखते हुए इन सन्धियों का आशय एवं प्रयोजन सर्वथा अनुचित नहीं थे। किन्तु आज जब कि हमारा ज्ञान विस्तृत हो गया है, तो क्या अब यह अत्यन्त आवश्यक नहीं हो गया है कि हम उनके [सन्धि-पत्रों के] दोषों को साफ करें और हमारे सम्बन्धों को उन दो महान् सिद्धान्तों 'पूर्ण आन्तरिक स्वतन्त्रता" और पंचायत शक्ति द्वारा स्वीकृत 'सर्वोच्च प्रभुसत्ता' के आधार पर पुनः स्थापित कर लें। यह भी कहा जा सकता है कि विशाल राजनैतिक ढांचे के ये दोनों आधार-स्तम्भ भी वे स्थायी गुण नहीं रखते जिनकी कि सन्धि करने वाले

शब्दों में व्याख्या की है। परन्तु इसके विपरीत विचार के ओर्मुज्द और अहुरिमन (१) अर्थात् अच्छे और बुरे दोनों पक्ष हैं। किन्तु जब अनिश्चित परिमाण वाले आर्थिक समझौतों को भी हम उन पर लाद देते हैं जो उनकी समृद्धि के परिमाणानुसार बढ़ते जाते हैं, तथा जब उनकी अधिक स्वच्छन्दियों के बीसे अनुशासन आदि के कारण हमारे पास शिकायतें पहुंचती हैं तो निश्चय ही हम इस बात पर गौरव अनुभव कर सकेंगे कि हमने एक ऐसी व्यवस्था स्थापित की है कि जिसमें हमें उनके आन्तरिक मामलों में हस्तक्षेप करने के लिये बाध्य होना पड़ेगा जिसे प्रत्येक सन्धि-पत्र का मुख्य सिद्धान्त स्पष्ट रूप से वर्जित करता है।

हमारे इस व्यवहार का अवश्यम्भावी परिणाम यह होगा कि हम राष्ट्रीयता को मिटाने वाले सिद्धान्त 'फूट डालो और राज्य करो' को जीवित रखेंगे जिसे मराठे भलीभांति समझते हैं। हम संख्या में कम हैं अतः हमारे प्रतिनिधियों को एक प्राचीन कहावत के अनुसार 'दूसरों की आंखों और कानों का सहारा लेकर' कार्य करना पड़ेगा। किन्तु हमारा हस्तक्षेप पुनः उत्पन्न हुए परस्पर के विश्वास को पूर्णतः समाप्त कर देगा। इस स्थिति में कुप्रतिनिधि यह सोचेंगे कि वे उनके मामलों पर अत्याचार कर सकते हैं सामन्त ऐसे उपाय ढूंढ निकालेंगे कि राजाज्ञा की अवहेलना कर सकें। वहां के अनुगामी मंत्रियों को उन राज्यों से विराज सम्बन्धी अनिश्चित धन को एकत्रित करने की दृष्टि से हमारा समर्थन प्राप्त होगा जिसके परिणाम स्वरूप हमारे प्रति जो एकता विश्वास और कृतज्ञता की भावना उनके हृदय में विद्यमान है और जिसे वे स्वीकार भी करते हैं वह इनके आशीष-वचन के साथ-साथ लुप्त हो जायेगी। यह निर्विवाद है कि यह प्रवृत्ति हमारी सन्धियों में विद्यमान है इनका (सन्धियों का) मूल स्वरूप ही ऐसा है कि वे उन समस्त राज्यों के प्रत्येक वर्ग और जाति की राज्य-भक्ति और आदर भावना का अपने राज्य-स्वामी राजा से हटा कर हमारी सार्वभौम-सत्ता अर्थात् संघ की राज्य और उसके प्रतिनिधियों की ओर झुका देती हैं। कौन है जो यह कहने का साहस करे कि जो राज्य अपने आन्तरिक शासन प्रबन्ध का बाहरी अंकुश के बिना संचालित नहीं रख सकता वह एक राष्ट्रीय राज्य हो सकता है? और यह कि उनके आन्तरिक शासन पर बाहरी परिषद अथवा गुप्तचरों से सम्बन्ध आदि स्थापित होने पर भी वे अपनी आत्म-प्रतिष्ठा स्थिर रख सकते हैं यह आत्म-प्रतिष्ठा जो व्यक्ति और राज्य दोनों के लिए प्रत्येक युग का मूल्य है। ये सन्धियां आत्म-प्रतिष्ठा की भावना को पूर्णरूपेण नष्ट करती हैं। क्या हम ऐसी कल्पना भी कर सकते हैं कि राष्ट्रीय अधिकारों से च्युत ये हमारे मित्र-गण संकट-काल में हमारे लिए विश्वसनीय मित्र होंगे? अथवा यदि उनमें उनकी परम्परागत नैतिकता की एक भी चिनगारी सुलगती रही तो क्या वह अवसर पड़ने पर हमारे विरुद्ध एक भयानक ज्वाला का रूप धारण नहीं कर लेगी? जब कि आवश्यक यह है कि इन युद्ध-प्रिय जातियों में हमारे प्रति जो कृतज्ञता की शक्तिशाली भावना विद्यमान है उसे प्रज्वलित किया जाए।

हमारी नीति वे थी उस लुटेरी व्यवस्था के विरुद्ध थे जिसने दीर्घकाल से हमारे लिए अशान्ति बना रखी थी ऐसी व्यवस्था को नष्ट करके हमारी और उनकी (राजपूत राज्यों की) आत्मरक्षा की भावना काम कर रही थी। जब हमने उनकी मित्रता के लिए हाथ बढ़ाया, तो हमने परोपकारिता के सुहावने शब्दों का प्रयोग किया और हमने उनको राजनैतिक विध्वंस की उस अराजकतापूर्ण स्थिति से पृथक करने का प्रयत्न किया। इन सन्धियों के महान प्रणेता के उदार विचारों को चुनौती देने का साहस हम नहीं कर सकते और यह भी स्पष्ट है कि उनकी नीति

---

(१) जरदुश्ती धर्म व उनके अनुयायियों के मतानुसार 'ओर्मुज्द' भलाई का और 'अहुरिमन' बुराई का सिद्धान्त है।

पूर्णतः बुद्धिमत्तापूर्ण थी। किन्तु सन्धियों में संशोधन करके विवादास्पद अंशों को उनसे हटाया जा सकता था। इससे अधिक से अधिक सम्राट के खिराज की आय में कुछ लाख रुपयों की हानि होती अब भी विलम्ब नहीं हुआ है। यही नीति अपनाने पर वे हमारी सन्धियों से पूर्णतया मुक्त हो जायेंगे। किन्तु उस समय तक हम उनको प्रत्येक आन्तरिक प्रश्न पर हमारे हस्तक्षेप और दबाव का बन्धन अनुभव न होने दें। हमें राष्ट्रीय समृद्धि में बाधक उन विधानों को हटा देना चाहिए, जो उनमें यह क्षोभ भावना उत्पन्न करती हैं कि उनके दीर्घकाल से बिना बोले पड़े अभिप्रायों में जितना अधिक भ्रम उत्पन्न होगा उसका उतना ही अधिक हिस्सा अंग्रेजों के धन भण्डार में देना पड़ेगा। राष्ट्रीय मस्तिष्क को पूर्ववत अपनी स्वाभाविक स्थिति ग्रहण करने दें तो वे पुनः अपनी प्राचीन ख्याति को प्राप्त कर लेंगे। हमारे पास वह शक्ति है जिससे इनकी यह स्थिति बनाई और उन्नत की जा सकती है। इसके परिणाम हमारे लिए बहुत ही सुखद होंगे; अन्यथा हम विजेता की दृष्टि से अनुचित व्यवस्था काम में लेंगे जिसके परिणाम-स्वरूप वे अवनति की दशा में पहुँच कर सदैव के लिए समाप्त हो जायेंगे।[1]

इनके आत्मीय धार्मिक-कृत्यों के लिए इतना बड़ा संकट कभी भी उत्पन्न नहीं हुआ जितना कि इन अबाध विप्लवों के बाद की सुहावनी शान्ति में उत्पन्न हुआ जिसमें वे अब तक चक्कर खाते रहे हैं। इन्हीं की स्वाभिमान भावना में इन्हें इस बात का संदेह उत्पन्न होने लगा है कि 'हमारे साथ मित्रता करने में अधिक हानि है अथवा हमारे साथ युद्ध करने में'। यद्यपि हमारी सैन्य शक्ति का सामना करना उनकी सामर्थ्य के बाहर की बात है तथापि हमें यह नहीं भूलना चाहिए कि प्राचीन रोम की भाँति जब उसका प्रभुत्व समाप्त हो रहा था हम भी असभ्य मानवों से हमारी विजय-श्री की रक्षार्थ 'जंगली लोगों की सेना' का उपयोग करते थे। क्या कभी मन स्थिर रहता है? क्या शुभ और उच्च विचार सम्पर्क और आदर्शों से प्राप्त होते हैं? क्या भारतवर्ष के हमारे तीन अविकल प्रदेशों में स्थित देशी लोगों की सेना में अब सोलह मासिक वेतन पर काम करने वाले लोगों की अपेक्षा कोई ऊँचे दिमाग का व्यक्ति नहीं है? क्या ओडोसर(४) और शिवाजी जैसे वीर फिर उत्पन्न नहीं हो सकते हैं? क्या हमारी ज्ञान और सच्चाई की पुस्तक (५) का यही प्रयोजन है कि हम उन्हें पराधीनता में रखें और उनकी सामर्थ्य-हीनता को बनाए रखना सिखाएं? क्या हम उनके साथ निरन्तर सहानुभूतिपूर्ण व्यवहार किए बिना सदा के लिए उनसे कृतज्ञता पालन की आशा रख सकते हैं? और क्या हमें उत्तम फल प्राप्ति की दृष्टि से किसी उच्च आदर्श का सहारा नहीं लेना

---

१ इन प्राचीन राज्यों को लूट-मार सम्बन्धी लड़ाई झगड़ों से विनाश से बचाने के लिए परोपकारी लार्ड हेस्टिंग्स ने प्रसन्नता-पूर्वक चार वर्षों में ही एक शताब्दी से व्याप्त अराजकता को समाप्त कर सुव्यवस्था उत्पन्न करने की आशा व्यक्त की थी। उन्होंने आन्तरिक त्रुटियों के प्रति भी अप्रसन्नता प्रकट की थी जो मालव असावधानी और गुप्त द्रोह से उत्पन्न होती थीं। उन्होंने यह भी प्रकट किया था, 'सरकार स्वयं पुनः सुव्यवस्था स्थापित करने का काम अपने हाथ में ले' और 'इस दृष्टि से 'समस्त परिवर्तन' करने को कहा जावे और कठोरता से कराया जावे' तथा 'इस प्रकार के प्रबन्ध किए जावें कि जिनसे वे उदार सज्जनशीलता के भाव का अधिक दुरुपयोग न कर सकें जिनके अभिप्राय को समझने अथवा जिसकी कद्र करने के वे अयोग्य हैं'। वे उस (लार्ड हेस्टिंग्स) की सहानुभूति से शून्य लोगों से क्या आशा कर सकते हैं?

---

(४) हूणों का एक शासक जिसका जन्म ४१४ ई. में तथा देहान्त ४९३ ई. में हुआ।
(५) ईसाइयों का धर्म-ग्रन्थ — बाइबल।

चाहिए, जो राज्य-भक्ति की प्रसिद्धता का एक अपूर्व उदाहरण प्रस्तुत करें और भावी पीढ़ी के लिए एक उत्तम आदर्श छोड़ जायें।

रक्षा का जो आवरण हमने इन समर विलासी जातियों पर फेंका है क्या वह इस प्रकार के परिणामों की सम्भावना को समाप्त नहीं कर देगा? निस्सन्देह यह तभी हो सकता है यदि हम उन पर समस्त परोपकारी भावना के साथ जिसका हम इतना गर्व करते हैं हम अपने मृदुतापूर्ण प्रभाव का प्रयोग करें और अन्तर्जातीय शत्रुता के अङ्गारों को बुझा दें। उनको यह विश्वास हो गया था कि शेर और बकरी एक घाट पर पानी पीयेंगे' तथा पवित्र 'सतयुग' की सी स्थिति उत्पन्न हो जायगी जिसमें प्रत्येक व्यक्ति अपने वट वृक्ष के तले चैन से सोता था कोई कलह या ईर्ष्या जिसके निकट फटक नहीं पाती थी।

भयानक शान्ति और सङ्कटकाल में जब बहुत सी जातियाँ एक विदेशी शक्ति को जो प्रत्येक बात में उनके विपरीत और अधिक बातों में उनसे उच्च है युद्ध के समय अपनी सेनाओं का अधिकार और शान्ति-काल में आपसी झगड़ों को निपटाने का पंच अधिकार दे देती हैं तथा उनकी नवीन बढ़ती हुई समृद्धि के फल का एक भाग दे देती हैं तो उसका क्या परिणाम हो सकता है? जब प्रत्येक राजपूत अपने बर्छे को खूँटी पर टाँग दे तलवार को खेत जोतने के हल का फाल बना ले और ढाल को एक टोकरी के रूप में परिवर्तित कर ले तो क्या परिणाम हो सकता है? क्या इन जातियों के परम्परागत गुण समाप्त नहीं हो जायेंगे जिनका प्रारम्भ राजपूतों के पूर्व-युग नैतिक युग से होता है और शीघ्र ही वे लोग आत्म-प्रतिष्ठा की भावना को खो देंगे। उसके पश्चात् उनमें निष्क्रियता निम्न स्तर की प्रवृत्तियाँ और स्वार्थपरता की भावनाएँ घर कर जायेंगी। स्वयं की रक्षार्थ एक विदेशी शक्ति पर निर्भर रहने वाला कौनसा राष्ट्र अपने चरित्र बल को कायम रख सका है? उच्चता प्राप्त करने के लिये और स्वतन्त्रता कायम रखने के लिये उसकी शूरवीरता कायम रहनी चाहिए। परन्तु इस गुण को अपनी उचित सीमा में रखना ही दुष्कर होगा। उन्माद की भावना से प्रभावित होकर सिकन्दर ने विश्व का वैभव एक साथ देखने हेतु शत्रुओं के भय का अनुभव किया है अर्थात् उसने अपने अल्पकालपूर्ण काम में चमकते हुये तेज प्रकाश का अवलोकन किया परन्तु यह भी विचार नहीं किया कि प्रारम्भिक चमक के पश्चात् कैसा अन्धेरा हो जायगा।

केवल हमारे इस प्रकार के हस्तक्षेप के बन्द करने पर ही उनकी स्वतन्त्रता निर्भर करती है — अन्यथा उनका राज्य हमारे राज्य में विलय कर लेना हमारे अभिप्राय को राज्य के लिए भयानक सङ्कटपूर्ण स्थिति उत्पन्न कर सकता है।[1]

हम सिकन्दर का वह वाक्य याद रखें जो उसने विपर्यों में वर्षों और हिफेसिस (व्यास नदी) को पार करने से इन्कार करने वाले अपने वीर सैनिकों को दिया था — 'किसी भी बात की ख्याति कभी भी उसकी असली स्थिति का दिग्दर्शन नहीं कराती परन्तु उसके विपरीत वह उसको बढ़ा चढ़ा कर प्रस्तुत करती है। यही हाल भी है क्योंकि हमारी स्वयं की प्रसिद्धि एवं प्रतिष्ठा ठोस आधार पर आधारित होते हुए भी अधिकतर अफवाहों के कारण ही है और इसमें वास्तविकता कम है'।[1]

---

१ क्विंटस कर्टियस अध्याय ९ (Quintus Curtiu Lib IX)।

ग्रन्थानुक्रमणिका

अ

आ

इ

ई

उ

ए

ऐ

ओ

क

ख

ग

च

ज

ट

त

द

न

प

व

श

स

ह

ग्रन्थकारानुक्रमणिका

च

ज

ट

ड

त

न

प

फ

ब

ह

नामानुक्रमणिका

अ

आ

त

थ

द

ध

न

भ

म

य

र

ल

व

श

स

ह

भौगोलिकानुक्रमणिका

अ

आ

ख

ग

फ

ब

भ

म

य

र

ल

व

श

स

ह

श

स

शीघ्र प्रकाशित होगा —

टॉड कृत 'राजस्थान'

भाग १ – खण्ड २

राजस्थान में जागीर व्यवस्था